अंक 24 वर्ष 2010

जिज्ञासा

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

जिज्ञासा

अंक – 24 वर्ष – 2010

हिन्दी कक्ष
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली द्वारा प्रकाशित

हिन्दी विज्ञान पत्रिका

एक ओर विकास की ऊंचाई छूता आधुनिक विज्ञान–टेक्नोलॉजी तंत्र व जलवायु परिवर्तन, दूसरी ओर प्रकृति का इंजीनियरी कौशल (सर्प की इन्फारेड डिटेक्टर द्वारा $0.001^{0}C$ अंतर नापने की क्षमता, चमगादड़ में दिशा सूचक प्रणाली, ----) व ग्रामीण कारीगर द्वारा निर्मित बायोगैसीफायर – आवश्यकता है दोनों धाराओं में समरसता की।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
INDIAN INSTITUTE OF TECHNOLOGY DELHI
हौज़ खास, नई दिल्ली - 110 016
Hauz Khas, New Delhi - 110 016

प्रो. सुरेन्द्र प्रसाद, एफ.एन.ए., एफ.ए.एससी., एफ.एन.ए.ई.
निदेशक

Prof. Surendra Prasad, F.N.A., F.A.Sc., F.N.A.E.,
Director

Tel. :+91-11-26582020, 26591701 (O)
Tel. :+91-11-26582022, 26591801 (R)
Fax:+91-11-26582659 (O)
e-mail: director@admin.iitd.ac.in
sprasad@ee.iitd.ac.in

शुभकामना संदेश

संस्थान की हिन्दी विज्ञान पत्रिका 'जिज्ञासा' अंक 24 के प्रकाशन के लिए मेरी ओर से मंगल कामना है। इस अंक में प्रस्तुत कुछ बुनियादी विचार 'टैक्नोलोजी एवं स्थाई विकास' के लिए एक नई दृष्टि का उदय करते हैं। साथ ही 'स्वास्थ्य व चिकित्सा विज्ञान' के क्षेत्र में नए अनुसंधान स्वस्थ जीवन शैली के लिए महत्वपूर्ण तथ्य उजागर करते हैं। भा.प्रौ.संस्थान दिल्ली तथा अन्य तकनीकी संस्थानों/विश्वविद्यालयों के विद्वत संकाय सदस्य व शोध छात्रों ने अपने अनुसंधान व विकास कार्य का राष्ट्रभाषा हिंदी में सरल अभिव्यक्ति करके एक प्रशंसनीय कार्य किया है। हालाँकि शायद हिन्दी में लिखने का सतत अभ्यास न होने से सभी लेखकगण ने अधिक परिश्रम किया होगा लेकिन यह प्रतिबद्धता देश भक्ति का ही एक रूप है। मुझे विश्वास है कि 'जिज्ञासा' का यह अंक दूर–दराज के क्षेत्रों में स्थित विज्ञान एवं इंजीनियरी कालेजों/विश्वविद्यालयों के संकाय सदस्यों को अनुसंधान के नए आयाम की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देगा।

आशा है कि संस्थान के स्वर्ण जयन्ती वर्ष में उपर्युक्त दिशा में अधिक सार्थक कार्य होगा तथा विज्ञान व तकनीकी के क्षेत्र में राष्ट्रभाषा का गौरव बढ़ाने की ओर एक सशक्त कदम होगा।

पत्रिका के उत्तरोत्तर विकास के लिए मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

सुरेन्द्र प्रसाद

(प्रो. सुरेन्द्र प्रसाद)
निदेशक एवं संरक्षक

'जिज्ञासा' आपकी राय

सर्व हितैषी पुस्तकालय, नालन्दा के पुस्तकालयाध्यक्ष श्री रामेन्द्र सिंह ने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली द्वारा प्रकाशित हिन्दी विज्ञान पत्रिका 'जिज्ञासा' की प्राप्ति के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हुए लिखा है कि – यह पत्रिका उपयोगी, ज्ञानवर्धक, पठनीय एवं संग्रहणीय है। यह टेक्नोलॉजी विज्ञान का पिटारा है।

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मंसूरी के पूर्व प्रोफेसर डॉ. कैलाश चन्द्र भाटिया ने 'जिज्ञासा' प्राप्ति पर हार्दिक बधाइयाँ देते हुए अपनी प्रतिक्रिया में लिखा कि "पिछले अंकों को यह अंक पीछे छोड़ आया है तथा 'बाँस अंकुर–पोष्टिकता व पोषण औषधि का अदभुत स्रोत' एवं 'बाँस (हरा सोना) भोजन एवं औषधि स्रोत' विशिष्ट है। आपने सूचना प्रौद्योगिकी (IT) पर एक विशेषांक निकालने का सुझाव भी दिया है। आपके अनुसार लेखों में स्थान–स्थान पर दिए गए उदाहरण बड़े सार्थक है"।

राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद, नई दिल्ली के हिन्दी अधिकारी डॉ. सुरेन्द्र यादव ने 'जिज्ञासा' प्राप्ति पर धन्यवाद ज्ञापित करते हुए अपने विचार इस प्रकार व्यक्त किए–"देखने में आकर्षक एवं पढ़ने में उपयोगी पत्रिका पाकर अत्यन्त हर्ष हुआ। विज्ञान जैसे तथाकथित गम्भीर एवं शुष्क विषय का हिन्दी में इतनी सहज, सरल एवं प्रभावी अभिव्यक्ति विरले ही देखने को मिलते हैं। पत्रिका की साज–सज्जा आकर्षक एवं सारे विषय अत्यन्त उपयोगी एवं जानकारीवर्धक हैं। प्रत्येक लेख का लेखक/लेखिका राजभाषा में ऐसी सुन्दर अभिव्यक्ति के लिए साधुवाद का पात्र है"। आपने यह भी सुझाव दिया कि यह प्रकाशन वार्षिक की बजाए यदि छमाही हो सके तो अपेक्षाकृत अधिक उपयोगी होगा। जानकारी, सूचनाएं, आविष्कार, खोज आदि भी अपने अद्यतन रूप में पाठकों तक पहुंच सकेगी और साथ ही आकार भी कुछ छोटा हो सकेगा जिसमें पत्रिका अधिक पठनीय बन सकेगी तथा साथ ही पत्रिका प्राप्ति की उत्सुकता को भी वर्षभर प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ेगी।

स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड, दिल्ली के प्रबन्धक हीरा वल्लभ शर्मा ने 'जिज्ञासा' पत्रिका की प्राप्ति पर धन्यवाद देते हुए लिखा कि –"हिन्दी पाठकों के लिए तकनीकी जिज्ञासा को शान्त करने वाले आलेखों से सजा यह अंक निकालने के लिए जितनी प्रशंसा की जाए कम है"।

गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग, भारत सरकार के क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय, दिल्ली के सहायक निदेशक श्री एस.डी. पाण्डेय ने पत्रिका के समस्त रचनाकारों तथा सम्पादन मण्डल को हार्दिक बधाई देते हुए अपनी प्रतिक्रिया में लिखा– "पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं अन्य सामग्री बहुत ही रोचक और ज्ञानवर्धक है। क्लेवर सामग्री, संकलन और प्रस्तुति की दृष्टि से पत्रिका प्रशंसनीय है। इसमें दी गई सामग्री बहुत ही उपयोगी, स्तरीय तथा समसामयिक है।"

साहित्य अकादमी, नई दिल्ली की राजभाषा [illegible] समिति के सम्पादक एवं प्रभारी श्री ब्रजेन्द्र त्रिपाठी [illegible] के लिए धन्यवाद ज्ञापित करते हुए लिखा कि– "[illegible] पत्रिका हिन्दी में विज्ञान लेखन की कमी की पूर्ति [illegible] महत्वपूर्ण काम कर रही है। हमारी राजभाषा एवं संपर्क भाषा हिन्दी तभी सक्षम एवं सशक्त बनेगी, जब विविध अनुशासनों में हिन्दी में लेखन होगा। हिन्दी में केवल रचनात्मक लेखन से काम नहीं चलने वाला। यह बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली विगत तेईस वर्षों से इस विज्ञान पत्रिका का प्रकाशन कर रहा है। निश्चय ही इससे दूसरे संस्थानों को भी प्रेरणा मिलेगी, जहां केवल अंग्रेजी का बोल–बाला है। उच्चशिक्षा तथा प्रौद्योगिकी, चिकित्सा, वाणिज्य आदि क्षेत्रों में हिन्दी को लाने के लिए इस तरह के प्रयासों की बड़ी आवश्यकता है। इस अंक में प्रौद्योगिकी विकास एवं ऊर्जा सुरक्षा, पर्यावरण तथा जल, कृषि एवं अन्य विषयों पर विद्वानों के महत्वपूर्ण आलेख हैं जिससे पत्रिका का यह अंक संग्रहणीय बन गया है। मैं पत्रिका के उत्तरोत्तर विकास की कामना करता हूँ और पूरी संपादकीय टीम को इतने सुंदर अंक के लिए बधाई देता हूँ।"

विश्वैश्वरय्या राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, नागपुर के कुलसचिव डॉ. भास्कर गणवीर ने अपनी प्रतिक्रिया में लिखा है कि –"पत्रिका का आकर्षक आवरण दीक्षांत समारोह तथा शोध कार्य से जुड़े संयोजित चित्र, आपके संस्थान की भव्यता एवं अप्रत्यक्ष गौरव को दर्शाता मनोहारी लगा। यह पत्रिका विज्ञान एवं तंत्रज्ञान से भरपूर, समाज सेवा के प्रति सजग अभिवृत्ति को एवं राष्ट्रभाषा को समर्पित राष्ट्र की सेवा में जुड़े रहने के संकल्प का एक एहसास दिलाती है। संपूर्ण साहित्य उच्च कोटि का एवं ज्ञानप्रद है। साज सज्जा एवं सुंदर मुद्रणों से अलंकृत और संपादित इस पत्रिका के संपादन मंडल को हार्दिक बधाई।"

दो शब्द

हिन्दी कक्ष की गतिविधियों के साथ एक वर्ष की सार्थक व चुनौतीपूर्ण यात्रा पूरी हुई। वास्तव में पूरे समय ज्ञानवर्द्धन तथा धैर्य के साथ नई दिशा में चिन्तन–मनन चलता रहा। प्रशासनिक सहयोग से कुछ नई गतिविधियों का प्रारूप बना और इनको क्रियान्वित किया गया। इस प्रकार राजभाषा हिन्दी के प्रति नित नए उत्साह का संचार होना जारी रहा। सभी प्रशासनिक विभाग/अनुभाग/एकक एवं विभिन्न [illegible] केन्द्रों से उनकी कुछ प्रेक्टिकल कठिनाइयों के [illegible] पूर्ण सहयोग मिलता रहा। नोडल अधिकारियों की [illegible] हुआ, कुछ स्टाफ सदस्यों ने स्वयं ही विशेष [illegible], सरल क्रियान्वयन वाले कुछ महत्वपूर्ण सुझाव [illegible] प्रकार गति बनी रही। दिल्ली स्थित तकनीकी संस्थानों/विश्वविद्यालयों के हिन्दी अधिकारियों के साथ विचार–विमर्श संगोष्ठी अत्यन्त सार्थक व प्रेरणादायक रही। इस संदर्भ में श्री नरेश कुमार, निदेशक (राजभाषा) मा.सं.वि. मंत्रालय का सकारात्मक प्रत्युत्तर उत्साहवर्द्धक व प्रो. सुभाष कौशिक (पूर्व अध्यक्ष, हिन्दी कक्ष) का मार्गदर्शन अनमोल रहा। अवकाश के दिन आयोजित कार्यशाला, प्रतिभागियों ने खुशी के साथ इसे सफल बनाया। इस अवसर पर श्री अनुपम मिश्र के प्रस्तुतीकरण "संस्कृति–प्रौद्योगिकी डोर" ने सभी के हृदय को झकझोर दिया। कुल मिलाकर राष्ट्रभाषा हिन्दी को बढ़ावा देने की दिशा में सतत प्रयास चलते रहे जिससे संस्थान में हिन्दी के प्रति उत्साही वातावरण बनाने में मदद मिली। आप सभी के प्रति हार्दिक धन्यवाद।

हमारा सौभाग्य रहा कि संस्थान निदेशक प्रो. सुरेन्द्र प्रसाद व उनकी टीम–प्रो. एस.एम. इश्तियाक (उप निदेशक, प्रशासन), प्रो. एम. बालाकृष्ण (उप निदेशक, संकाय) व प्रो.ए.एल. व्यास (कार्यकारी कुलसचिव) ने हिन्दी कक्ष के हर नए प्रस्ताव को प्रसन्नता के साथ मंजूरी दी। शब्द नहीं मिल रहे हैं, जिनके द्वारा आप सभी के प्रति हार्दिक धन्यवाद व कृतज्ञता के भाव अभिव्यक्त कर सकूँ।

'जिज्ञासा' विज्ञान पत्रिका के लिए शोध पत्रों का संकलन व प्रकाशन सबसे अधिक कठिन, लेकिन महत्वाकांक्षी व दिलचस्प रहा। संपादन मंडल का भरपूर सहयोग मिला। डॉ. आर.ए. माशेलकर (पूर्व महानिदेशक, C.S.I.R.) ने अपने अदभुत शोध पत्र 'प्राकृतिक इंजीनियरी' की अनुमति देकर हमारा उत्साहवर्द्धन किया। वास्तव में आप सभी की अभिरुचि व लगन के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था।

अंत में, घर के द्वार पर आते हुए हिन्दी कक्ष परिवार के सभी स्टाफ सदस्यों को स्नेहपूर्ण धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने नई गतिविधियों/नए स्वरूप में प्रचलित कार्यक्रम आयोजित करने के कारण बढ़े हुए कार्यभार के बावजूद भी प्रसन्नता के साथ पूरे मनोयोग से जिम्मेदारी संभाली। ग्राम विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र की डॉ. अनुश्री मलिक व शोध छात्रों (अमित, पीयूष, पूनम....) के विभिन्न रूप में सहयोग के लिए उन्हें असीम स्नेह। सभी प्रियजनों को उनकी प्रत्यक्ष व परोक्ष सहभागिता के लिए हार्दिक धन्यवाद।

–प्रो. सन्तोष सत्या

सम्पादकीय

भाषा–संस्कृति–प्रौद्योगिकी एक प्राकृतिक डोर है। यह उच्च शिक्षण व तकनीकी संस्थानों की 'दृष्टि' में इसके समावेश तथा प्रतिपादन की आवश्यकता की ओर इशारा करती है। आश्चर्य है कि वर्तमान में अमेरिका जैसे विकसित देशों में हिन्दी भाषा को सम्मान की नजरों से स्कूलों व विश्वविद्यालयों में पढ़ाए जाने की शुरुआत की गई है। आज भी लगभग 130 देशों में भारत की पहचान राष्ट्रभाषा हिन्दी व भारतीय संस्कृति से है। इसमें भारत वर्ष की प्राचीन धरोहर–आयुर्वेदिक चिकित्सा विज्ञान, योग व अध्यात्म के महत्व का दिग्दर्शन हो सकता है, लेकिन साथ ही यह भारत में 'विज्ञान व टैक्नोलोजी' के क्षेत्र में हुई उपलब्धियों, यहाँ की युवा प्रतिभा की कर्मठता आदि को भी उजागर करती हैं/स्वीकार करती हैं। लेकिन अपने देश में राष्ट्रभाषा हिन्दी की गरिमा विशेषतया विज्ञान व प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में लड़खड़ा रही है। इस संदर्भ में कुछ देश (रूस, जापान, फ्राँस, जर्मनी, कोरिया, नीदरलैंड आदि) वास्तव में बधाई के पात्र हैं जिन्होंने विज्ञान व प्रौद्योगिकी का साहित्य अपनी भाषा में तैयार किया है।

इस पृष्ठभूमि में 'जिज्ञासा' विज्ञान पत्रिका का अंक 24 हिन्दी कक्ष परिवार की ओर से आपकी सेवा में प्रस्तुत है। लगभग 40 शोध पत्रों को 5 भागों –'शिक्षा-संस्कृति, प्राकृतिक इंजीनियरी एवं जनमानस सृजनात्मकता', 'ऊर्जा एवं खाद्य सुरक्षा', 'उन्नत भौतिक व रासायनिक पदार्थ', 'पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधन व प्रबन्धन' तथा 'स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विज्ञान' में वर्गीकरण किया गया है। इस अंक में दो नई थीम के ऊपर शोध पत्र प्राप्त हुए हैं। एक भाग में प्रस्तुत शोध पत्र, एक प्रकार से बुनियादी विचार जैसे शिक्षा–संस्कृति–टैक्नोलोजी के अन्तर्सम्बन्ध, प्रकृति का इंजीनियरी कौशल व जनमानस की सृजनात्मकता को देश के विकास के मॉडल में समाहित करने की आवश्यकता पर बल देते हैं। दूसरी थीम प्राचीन स्वास्थ्य विज्ञान एवं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के एकीकरण (integration) की उपयोगिता को दर्शाती है। वास्तव में सभी शोध पत्र – ऊर्जा (सोलर, बायोडीजल, बायो गैस), पर्यावरण अनुकूल पदार्थ (जैव कीटनाशक व उर्वरक, वर्मीकम्पोस्ट आदि), वायु व जल प्रदूषण के जैव सूचक व उपचार, प्राकृतिक संसाधन प्रबंधन (जल शोधक, पोषक उत्पाद, बाँस–एक इंजीनियरी पदार्थ आदि) के क्षेत्र में संकाय व शोध छात्रों द्वारा किए गए नवीन अनुसंधान का ज्ञान प्रेषित करते हैं। कुछ उन्नत भौतिक व रासायनिक पदार्थ (प्लाज्मा, आयनिक द्रव, ग्रीन रसायन......), प्लास्टिक अपशिष्ट पदार्थों से सड़क निर्माण तथा खाद्य सुरक्षा विषय पर अनुसंधान कार्य विकास की एक नई दिशा की ओर इशारा करते हैं।

उपर्युक्त सभी शोध पत्रों में भा.प्रौ. संस्थान दिल्ली के 7 विभागों/केन्द्रों के अलावा भा.प्रौ. संस्थान मुम्बई, दिल्ली विश्वविद्यालय, जे.एन.यू., जामिया मिलिया इस्लामिया, शारदा विश्वविद्यालय, राष्ट्रीय नवप्रवर्तन प्रतिष्ठान अहमदाबाद , भारती विद्यापीठ, पतंजलि योग पीठ, केन्द्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान दिल्ली, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान दिल्ली आदि के संकाय व वैज्ञानिक/शोध छात्रों का विशेष योगदान उल्लेखनीय है।

मैं सभी संकाय सदस्यों, वैज्ञानिकों, शोध छात्र–छात्राओं तथा उन सभी विद्वान लेखकों जिनके सहयोग व योगदान से 'जिज्ञासा' का प्रकाशन सम्भव हुआ है, उनके प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ। विद्वान पाठकों के सुझाव/प्रतिक्रिया सम्पादन मंडल के लिए प्रेरणा व मार्गदर्शन का कार्य करेंगे, ऐसी आशा है।

जय हिन्द !

–प्रो. सन्तोष सत्या

सरस्वती – वंदना

माँ ! नई दृष्टि का दान दे
जी सकूँ आत्म–सम्मान दे।

सूक्ष्मतम भाव अभिव्यक्त हो,
लेखनी को वह सामर्थ्य दें।
बात जो भी कहूँ मन छुए,
शब्द को यूँ नए अर्थ दे।
मुस्कराती कमल पँखुडी से
हर अधर को नया गान दे।।
माँ नई दृष्टि........

स्वार्थ, संकीर्णता, क्षुद्रता का
कलुष पास फटके नहीं,
राष्ट्र की अस्मिता के लिए
प्राण दें, पाँव अटके नहीं।
जो दिखाए सही पथ हमें
धर्मयुत ज्ञान–विज्ञान दे।
माँ नई दृष्टि........

योग्य सुत हम बनें आपके,
एक संकल्प लेकर जिएँ।
राजपथ पर जलें ना जलें
बन सके झोंपडों के दिए
सर्व–समभाव के मन्त्र को
फिर नई एक पहचान दें।।
माँ नई दृष्टि....

शक्ति के कुछ विलक्षण करूँ
विश्व का जिससे कल्याण हो,
भाल उज्ज्वल कर आपका,
सार्थक यूँ मेरे प्राण हो,
माँ, तुम्ही फिर कहो ईश से
मुझको ऐसी ही सन्तान दे।
माँ नई दृष्टि...

माँ ! नई दृष्टि का दान दे
जी सकूँ आत्म सम्मान दे।।

श्री आर्यभूषण गर्ग
नगीना रोड, धामपुर (बिजनौर)

"आधुनिक समाज के लिए महत्वपूर्ण और अनिवार्य होते हुए भी केवल जानकारी हासिल करना अथवा तकनीकी कौशल अर्जित करना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं है अपितु इसका उद्देश्य ऐसा संतुलित मानसिक विकास करना ऐसी विवेकपूर्ण अभिवृत्ति और लोकतांत्रिक भावना पैदा करना है जो हमें जिम्मेदार नागरिक बनाए।"

–डॉ. राधाकृष्णन

दीक्षान्त समारोह
(संक्षिप्त रिपोर्ट)

वास्तव में शिक्षा व्यवस्था समाज व देश की रीढ़ है। यह युवा वर्ग को सुख व समृद्धि के साथ जिन्दगी जीने की प्रेरणा व दिशा देती है ताकि वे देश की स्वाधीनता के साथ–साथ उसके विकास व समृद्धि में भरपूर योगदान कर सकें। इस संदर्भ में निपुण, सक्षम, समर्पित भावना से ओत–प्रोत, शिक्षा व अनुसंधान में [illegible] रखने वाले युवा स्नातकों को प्रेरणापूर्ण माहौल देना एक [illegible] कदम है। आज विज्ञान और प्रौद्योगिकी के उच्च शिक्षा [illegible] योग्य शिक्षकों की विकट समस्या का सामना कर रहे है [illegible] में देश की जनसंख्या के अनुपात में विज्ञान, [illegible] एवं चिकित्सा विज्ञान के उच्च शिक्षा संस्थानों एवं [illegible] की भारी कमी है। पिछले दिनों भारत सरकार ने [illegible] भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों की स्थापना की है लेकिन इनमें संकाय की कमी है, अतः आवश्यक है कि हमारे स्नातक उच्च शिक्षा एवं अनुसन्धान के क्षेत्र में रुचि के साथ अपना कैरियर बनायें जिससे योग्य शिक्षकों की लगातार कमी से कुछ निजात मिले। योग्य शिक्षकों एवं आवश्यक संसाधन की उपलब्धता होने पर भारत सरकार भविष्य में इन संस्थानों के और अधिक विस्तार के बारे में सोच सकती है। इससे उच्च शिक्षा के लिए निजी कॉलेजों में भटकते युवा वर्ग और इन कॉलेजों की पढ़ाई का खर्च जुटाने के लिए जूझते माता–पिता को शायद थोड़ी–सी राहत महसूस होगी, ऐसी आशा है। भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली का इकतालीसवां दीक्षान्त समारोह संस्थान की अभिशासक परिषद के अध्यक्ष, श्री आर.पी अग्रवाल की अध्यक्षता में शनिवार 7 अगस्त, 2010 और रविवार 8 अगस्त, 2010 को वेद मंत्रोचारण, राष्ट्रगान और अध्यक्ष महोदय की दीक्षान्त–2010 के शुभारंभ की घोषणा के साथ प्रारंभ हुआ। दीक्षान्त समारोह के पहले दिन मुख्य अतिथि भारत के माननीय उपराष्ट्रपति श्री हामिद अंसारी जी थे और दूसरे दिन थे – प्रो. गोवर्धन मेहता, पूर्व निदेशक, भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर। एक ओर छात्रों का जोश एवं उत्साह तो दूसरी ओर गुरुवृन्द, मुख्य अतिथि एवं अन्य सम्मानित अतिथियों एवं विद्यार्थियों के माता–पिता, सगे–संबंधियों की उपस्थिति समारोह को गरिमा एवं भव्यता प्रदान कर रही थी।

7 और 8 अगस्त, 2010 को दीक्षान्त समारोह के इस पावन अवसर पर संस्थान निदेशक प्रो. सुरेन्द्र प्रसाद ने समारोह के दोनों मुख्य अतिथि, भारत के माननीय उपराष्ट्रपति, श्री मोहम्मद हामिद अंसारी जी एवं प्रो. गोवर्धन मेहता, अध्यक्ष, अभिशासक परिषद, श्री आर.पी. अग्रवाल, डॉ. अनिल काकोदकर सम्मानित अतिथि (गेस्ट ऑफ ऑनर), अभिशासक परिषद व अभिषद के सदस्यो, उपाधि प्राप्तकर्ता विद्यार्थियों, विशिष्ट अतिथियो, का हार्दिक स्वागत किया। उन्होंने डिग्री प्राप्तकर्ता स्नातकों को बधाई देते हुए पिछले वर्ष के दौरान संस्थान की महत्वपूर्ण गतिविधियों, उपलब्धियों और भावी योजनाओं पर विस्तृत रिपोर्ट प्रस्तुत की। कई वर्षों से संस्थान ने जिन राष्ट्रीय महत्त्व तथा वर्तमान प्रासंगिकता के अनेक क्षेत्रों में अपने शिक्षण एवं अनुसंधान का विस्तार किया है, उसके ऊपर प्रकाश डाला। इनमें जिनमें वायुमंडलीय विज्ञान, अंत: स्थाापित(Embed-ded) तंत्र, पर्यावरणीय विज्ञान एवं इंजीनियरी, ग्राम्य उद्योगीकरण, जैव सूचना

दीक्षांत समारोह 2010

विज्ञान, नैनोटेक्नोलॉजी, रेशा प्रकाशिकी तथा प्रकाशिक संचार, जैव–प्रौद्योगिकी, जैव–उत्प्रेरण, स्मार्ट एवं औद्योगिक वस्त्र, परिवहन, प्रकाश तापीय ऊर्जा रूपान्तरण, पदार्थ विज्ञान, प्रकाश ध्वनिक सूक्ष्मदर्शिकी, शक्ति प्रौद्योगिकी, संकेत संसाधन, प्रकाश इलेक्ट्रोनिकी, कम्प्यूटर विज्ञान, कम्प्यूटर सहायता प्राप्त अभिकल्प एवं निर्माण, कृत्रिम बुद्धिमता तथा रोबोट विज्ञान आदि सम्मिलित हैं। अभी हाल ही में, संस्थान में संक्रामक तथा गैर संक्रामक रोग में अनुसंधान बढ़ाने के लिए जैव विज्ञान स्कूल तथा कम्प्यूटर विज्ञान एवं इंजीनियरी विभाग में एक 'इंडो जर्मन मेक्स प्लेंक सेन्टर फॉर कम्प्यूटर साइंस' की स्थापना की गयी है।

माननीय उपराट्रपति श्री हामिद अंसारी जी ने अपने सम्बोधन में – "विद्यार्थीगण ! आपको इस बात की परख करनी है कि जो प्रौद्योगिकियां आपने सीखी हैं वे भविष्य में इस तरह से विकसित हों कि हमारे प्रत्येक नागरिक की स्थिति में सुधार करके उन्हें बेहतर जीवन जीने का अवसर प्रदान करें", टैक्नॉलोजी विकसित व चयन करने के एक ठोस आधार को स्वीकार करने की ओर इशारा किया। प्रो. गोवर्धन मेहता जी ने अपने सम्बोधन में थामस एडीसन जैसे महान् आविष्कारक के कथन की पुनरावृति की, – "मैं किसी आविष्कार को बिलकुल दोष रहित कभी नहीं बना सकता जब तक मैं इसकी अन्य लोगों को दी जाने वाली सेवा के बारे में नहीं सोचता... दुनिया की क्या आवश्यकता है, इसका पता लगाकर मैं आविष्कार के लिए आगे बढ़ता हूँ। यह सोद्देश्यपूर्ण जीवन जीने का तथा मानव और देश की सेवा करने का एक अद्भुत तरीका है" तथा उनके शिक्षाप्रद कथन के अनुगमन करने की अपील की। श्री आर.पी. अग्रवाल, अध्यक्ष, अभिशासक परिषद के वक्तव्य "हमें पूरा विश्वास है कि आप सब का कैरियर अत्यधिक संतोषजनक और सफल होगा और आप सम्मान और गौरव के साथ अपनी मातृभूमि की सेवा करेंगे तथा अपने संस्थान के लिए जयपत्र (Laurels) लाएंगे" ने सभी डिग्री धारियों के मन में विशिष्ट उत्साह का संचार किया।

इस अवसर पर हमारे देश के प्रतिष्ठित नाभिकीय वैज्ञानिक डॉ. अनिल काकोदकर को नाभिकीय रिएक्टरों के अनुसंधान और विकास के क्षेत्र में उत्कृष्ट योगदान के लिए 'डॉक्टर ऑफ साईन्स' की मानद उपाधि प्रदान की गयी। तदुपरान्त, निदेशक महोदय ने 41वें दीक्षान्त समारोह पर उपाधि प्राप्त कर रहे 1371 स्नातकों और अवार्ड/पदक/नकद पुरस्कार प्राप्त कर रहे स्नातकों को उनकी विशेष उपलब्धियों के लिए हार्दिक बधाई एवं शुभकामनाएं प्रेषित की तथा कहा "हमें विश्वास है कि संस्थान में अपने प्रवास के दौरान आप इतने समर्थ हो गए हैं कि जीवनपर्यन्त अध्ययन प्रक्रिया जारी रखकर चुनौती भरा कैरियर अपना सकें। हमें यह भी विश्वास है कि देश तथा विश्व आप से जिस प्रकार आशा करता है आप उस तरह का नेतृत्व प्रदान करेंगे। हमारी इच्छा है आप जो भी व्यवसाय अपनाएंगे उसमें सफल रहेंगे। आप अपने शिक्षा संस्थान के सम्पर्क में रहें। आपसे जिस रूप में भी बन सके इसकी सहायता करें तथा भा.प्रौ.सं. दिल्ली का नाम और ऊंचा करें। मुझे विश्वास है कि आप ऐसे बेहतर विश्व के लिए काम करेंगे जहाँ पर विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का उपयोग सामाजिक उत्तरदायित्व तथा प्रकृति के सामंजस्य के लिए किया जाता है"।

– श्री भगवान सिंह रावत
हिन्दी अधिकारी एवं
श्रीमती राजेश कुमारी
कनिष्ठ अधीक्षक

जिज्ञासा

अंक – 24 वर्ष – 2010

इस अंक में

भाग–I

शिक्षा–संस्कृति, प्राकृतिक इंजीनियरी एवं जनमानस सृजनात्मकता

शिक्षा और सुखी जीवन

प्रो॰ अरुण कांडा
यांत्रिक इंजीनियरी विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

[illegible]जकल बहुत सारे लोग शिक्षा को केवल रोटी कमाने [illegible] समझते हैं और सुख के साधन इकट्ठे करने में [illegible] देश की इतनी प्रगति के बावजूद हम खुशी और [illegible] शान्ति के लक्ष्य से दूर हैं। हर व्यक्ति को कोई न कोई [illegible] असंतोष है अथवा अधिक काम के बोझ से थका हुआ [illegible] करता है। ऐसा क्यों हैं ? इसके मुख्य कारण और इस [illegible] के समाधान पर कुछ विचार प्रस्तुत हैं।

हम क्या ढूंढ रहे हैं ?

मनुष्य हर प्रकार से सुखी रहना चाहता है। परन्तु दुनिया की चमक कुछ ही समय तक व्यक्ति को खुश रख सकती हैं। बाहरी वस्तुओं की खोज में सुख की अभिलाषा अन्त में दुख और उदासी की ओर ले जाती है। जब तक हम अपने आप को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का एक सिस्टम न समझें और हर कार्य को आत्मज्ञान से न करें तो हमें शारीरिक, मानसिक और अन्य दुख भुगतने ही पड़ेंगे।

हमारी सही जरूरतें क्या हैं ?

रोटी कपड़ा और मकान के अतिरिक्त, हमारी जरूरतें मानसिक शान्ति, बुद्धि का सदुपयोग, आन्तरिक बल व सुख है। मनुष्य पशु के समान नहीं है जो केवल खाना, पीना, सोना और सन्तान पैदा करने में ही खुश रहे। हमें प्रभु ने जो सोचने की शक्ति दी है, उसके सही प्रयोग से ही हम सुखी जीवन की ओर बढ़ सकते हैं। हमारे बुजुर्गों ने पांच कोषों का वर्णन किया है। ये हैं – अन्नमाया कोष, प्राणमाया कोष, मनमाया कोष, ज्ञानमाया कोष और अन्त में आनन्दमाया कोष। ये हमारे जीवन की राह में प्रगति के लक्ष्य हैं और इस राह पर चलने के लिए हमें अपनी इच्छाओं, वासनाओं, विचारों और मान्यताओं पर नियन्त्रण रखना होगा।

अति भौतिकतावाद (materialism) का परिणाम

हमारा बाहरी वस्तुओं में अधिक ध्यान व केवल पैसे की लालसा हमें अन्धा व बुद्धिहीन बना देती है। हम काम और क्रोध की जकड़ में आकर अपना मानसिक सन्तुलन खो देते हैं और सही को सही नहीं देख पाते। फिर हम मन की चंचलता के शिकार हुए उसी मृग की भांति हैं जो जंगल में दौड़ता हुआ यह नहीं समझ पाता कि वो जिस सुगन्ध के पीछे भाग रहा है, वह तो उसी के भीतर से आ रही है।

समाधान क्या है ?

ठीक उसी प्रकार, उस मृग की भांति, जब हमें प्रतीत होता है कि हमारी अपनी आत्मा ही इस शरीर-मन-बुद्धि के सिस्टम का राजा है और पूजनीय है, हम सुख और शान्ति की ओर कदम बढ़ाते हैं। यह शरीर एक मन्दिर की तरह ही है, जिसमें हमारी आत्मा, बुद्धि, मन और कार्य करने की शक्तियां विराजमान हैं। हम जब अपने अहम् से ऊपर उठकर अपनी आत्मा की सही पहचान कर लेते हैं तो सब शंकाओं और दुखों को पीछे छोड़ देते हैं। जिस प्रकार शरीर को सफाई, व्यायाम, सही भोजन और आराम की आवश्यकता है, उसी तरह हमारा मन शान्त व बुद्धि के नियन्त्रण में रहना चाहिए। इसके लिए साधना, चिन्तन, मनन और सही सोच की जरूरत है। इसके अभ्यास से वाँछनीय परिणाम मिलेंगे।

अतः हमारी शिक्षा पद्धति में 'अपने भीतर की खोज' एक आवश्यक हिस्सा होना चाहिए ताकि हम अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा की जरूरतों को ठीक प्रकार से समझ सके। अपने अहम् से ऊपर उठकर समाज में एकता और सामंजस्य (harmony) के महत्त्व को महसूस करना ही निरन्तर खुशी का साधन है। इस प्रकार सही शिक्षा पद्धति हमें मन में वास करने वाले अपने विचारों, इच्छाओं, वासनाओं पर नियंत्रण करने में सक्षम बनायेगी।

भारत के विद्यालयों का प्रबंध : क्या जापान से कुछ सीख सकते हैं?

दिव्यांग कुमार, केन्द्रीय विद्यालय
प्रो. किरन कुमार मोमाया
शैलेश मेहता प्रबंधन विद्यालय,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, मुम्बई

वह शिक्षा जो एक साधारण व्यक्ति को जीवन में संघर्ष करने की क्षमता प्रदान नहीं करती, चरित्रवान नहीं बनाती, मानव प्रेम का भाव उदित नहीं करती और न ही सिंह के समान निर्भीक बनाती है, किस काम की ? वास्तविक शिक्षा वह है जो कि आत्मनिर्भर बनाती है।

वह शिक्षा जो हमारे चरित्रबल और जीवन की कठिनाइयों का सामना करने की शक्ति को प्रस्फुटित नही करती, वह शिक्षा व्यर्थ है

–स्वामी विवेकानंद

His Call to the Nation

शिक्षा प्रणाली की समस्याएं और सुधार के बारे में मीडिया में आ रही चर्चा तो आपकी जानी पहचानी होगी। समुचित शिक्षण की जरूरतों ने दशकों से भारत के नेताओं का ध्यान आकर्षित किया है। गांधीजी से लेकर श्री अरविंद जैसे कई महान राष्ट्रीय नेताओं और संतों ने भारत में मैकाले द्वारा शुरू की गई शिक्षा प्रणाली के परिणाम के बारे में बारीकी से सोचा और नई प्रणाली के बारे में प्रयत्न किए। उदाहरणार्थ, गांधीजी के प्रयोगों के बारे में 'हिन्द स्वराज्य', 'नई शिक्षा की ओर' (गांधी, 1909–1953) देखिए। किन्तु आजादी के छह दशकों बाद भी भारत के हालात और उसमें शिक्षा प्रणाली की विफलता के बारे में तथ्य देखें तो लगता है कि नई आजादी के लिए बेहतर शिक्षा प्रणाली नितांत जरूरी है। इसीलिए काफी वर्षों से बच्चों के माता–पिता, सरकार आदि शिक्षा में सुधार के बारे में चिंतित हैं। हमारे मानव संसाधन विकास मंत्री श्री कपिल सिब्बल जी भी विद्यालय से लेकर उच्च शिक्षा तक प्रणाली में सुधार चाहते हैं। भारत की कुछ बड़े देशों के साथ की गई तुलना से कुछ तथ्य निकल कर आए हैं। अन्य देशों की तुलना में GDP का उच्च प्रतिशत शिक्षा पर खर्च करते हुए भी भारत कई चीजों में बहुत पीछे दिख रहा है।

तालिका 1 : अन्य बड़े देशों के साथ शिक्षा के आयामों पर भारत की तुलना।

घटक / मापदण्ड	चीन	जर्मनी	भारत	जापान	अमरीका
शिक्षा पर सार्वजनिक खर्च (Percentage of GDP)	1.91	4.54	3.23	3.52	5.34
प्रति शिक्षक विद्यार्थियों की संख्या का औसत (Primary)	17.68	13.63	40.18	18.49	13.80
प्रति शिक्षक विद्यार्थियों की संख्या का औसत (Secondary)	16.37	13.46	32.70	12.22	14.56
माध्यमिक नामांकन दर (Secondary enrollment rate)	77.33	99.72	54.63	100	94.22
तृतीय नामांकन दर (Tertiary enrollment rate)	21.58	–	11.85	57.31	81.77

(स्रोत–आई.पी.एस., राष्ट्रीय स्पर्धात्मक्ता अनुसंधान 2009–10, पृष्ठ 174–185)

राष्ट्रीय राजधानी के प्रमुख विद्यालयों में से एक में प्रथम लेखक की सालों की पढ़ाई और मेरे अनेक मित्रों से उनके विद्यालयों के बारे में बातचीत से तो मुझे लगता है कि भारतीय शिक्षा प्रणाली में प्रमुख सुधार की आवश्यकता है। तकनीकी शिक्षण में जिन मानवीय मूल्यों की समस्याओं से हम जूझ रहे हैं (धर और गौड़, 2002), उसका प्रमुख कारण प्राथमिक शिक्षा है ऐसा हमारा मानना है। इसीलिए मैंने इस लेख में केवल प्राथमिक विद्यालयों पर ध्यान केंद्रित किया है। बच्चों को पढ़ाया जाता है लेकिन व्यवहारिक रूप से समझाया नहीं जाता। उनमे जो प्रतिभाएं, सृजनात्मक होती हैं उन्हें विकसित करने की जगह दबा दिया जाता है। भारत में बच्चों को हिंदी से पहले अंग्रेजी सिखाई जाती है। कहां गई वह देशभक्ति की भावना जो बच्चों में डालनी चाहिए? पश्चिम की संस्कृति से सदियों से भरपूर सीखते आए भारतीय को पूर्व के सुसंस्कृत विद्यालयों से कुछ सीखना चाहिए। शिक्षण प्रणाली में सुधार की ओर कार्यरत भारत, शिक्षा का समुचित उपयोग कर चिरस्थायी विकास में अग्रसर जापान से क्या कुछ सीख सकता है ?

एशिया और जापान क्यों ?

जब जापान और कोरिया के ऑटोमोबाइल और इलैक्ट्रानिक्स से लेकर चीन की दैनिक उपयोग की कई सारी वस्तुओं का प्रयोग करके हम उनकी सफलता का अनुमोदन कर रहे हैं तो उनको दुनिया के उच्च स्थान में ले जाने में स्तम्भ की भूमिका निभाने वाली शिक्षा प्रणाली से कुछ अच्छा सीखने को मिले तो क्यों न देखा जाए। राष्ट्रमंडल खेलों को आयोजित करने की योजना सालों से बना रहे भारत ओलम्पिक खेलों में उच्चतम 10 में मजबूत स्थान बनाने को कटिबद्ध इन पूर्व एशियाई देशों से काफी सीख मिल सकती है। भारत और जापान दोनों की प्रणालियां एक दूसरे से कई चीजें सीख सकती हैं मगर इस लेख में हमने केवल भारत ने क्या सीखा है, उसी पर ज्यादा ध्यान दिया है।

भारत और जापान की प्राथमिक शिक्षा में कुछ अंतर

जापानी पाठशाला की वास्तविकता जानने के लिए लेखक ने सात महीने वहां के एक जापानी पब्लिक स्कूल में पढ़ाई की। सालों की मेहनत और जापानी पाठशाला में किए गए अनुसंधान कार्य से बहुत कुछ रोमांचक चीजें सीखने को मिलीं (अनुसंधान विवरण परिशिष्ट में देखें)। कुछ समानताओं के बावजूद कई अंतर भी नजर आए। यहां पर हम अंतर पर ध्यान केन्द्रित कर कुछ सीखने लायक चीजों को ढूंढने का प्रयत्न कर रहे हैं। वहां के प्रधानाचार्य सादे मगर प्रभावशाली थे। वे आगन्तुकों के जूतों को सही जगह पर रखने के लिए भी हिचकिचाते नही थे । शिक्षक बच्चों से बहुत प्यार करते थे और उनके साथ मध्यान्तर में खेलते भी थे। उनकी चुस्ती और तन्दुरुस्ती बहुत अच्छी थी। सभी विषयों के साथ वे खुद ही शारीरिक शिक्षा (P.T.) भी सिखाते थे। शारीरिक शिक्षा में कई चीजें सिखाई जाती थीं जैसे फुटबाल, बेसबॉल, तैराकी आदि और वे सब चीजें सभी शिक्षकों को आती हैं। जापान की शिक्षा प्रणाली कई गुना ज्यादा व्यवहारिक है (प्रथम लेखक के अनुसंधान के लिए मोमाया, 2009 देखें) । भारत और जापान की शिक्षा प्रणाली के मुख्य आयामों पर जो अंतर हमें लगे, उन्हें तालिका– 2 में संकलन करने का प्रयत्न किया गया है।

तालिका 2 : भारतीय और जापानी शिक्षा प्रणाली में अन्तर

शिक्षा का आयाम	भारत की पाठशाला	जापान की पाठशाला
प्रधानाचार्य का सम्मान प्रकट करना	कम	ज्यादा
शिक्षक का बच्चों को समझाना और उनके साथ समय बिताना	बहुत कम	ज्यादा
शिक्षकों की मेहनत	मध्यम	बहुत ज्यादा
बच्चों की काम करने की इच्छा	कम	ज्यादा
बच्चों की काम करने की शक्ति	मध्यम	मध्यम
बच्चों में पुस्तकीय ज्ञान	ज्यादा	कम
बच्चों मे व्यवहारिक ज्ञान	कम	ज्यादा
सह पाठ्येतर अधिगम (कौशल, कला आदि)	मध्यम	ज्यादा
कार्य सिखाना (जैसे–मध्याह्न भोजन परोसना, शौचालय साफ करना आदि)।	कम	बहुत ज्यादा

सिस्टम क्वालिटी (जैसे–पी.टी. सिस्टम, ग्रुप सिस्टम आदि)।	कम	ज्यादा
आयोजनीय क्षमताएं	कम	ज्यादा
खेल आदि में कौशल (लड़के,लड़की सभी में)	मध्यम	बहुत ज्यादा*
बच्चों में चरित्रबल	कम	ज्यादा
माता–पिता, अध्यापक संघ का सहयोग	कम	बहुत ज्यादा

* इस बात को दर्शाने वाले तथ्य : जापान का कई सालों से ओलिंपिक के टॉप 10 में आना, आदि।

टिप्पणी: (1) यह तुलना भारत और जापान की औसतीय पाठशाला को सोच के किया है।

(2) सारणी का स्केलः बहुत कम, कम, मध्यम, ज्यादा, बहुत ज्यादा

जापान में एक अनुभाग को चार–चार बच्चों के छह भागों मे बांटा जाता था। वहां मिड डे मील स्कीम थी और परोसने वाले एक सप्ताह तक पहले टीम के बच्चे होते और दूसरे सप्ताह में दूसरी टीम के बच्चे (चित्र–1)। भोजन के बाद हर टीम को अलग–अलग जगह की सफाई करनी होती थी। जैसे एक टीम को कक्षा का झाड़ू करना होता था, दूसरे टीम को शौचालय, तीसरे को गलियारा साफ करना आदि (चित्र–2)।

चित्र–1 जापानी विद्यालय के मिडडे मील में एक टीम के बच्चे भोजन परोसते हुए।

सभी टीमों को विज्ञान प्रयोगशाला में ले जाकर प्रयोग करने दिया जाता है।

तालिका– 2 से शायद लगे कि जापान भारत से बहुत आगे है, मगर कुछ आयामों में भारत भी जापान से बेहतर है। मीरांबिका, कृष्णमूर्ति विद्यालय जैसे पाठशालाओं में व्यवहारिकता और समूह कार्य जापान से भी बेहतरीन हो सकते हैं। जापान में अगर बच्चे गलतियाँ करते हैं तो उन्हें दण्ड देने के बजाय उनसे उम्मीद की जाती है कि वे खुद सुधरेंगे, जिसमें कई बार बहुत समय लग जाता है, और उस कारण कभी–कभी विद्यालय की शिक्षा में बाधा आ सकती है।

भावी दिशा एवं सुझाव

शिक्षा प्रणाली के केवल कुछ वर्षों के प्रयोगों से भारतीय शिक्षा प्रणाली के पुनरुद्धार के बारे में ज्यादा अनुभवी लोगों को कुछ सुझाव देना उचित नहीं लगता, किंतु फिर भी शायद नए विचार को विकसित किया जा सकता है, इस आशय से कुछ सुझाव प्रस्तुत करते हैं। हमारा उद्देश्य तो भारत के समुचित प्रगति के लिए जो भी जरूरी प्रणालियों में सुधार की कोई

चित्र–2 जापानी विद्यालय में विद्यार्थी कक्ष की सफाई करते हुए।

आवश्यकता दिखाई दे, उसके बारे में किए गए अनुसंधान के परिणाम को सबके साथ बांटना है। शिक्षा प्रणाली के पुनरुत्थान की केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्रालय से लेकर राज्यों के मुख्यमंत्रियों के सहकार की जरूरत है, लेकिन हम अपने सुझाव केवल पाठशालाओं पर ही केंद्रित करना चाहेंगे। केन्द्रीय विद्यालय जैसे विद्यालय जिनकी शाखाएं भारत भर में है ऐसे संगठनों में प्रबंधकर्ताओं की भूमिका अहम हो सकती है। प्रधानाचार्य और शिक्षकों की नियुक्ति से प्रशिक्षण जैसे कई मामलों में सही दिशा के प्रयासों से शिक्षकों का स्तर सुधारा जा सकता है। उदाहरण – नियुक्ति से लेकर उन्नति (promotion) की प्रणालियों में शिक्षक के चरित्र और स्वास्थ्य

को महत्व देने से शायद वे विद्यार्थियों के लिए आदर्श बन पाए और उन्हें उत्साहित कर पाएं।

एनलाइटेन्ड ट्रस्ट (Enlightened trust) के संचालन से दशकों से हजारों विद्यार्थियों में सुसंस्कार के बीज बोने वाले विद्यालयों के कई उदाहरण भारत में मिलेंगे। उदाहरणार्थ, प्रथम लेखक ने दिल्ली के Mother's International School में छह साल तक पढ़ाई की, वहाँ विद्यार्थी को अच्छे संस्कार सीखने के मौके मिलते हैं। वैली स्कूल (बंगलौर) और मीरांबिका (दिल्ली) जैसे प्रायोगिक विद्यालय भी आगे आ रहे हैं, लेकिन उनकी कम संख्या और उच्च शिक्षण शुल्क आदि की वजह से केवल चंद लोग ऐसे प्रयोग में भाग ले पाते हैं।

विद्यार्थियों के समुचित विकास का उद्देश्य रखने वाली पाठशालाओं में शिक्षकों की केंद्रीय भूमिका रहती है, इसीलिए शिक्षकों को अपनी जिम्मेदारियों के प्रति जागरूक रहकर भरपूर मेहनत करनी होगी। अगर विद्यालय के प्रबंधकर्ता ज्यादा उत्साहवर्धक न भी हों फिर भी जागरूक शिक्षकों को अच्छा समूह बनाकर अपने प्रयत्न आगे बढ़ाने चाहिए। उनकी सफलता देखकर बहुत लोग आगे आएंगे। प्रधानाचार्यों और शिक्षकों को विद्यालय में भरपूर समय बिताना चाहिए, खास करके बच्चों के साथ शिक्षा का स्तर सुधारने के लिए शिक्षकों और माता–पिता के बीच समन्वय और प्रयोगों की आवश्यकता है। यह समन्वय माता–पिता अध्यापक संघ (PTA) जैसे माध्यमों से मजबूत किया जा सकता है। अगर अनिवार्य रूप से न हो तो, ऐच्छिक क्लब (optional club) के माध्यम से खेलकूद, नृत्य, विज्ञान मेला जैसे प्रयोग करने चाहिए। इसमें विद्यार्थी बड़ी संख्या में भाग ले सकें, इसके लिए विद्यार्थियों का पाठशाला के नजदीक रहना जरूरी है ताकि पढ़ाई के बाद भी वे पाठशाला में समय बिता सकें।

अगर भारतीय विद्यालयों में भी अच्छे गुण लाने हों, तो विद्यार्थियों को सुझाव है कि वे आपसी टीम कार्य की भावना को बढ़ाएं। शारीरिक श्रम करने में कभी न घबराएं, बल्कि नई–नई चीजें सीखने और करने में रुचि दिखाएं। अगर माता–पिता अपने बच्चे को अच्छी शिक्षा लेते देखना चाहते हैं,तो उनकी भी एक महत्वपूर्ण भूमिका है वे अपने बच्चों को घर में अच्छे संस्कार दें और बच्चे की सृजनात्मकता जैसी कलाओं को बढ़ावा दें। हमारा विश्वास है कि विद्यार्थियों की कल्पनाशीलता और कलात्मकता को बढ़ाने से ज्यादा प्रभाव होगा।

आभार

प्रथम लेखक के जापानी शिक्षकों और दोस्तों को हम उनकी सहायता के लिए आभार व्यक्त करना चाहेंगे। भारत में प्रथम लेखक के विद्यालय शिक्षकों और प्रबंधकों को उनके सहकार के लिए हम कृतज्ञ हैं। उन्होंने प्रथम लेखक के जापान मे अनुसंधान के बाद उसे विद्यालय में क्रियान्वित कराने में भी काफी मदद की। समीक्षकों ने भी हमें इस आलेख को सही रूप देने में काफी मदद की, जिसके लिए हम उन्हें धन्यवाद कहना चाहेंगे। हिन्दी भाषा में अभिव्यक्ति में कुछ गलतियाँ हो सकती हैं, उनके लिये क्षमा चाहते हैं।

परिशिष्ट

अनुसंधान के बारे में

भारत की शिक्षा प्रणाली में गांवों के विद्यालय से लेकर भा. प्रौ.सं. जैसी उच्च शिक्षा के संस्थान में वर्षों (1970 और 1980) के प्रैक्टिकल अनुभव से उनकी मजबूती और कमजोरियों का कुछ अंदाज लगा। जापान की शिक्षा प्रणाली को जानने का प्रथम प्रयोग 1992 में शुरू हुआ जब द्वितीय लेखक ने टोक्यो में एक वर्ष अनुसंधान किया। इस प्रयोग से लगा कि जब तक जापान की पाठशाला में दाखिल होकर अनुसंधान कार्य (action research) नही करते तब तक उस शिक्षा प्रणाली के तथ्य ठीक से नही समझ पाएंगे। ऐसा मौका 2008 में मिला। इस अनूठे प्रयोग से जो सीख मिली उसका निचोड़ इस लेख में राष्ट्रभाषा में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

सन्दर्भ

(1) गांधी, अनुवादक–अमृतलाल ठाकोरदास नाणावाटी, हिन्द स्वराज्य, 1909 सर्व सेवा संघ प्रकाशन, राजघाट वाराणसी।

(2) गांधी, भरतन कुमारप्पा; नई शिक्षा की ओर, 1943, नवजीवन ट्रस्ट, अहमदाबाद।

(3) मोमाया, दिव्यांग, माई एक्सपिरिएन्स इन ए जापानीज स्कूल, जापान कॉलेज, दिसम्बर, 2009, पृष्ठ–11।

(4) धर पी.एल., गौड आर.आर., इन्टिग्रेटिंग ह्यूमन वैल्यूज इन टेक्नीकल एडयूकेशॅन्, मार्च, 2002।

(5) स्वामी विवेकानन्द, हिज कॉल टू दि नेशॅन 1997, अद्वैत आश्रम।

प्राकृतिक इंजीनियरी का उदय

प्रो. सन्तोष सत्या
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

पृष्ठभूमि

डॉ. रघुनाथ अनन्त माशेलकर का एक खूबसूरत व सारगर्भित लेख "Emergence of Natural Engineering" पिछले 3–4 वर्षो से आई.आई.टी. दिल्ली के इंजीनियरी विद्यार्थियों को एक पाठ्यक्रम RDL 340 "Technology and Community Development" के अन्तर्गत पढ़ने के लिये दिया जाता रहा है। यह लेख विद्यार्थियों को मंत्र मुग्ध कर देता है तथा वे प्राकृतिक इंजीनियरी के अन्य सुन्दर उदाहरण खोज कर लाते हैं। इस प्रकार डॉ. माशेलकर के शोध पत्र की प्रेरणा से अभी तक इस विषय पर दो रिपोर्ट तैयार की गयी है। आशा है कि 'जिज्ञासा' के अगले अंक में इस विषयवस्तु पर अधिक जानकारी प्रकाशित की जाएगी।

विज्ञान एवं इंजीनियरी की समग्र समझ

जब हम 'इंजीनियर' शब्द की ओर देखते हैं तो पाते है कि यह 'ingenieur' नामक फ्रैंच शब्द से उपजा है। यह शब्द वास्तव में निष्ठावान (ingenous) होने के अर्थ में है । इसका अभिप्राय है कि इंजीनियर निश्ठावान होता ही है, ऐसा माना जाता है और उसे कुछ ऐसा कार्य करना होता है जो अभिनव हो, और जिसमें सृजनात्मक शक्ति समाहित हो।

हमेशा हमारे दिमाग में विज्ञान, इंजीनियरी, टैक्नोलोजी, मूल अनुसन्धान (basic research) अनुप्रयुक्त (applied) अनुसंधान आदि को लेकर भ्रम बना रहता है और हम इन मुद्दों पर चर्चा व विचार –विमर्श करते रहते हैं। इसको भली प्रकार समझने के लिये साहित्य में वर्णित वैज्ञानिक तथा इंजीनियर की विभिन्न परिभाषाओं का अवलोकन और उनका विश्लेषण किया गया। इस आधार पर स्पष्ट हुआ कि वैज्ञानिक अस्तित्व में जैसा कुछ है उसका अन्वेषण करता है जबकि इंजीनियर उसे सृजित करता है, जिसका अस्तित्व ज्ञात न हो।

यदि हम विज्ञान विशेषकर आधुनिक विज्ञान के उदय/प्रादुर्भाव (emergence) का अवलोकन करें तो पाते हैं कि यह केवल 200 साल पुरानी है लेकिन यदि इंजीनियरी की ओर देखें तो हमें यह जानकर गर्व होता है कि यह लगभग 30000 (तीस हजार) वर्ष पुरानी है। इंजीनियरी लगभग उस काल में प्रारम्भ हुई जब आदि मानव ने लकड़ी के लट्ठे व रस्सी से लट्ठों का तैरता हुआ बेड़ा (rafts) बनाया तथा शीघ्र ही रस्सी से खम्भे (masts) व पाल (sail) के द्वारा पवन ऊर्जा का दोहन करना सीख लिया। यहां प्रचालन (operative) शब्द दोहन करना है। अतः इंजीनियर का मुख्य कार्य सर्वहित के लिये दोहन (harness) करना है, प्राकृतिक शक्तियों जैसे पवन, समुद्र, मिट्टी, लहरें इत्यादि का दोहन।

वर्तमान इंजीनियरी पाठ्यकम

आइये अब हम उन कोर्स (पाठ्यक्रम) का अवलोकन करें जिनका सामान्यतया इंजीनियर अध्ययन करते हैं। ये विषय है – भौतिक शास्त्र, रसायन शास्त्र तथा गणित लेकिन वे कभी भी जैव शास्त्र को साथ नहीं पढ़ते हैं। प्रश्न है कि हम ऐसा क्यों करते हैं? प्रकृति लगभग 800 मिलियन वर्षो से अत्यधिक सृजनात्मक एवं अभिनव जैव शास्त्र का प्रयोग करती रही है। इस प्राकृतिक इंजीनियरी की खूबसूरत प्रक्रिया को हम ईमानदारी (scruplously) से अपने इंजीनियरिंग पाठ्यक्रम से बाहर कर देते हैं। एक जैव इंजीनियर का वक्तव्य याद करते है – वह 'ईश्वर–स्वयं एक महान इंजीनियर' द्वारा डिजाइन किये गये दो कानों के बारे में बता रहे थे। ऐसा महान इंजीनियर हमेशा ऐसी वस्तुयें डिजाइन करता है जो बहुउद्देशीय (multipurpose) है। कोई भी ऐसी वस्तु जो हमारे अस्तित्व का हिस्सा है, उसके बहुउद्देश्य होते है। चाहे वह मुख हो या कान उसका कभी भी एक ही कार्य (function) नहीं होता। । यही अभिनव (innovation) का कोर आधार है।

प्रकृति की अद्भुत इंजीनियरी

हैल्महोल्टज के अनुसार कान, अनुनाद (resonators) तन्त्र का हृदय है जो जटिल आवाजों का विश्लेषण करता है। फिर यह केबल (cable) के रूप में श्रवण नाड़ी (auditory nerve) सहित टेलीफोन बना। यह मस्तिष्क में छिपा तरंग

* यह शोध पत्र डॉ. रघुनाथ अनन्त माशेलकर, पूर्व महानिदेशक, वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद के रोजगार समाचार में प्रकाशित लेख *(EN, 2002)* के संक्षिप्त अनुवाद व अन्य सम्बन्धित जानकारी पर आधारित है।

विश्लेषक (frequency analyzer) भी था। अभी हाल ही में इसकी अन्य अनेक अद्‌भुत विशेषताओं (novelties) जैसे प्रतिबाधा मिलान (impedance matching), तरंग विश्लेषक (frequency analyser) एवं स्वतः प्राप्त नियंत्रक (automotive gain control) के बारे में जानकारी मिली। आशा है कि आगे हम अपने कान को अनेक भिन्न नजरियों के साथ निहारेंगे। यही प्राकृतिक इंजीनियरी की खूबसूरती है।

आइये अब मस्तिष्क (brain) का अवलोकन करें। प्रारम्भ में मस्तिष्क को एक टेलीफोन एक्सचेंज के रूप में समझा गया, तत्पश्चात् एक इलेक्ट्रॉनिक कम्प्यूटर तथा हाल में होलोग्राफी भंडारण तंत्र (Holographic data storing system) माना गया। अतः विश्वास ही नहीं होता कि किस तरह से प्राकृतिक इंजीनियरी प्रचालित होती है। परन्तु साथ ही हम जो करते हैं–वह है कि हम इन प्रकृति की अद्‌भुत नवप्रवर्तनों (innovations) को अपने इंजीनियरी विद्यार्थियों से दूर रखते हैं।

प्राकृतिक इंजीनियरी के कुछ उदाहरण

प्रकृति अदभुत है। प्राकृतिक इंजीनियरी के अनेक उदाहरण अस्तित्व में मौजूद है। सर्पों का उदाहरण लीजिये, उनके पास अवरक्त संसूचक (Infrared detectors) है जिससे उनमें वायुमंडलीय तापमान से 0.001°C का अन्तर नापने की क्षमता है। इसी के द्वारा वे मानव (homosapiens) के शरीर के विकिरण (radiation) मात्र से उनकी उपस्थिति की पहचान कर सकते हैं। कुछ अन्य इसी प्रकार के उदाहरण हैं –

(I) भटके हुए फोटान (stray photon) की दिशा ज्ञात करने में फंगस की भूमिका

(ii) गुबरैले (Beetle) को जब कोई परेशान करता है तो वह माइक्रो सेकेण्ड में उस पर थूक देती है, जिसका तापक्रम 120° C होता है। यह तो घोर आश्चर्य प्रतीत होता है। इस प्रक्रिया को समझने पर पता चला कि इस विशेष गुबरैले (बीटल) के पास एक विशेष एन्जाइम मौजूद है जिसे गुबरैला माइक्रो सेकेण्ड में मिलाकर गर्म फुहारा (hot spray) बना लेती है।

(iii) एक दुर्लभ मछली (बिना ऑक्सीजन के रहने वाली मछली) – गोल्ड फिश की यह प्रजाति कूसियन कार्प महीनों तक बिना ऑक्सीजन के रह सकती है। अनुसंधानकर्त्ताओं ने पाया कि यह दुर्लभ मछली अपने पंखों की बनावट को बदल सकती है ताकि वह ऑक्सीजन की कमी का शिकार होने से बच सके। इसके अलावा इसका रक्त किसी भी अन्य कशेरूकी जीव (Vertebrate) की तुलना में अधिक ऑक्सीजन रख सकता है। जब ऑक्सीजन की आपूर्ति कम या बंद हो जाती है तो यह प्रशांतक (tranquiliser) बनाती है और एल्कोहल पैदा करती है। यही क्रियाविधि (mechanism) उसे महीनों तक बिना ऑक्सीजन के सामान्य गतिविधियों के साथ जीवित रखती है।

(iv) चमगादड़ की ऐसी प्रजाति जिसके चुम्बकीय कुतुबनुमा (magnetic compass) अर्न्तनिहित (inbuilt) है जिससे यह लम्बी यात्रा के बाद भी अपने घर / घोंसले का रास्ता तलाश कर लेता है।

(v) मोर के सतरंगी पंख इतने आकर्षक व लुभावने हैं लगता है कि जैसे इस कृति की रचना करने में प्रकृति ने अपने अनुभव एवं पराक्रम का सम्पूर्ण खजाना लुटा दिया है। इस जादुई रंग संयोजन का राज है इसके पंखों में मौजूद सूक्ष्म (लगभग 54-80 नैनो मीटर) व आपस में गुंथी हुई त्रिविमीय फोटोनिक क्रिस्टल (Three dimensional photonic crystal) संरचनाएं होती हैं। इन संरचनाओं के स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन सूक्ष्मदर्शी द्वारा गहन अध्ययन, प्राकृतिक नैनो सांचे (Natural nano tamplate) व नैनो संदीप्तिशील पदार्थ बनाने में दिशा–निर्देश प्राप्त किये गये हैं। (विपिन कुमार गुप्ता, समीक्षा 2009, राष्ट्रीय भौतिकी प्रयोगशाला)

इस प्रकार उपर्युक्त उदाहरणों पर वैज्ञानिक अनुसंधान करने से काफी नये पदार्थ निर्माण में सहायता मिल सकती है।

उपसंहार

क्या अद्‌भुत तरीके है जिनसे सदियों से प्राकृतिक इंजीनियरी अपना कमाल दिखा रही है। यदि हमें वर्तमान इंजीनियरी को नवप्रवर्तनकारी इंजीनियरी में परिवर्तित करना है तो अत्यन्त महत्वपूर्ण है जीवन को निहारना तथा इसके विश्लेषण व संश्लेषण से जुड़े विभिन्न प्रकरण को इंजीनियरी पाठ्यक्रम में समाहित करना होगा। प्रयोगशाला में अनेक प्रयोगों में इस तथ्य के महत्व को प्रत्यक्ष रूप में देखा तथा अनुभव किया गया है। अतः स्पष्ट है कि इंजीनियरी तंत्र (engineering system) को प्रकृति से बहुत कुछ सीखना है। इसके लिए आवश्यक है कि जैविक घटनाओं (biological phenomenon) को इंजीनियरी पाठ्यक्रम में समाहित करें। मेरा मानना है कि कुछ अद्‌भुत बातें वैज्ञानिक सिद्धान्तों के प्रेक्षण से सीखी जा सकती हैं कि प्रकृति अपनी इंजीनियरी कैसे प्रतिपादित करती है।

आभार

लेखिका इस लेख को लिखने की प्रेरणा के लिये डॉ. माशेलकर से व्यक्तिगत विचार–विमर्श के लिए हार्दिक आभार प्रकट करती है और आई.आई.टी. दिल्ली के बी. टेक. विद्यार्थियों को अपना स्नेह प्रेषित करती है। हिन्दी कक्ष परिवार के श्री सोने लाल कोल (जिन्होंने 'मोर के पंख' पर शोध पत्र उपलब्ध कराया) तथा श्री दिलीप कुमार सिंह (अनुवाद के सटीक प्रस्तुतीकरण के लिए) को भी हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करती हैं।

तृणमूल टैक्नोलोजिकल नवप्रवर्तन का राष्ट्र के विकास में योगदान (सृजन की नई राह पर ......एक सार्थक प्रयास)

प्रो. अनिल गुप्ता एवं डॉ. विपिन कुमार
राष्ट्रीय नवप्रवर्तन प्रतिष्ठान
अहमदाबाद, गुजरात

पृष्ठभूमि

पर्यावरण अनुकूल एवं सामाजिक समरसता की दृष्टि से टेक्नोलॉजी विकसित करना भारतवर्ष में एक स्वस्थ परम्परा रही है। भारत में अनौपचारिक शिक्षा पद्धति के माध्यम से पीढ़ी–दर–पीढ़ी पारम्परिक ज्ञान का हस्तांतरण होता रहा है। इस विद्या व व्यवस्था की जड़े आज भी गहरी है। जन सामान्य नित नए अभिनय प्रयोग कर समाज में समृद्धि लाने का प्रयत्न करता रहा है, लेकिन इससे उपजी तकनीकों को अधिक दक्ष बनाने व व्यापारीकरण करने हेतु निःसंदेह आधुनिक विज्ञान व प्रबंध शास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका है। इस संदर्भ में 1988 में गंभीर चिंतन के पश्चात एक सुव्यवस्थित योजना को मूर्त रूप देते हुए **हनी बी नेटवर्क** की स्थापना और नवप्रवर्तनशील प्रयासों की खोज और उन्हें आगे बढ़ाने की एक मुहिम छेड़ी। हनी बी दर्शन की बुनियाद पर स्थापित राष्ट्रीय नवप्रवर्तन प्रतिष्ठान (National Innovatgion Foundation, NIF) ने इसी पहल को आगे बढ़ाया है। इस लेख में तृणमूल नवप्रवर्तनों की खोज, उन्हें पुरस्कृत करने और उनके उद्भवन आदि के लिए NIF के प्रमुख गतिविधियों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है।

1.0 राष्ट्रीय नवप्रवर्तन प्रतिष्ठान की विभिन्न गतिविधियाँ

इस संस्थान की स्थापना भारत सरकार के विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग द्वारा 28 फरवरी, 2000 को हुई। इसकी स्थापना इस मुख्य उद्देश्य के साथ की गई कि नए तृणमूल नवप्रवर्तनों (grassroots innovaions) की खोज की जाए और इनको फलने, अस्तित्व बनाए रखने तथा आगे बढ़ाने के लिए संस्थागत समर्थन प्रदान किया जाए। साथ ही इन नवप्रवर्तनों को आत्मनिर्भर इकाइयों में रूपांतरित होने तक मदद उपलब्ध कराई जाए। NIF ने आर्थिक तौर पर विपन्न लेकिन ज्ञान से सम्पन्न गरीब लोगों के लिए एक संस्थागत मंच उपलब्ध कराया है तथा एक नवप्रवर्तनशील भारत के निर्माण के लिए प्रतिबद्ध है।

1.1 खोज एवं दस्तावेज़ीकरण

NIF के मिशन में पहला कदम नए नवप्रवर्तनों की खोज एवं दस्तावेज़ीकरण (documentation) का है। ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में जाना, क्षेत्र में गहन छानबीन करना और शोध यात्राएँ आयोजित करना इस खोज में शामिल हैं। यह अनूठेपन की, प्रयोगधर्मी लोगों की तलाश है और समाज में मौजूद ज्ञान विशेषज्ञों तथा स्थानीय समुदायों से सम्पर्क साधना है। NIF (www.NIFindia.org) अभी तक छः राष्ट्रीय अभियानों का आयोजन कर चुका है और सातवाँ चल रहा है। इन अभियानों के दौरान देश भर के 545 से अधिक जिलों से 1,40,000 से ज्यादा नवप्रवर्तनों और पारंपरिक ज्ञान को खोजा गया।

1.2 मूल्य परिवर्धन और शोध एवं विकास

अधिकांश नवप्रवर्तनों और/या पारंपरिक ज्ञान के उत्पाद विन्यास और/या डिज़ाइन को उपयुक्त बनाने के लिए आधुनिक विज्ञान और प्रौद्योगिकी के अनुप्रयोग की आवश्यकता होती है। विभिन्न तकनीकी संस्थान, राष्ट्रीय प्रयोगशालाओं और विश्वविद्यालयों के सहयोग से अब तक 209 परियोजनाओं को प्रमाणीकरण और मूल्य परिवर्धन के लिए हाथ में लिया गया है।

1.3 व्यवसाय विकास और लघु उद्यम

विभिन्न उत्पादों के लिए दुनिया भर से बड़ी संख्या में अनुरोध प्राप्त हुए हैं। ये या तो विशिष्ट/गैर-विशिष्ट विपणन/निर्माण अधिकारों हेतु प्रौद्योगिकी उपलब्ध कराने के लिए हैं या फिर नवप्रवर्तक उत्पादों की सामान्य खरीद के लिए हैं। कुछेक अनुभवी उद्योगपतियों और व्यवसायिक विशेषज्ञों ने कुछ परियोजनाओं को आगे बढ़ाकर उन्हें मूल्य श्रृंखला में सम्मिलित करने के लिए परामर्शदाता के रूप में मदद का हाथ आगे बढ़ाया है।

अनेक उत्पादों की जबरदस्त माँग बनी हुई है। इनमें व्यायाम वाला झूला, नॉनस्टिक मिट्टी का तवा, दूध दूहने की मशीन, नारियल पेड़ चढ़ाई का उपकरण, मोटेक ट्रेडिल प्रेस, लहसुन छीलने का यंत्र, फ्यूज ट्यूबलाइट का दोबारा उपयोग इत्यादि शामिल हैं।

1.4 लघु उद्यम नवप्रवर्तन निधि

तृणमूल नवप्रवर्तनों और पारंपरिक ज्ञान के समर्थन में एक उच्च जोखिम निधि के निर्माण के लिए NIF के प्रयास आखिरकार रंग लाये, जब 'सिडबी' की सहायता से अक्टूबर, 2003 में

एमवीआईएफ (लघु उद्यम नवप्रवर्तन निधि) की स्थापना हुई। इसकी शुरुआत से लेकर अब तक एमवीआईएफ द्वारा 143 परियोजनाओं को सहायता प्रदान की गयी है, जो उद्भवन के विभिन्न चरणों में हैं।

1.5 बौद्धिक संपदा प्रबंधन

निर्धनों के पास समृद्धि के नाम पर उनका अपना ज्ञान ही होता है। अतः ज्ञान आधारित सोच के साथ काम करने के लिए यह आवश्यक है कि नवप्रवर्तकों तथा विशिष्ट पारंपरिक ज्ञानधारकों के बौद्धिक संपदा अधिकारों की रक्षा की जाए और प्रोत्साहन के तरीके ईजाद किए जाएँ।

1.6 प्रसार एवं सूचना प्रौद्योगिकी प्रबंधन

इसके अंतर्गत नवप्रवर्तनों (समसामयिक नवप्रवर्तन और पारंपरिक ज्ञान) के बहुभाषी राष्ट्रीय रजिस्टर का रखरखाव और विकास, लोक ज्ञान डेटाबेस तथा पेशागत ज्ञान डेटाबेस का प्रबंधन, इलेक्ट्रॉनिक नेटवर्किंग, वेब प्रबंधन, विभिन्न क्षेत्रीय भाषा पोर्टलों के साथ समन्वय (coordination) करना है। साथ ही, राष्ट्रीय तृणमूल नवप्रवर्तन तथा पारंपरिक ज्ञान प्रबन्धन सूचना व्यवस्था का संचालन है। राष्ट्रीय रजिस्टर ज्ञानधारकों के बौद्धिक संपदा अधिकारों के संरक्षण में भी मददगार है। विभिन्न सार्वजनिक स्थलों पर बहुभाषी, मल्टीमीडिया केंद्रों (किऑस्क), शैक्षणिक संस्थानों और स्थानीय निकायों से समन्वय और भारतीय भाषाओं में नवप्रवर्तनों तथा पारंपरिक ज्ञान का विकेन्द्रीकृत डेटाबेस स्थापित करने में मदद करना भी इस आयाम का लक्ष्य है।

2.0 उपलब्धियाँ

तृणमूल नवप्रवर्तकों तथा पारंपरिक ज्ञानधारकों के ज्ञान, नवप्रवर्तनों का दस्तावेज़ीकरण और इनमें से उत्कृष्ट को पहचान, प्रतिष्ठा, पुरस्कार प्रदान करना - यह NIF के बुनियादी कार्यों में से एक है और जिसे NIF विगत दस वर्षों से लगातार करता आ रहा है। अभी तक छः राष्ट्रीय अभियानों का आयोजन कर चुका है और सातवाँ चल रहा है। इन अभियानों के दौरान देश भर के 545 से अधिक जिलों से 1,40,000 से ज्यादा नवप्रवर्तनों और पारंपरिक ज्ञान को खोजा गया। NIF बड़ी संख्या में ऐसे नवप्रवर्तनों को जुटाने में भी सफल रहा, जिनका सम्बन्ध महिलाओं के ज्ञान क्षेत्र से है। यह उल्लेखनीय है कि इन प्रविष्टियों का 80 प्रतिशत हनीबी नेटवर्क के स्वयंसेवकों के माध्यम से प्राप्त हुआ। **इनमें से कई अनूठे नहीं हैं और हो सकता है कि कई एक से अधिक स्थानों पर देखने को मिल जाएँ। तथापि डेटाबेस यह दिखाता है कि तृणमूल स्तर पर ज्ञान व्यवस्था कितनी जीवन्त, व्यापक व समृद्ध है।**

National Innovation Foundation तृणमूल नवप्रवर्तकों एवं विशिष्ट पारंपरिक ज्ञानधारकों को सम्मानित करने के लिए सन 2000 से द्विवार्षिक पुरस्कार कार्यक्रम का आयोजन करता है जिसमें राष्ट्रीय पुरस्कार, राज्य पुरस्कार दिए जाते हैं।

NIF का यह सौभाग्य रहा कि विगत पुरस्कार कार्यक्रमों में से चार में भारत के माननीय राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम के हाथों पुरस्कार वितरित हुए। भारत विश्व में एकमात्र ऐसा देश है जिसने समाज के अनौपचारिक क्षेत्र से आने वाले तृणमूल नवप्रवर्तकों को सम्मानित करने की एक ठोस पहल की है।

2.1 बाल सृजनात्मकता

बच्चों की सृजनात्मकता सामने लाने और उसे पुरस्कृत करने के उद्देश्य से NIF 'इग्नाइट' प्रतियोगिता आयोजित करता है। बच्चों के प्रौद्योगिकीय विचारों एवं नवप्रवर्तनों की इस राष्ट्रीय प्रतियोगिता को केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड (सीबीएसई), नवोदय विद्यालय समिति, 'सृष्टि' के सहयोग से आयोजित किया जाता है। इस तरह की प्रतियोगिता को कराने के पीछे विचार यह है कि बच्चों की छुपी सृजनात्मकता को सामने लाया जाए और बच्चों को मौका मिले कि वे अपने पाठ्यक्रम की दुनिया से बाहर भी सोच सकें। 'इग्नाइट 09' प्रतियोगिता में देश भर के 21 राज्यों के 82 जिलों के बच्चों ने भागीदारी की। कुल मिलाकर 1344 प्रविष्टियाँ प्राप्त हुईं। इनमें ऊर्जा, पर्यावरण, परिवहन, आम घरेलू उपयोगिता से लेकर कई सामाजिक समस्याओं के समाधान शामिल थे। पुरस्कार विजेताओं की घोषणा 15 अक्टूबर को की गई। 15 अक्टूबर को भारत के पूर्व राष्ट्रपति और बच्चों के प्यारे डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम का जन्मदिन होता है। NIF द्वारा इस दिन को बाल सृजनात्मकता और नवप्रवर्तन दिवस के रूप में मनाया जाता है। अभी 'इग्नाइट 10' प्रतियोगिता जारी है।

2.2 बौद्धिक संपदा अधिकार प्रबंधन

NIF अभी तक भारत में 238 पेटेंट और अमेरिका में 7 पेटेंट के लिए आवेदन कर चुका है और एक आवेदन पेटेंट सहयोग संधि (पीसीटी) के तहत किया गया है। इनमें से भारत में 34 और अमेरिका में 4 पेटेंट प्राप्त हो चुके हैं। इन पेटेंट आवेदनों के अलावा NIF ने 15 ट्रेडमार्क आवेदन फाइल किए, जिनमें से 3 प्राप्त हो चुके हैं। डिज़ाइन के लिए 5 आवेदन किए गए हैं। पौधा किस्म एवं कृषक अधिकार अधिनियम (पीपीवी एंड एफआरए) के तहत किसानों की 11 किस्मों के पंजीकरण के लिए आवेदन किए गए हैं।

2.3 प्रौद्योगिकी लाइसेंसीकरण

NIF ने अपनी स्थापना से लेकर अब तक 'ज्ञान' (GAIN, grass root augmentation innovation network) और सहयोगी हितधारकों के माध्यम से प्रौद्योगिकी लाइसेंसीकरण के 50 मामले हाथ में लिए हैं। हैदराबाद स्थित कम्पनी मैट्रिक्स बायो साइंसेज प्रा.लि. ने हर्बल कीटनाशक तथा पशुचिकित्सा उत्पादों सम्बन्धी कुल 13 हर्बल टैक्नोलोजी को लाइसेंसीकृत किया है। इनमें 6 हर्बल कीटनाशक तथा 7 पशुचिकित्सा उत्पाद हैं।

विगत वर्षों में इन उत्पादों के व्यापारीकरण के लिए दुनिया के अलग-अलग देशों से प्रौद्योगिकी साझेदारी प्रस्ताव मिले हैं। इनमें चीन, ताइवान, नाइजीरिया, यूगाण्डा, आस्ट्रेलिया, अमेरिका, हॉलैण्ड, इंग्लैण्ड, ईरान जैसे देश हैं। हालाँकि अधिकांश प्रस्ताव अभी मूर्त रूप नहीं ग्रहण कर पाए हैं। लेकिन इस दिशा में प्रयास जारी हैं।

3.0 विभिन्न वैज्ञानिक संस्थाओं के साथ सहयोग

शोध यात्राओं द्वारा खोजे गए नव प्रवर्तन एवं पारम्परिक ज्ञान के विकास व मूल्य परिवर्द्धन के लिए विभिन्न वैज्ञानिक संस्थानों (CSIR, ICMR इत्यादि), तकनीकी संस्थानों (NBRI, लखनऊ; IVRI, इज्जतनगर बरेली; NID, अहमदाबाद; IARI, दिल्ली; IITs, NITs, आदि) आदि प्रतिष्ठित संस्थानों के साथ संबंध स्थापित किए हैं। नवप्रवर्तनों की वैज्ञानिक मान्यता के लिए कुछ संस्थानों के साथ जैसे– CSIR, ICMR के साथ सहमति पत्र (MOU) भी हुए हैं।

4.0 प्रसार

4.1 भारत के अलग-अलग राज्यों की सचित्र नवप्रवर्तन पुस्तकें

NIF की गतिविधियों के बारे में चेतना जगाने और तृणमूल नवप्रवर्तनों के प्रोत्साहन और विकास में सरकारों की भागेदारी बढ़ाने के उद्देश्य से तेरहवें वित्त आयोग के अध्यक्ष डॉ. विजय केलकर ने एक महत्वपूर्ण सुझाव दिया था। उनके सुझाव पर अमल करते हुए NIF ने विभिन्न राज्यों के नवप्रवर्तनों पर आधारित सचित्र पुस्तकों की एक श्रृंखला निकाली है। इस श्रृंखला की पहली पुस्तक हिमाचल प्रदेश के नवप्रवर्तनों पर थी। इसी तरह दूसरे राज्यों के लिए भी सचित्र नवप्रवर्तन पुस्तकें प्रकाशित की गई हैं।

4.2 मीडिया

प्रमुख राष्ट्रीय और अन्तरराष्ट्रीय चैनलों द्वारा दिखाई गई दिलचस्पी से NIF के क्रियाकलापों को एक नयी गति मिली है। 'डिस्कवरी' चैनल ने वर्ष 2006 में अपने टीवी कार्यक्रम 'बियॉन्ड टुमॉरो' के लिए कुछ नवप्रवर्तकों का परिचय तैयार किया था। बहुत खूबसूरती से फिल्माई गई नवप्रवर्तकों की इन कहानियों को 'डिस्कवरी' चैनल ने कई बार दिखाया। तृणमूल नवप्रवर्तकों की भूमिका पर प्रकाश डालते हुए 'एनडीटीवी' ने अंग्रेजी में एक नियमित श्रृंखला 'इंडिया इन्नोवेट्स' आरम्भ की थी। साथ ही हिन्दी में 'आविष्कार इंडिया' कार्यक्रम को प्रसारित किया। वर्ष भर तक चली इन श्रृंखलाओं में देश भर के नवप्रवर्तकों से परिचित कराया गया था। वर्ष 2006 में, हैदराबाद के एक प्रमुख दैनिक समाचार-पत्र 'ईनाडू' ने प्रत्येक सप्ताह तृणमूल नवप्रवर्तकों पर एक लेख प्रकाशित किया। इसको शानदार प्रत्युत्तर मिलें। 'आउटलुक', जो एक प्रमुख राष्ट्रीय साप्ताहिक पत्रिका है, ने अपने नवम्बर, 2006 के एक अंक में नवप्रवर्तनों पर एक लेख प्रकाशित किया था। 'बीबीसी लंदन' ने उत्तर भारत में दिसम्बर, 2006 की शोधयात्रा को कवर किया था और साथ ही अपने कार्यक्रम के लिए जनवरी, 2007 में कुछ नवप्रवर्तकों का एक परिचय तैयार किया था। एक प्रमुख हिन्दी समाचार चैनल 'आज तक' ने भी तृणमूल नवप्रवर्तनों पर एक छोटी-सी समाचार श्रृंखला जनवरी, 2007 में प्रसारित की। NIF के चौथे पुरस्कार समारोह को स्थानीय और राष्ट्रीय प्रमुख दैनिक पत्रों ने अच्छी तरह कवर किया। मणिपुर में जुलाई, 2007 में आयोजित हमारी एक कार्यशाला को 'शिकागो ट्रिब्यून' और एक प्रमुख मणिपुरी समाचार चैनल 'आईएसटीवी' ने विस्तार से कवर किया। 'सीएनबीसी टीवी 18' ने भी वर्ष 2007 में नवप्रवर्तनों पर एक श्रृंखला प्रसारित की। 'सीएनएन आईबीएन' ने अगस्त 2008 में ग्रामीण नवप्रवर्तनों पर एक कार्यक्रम 'आइडियाज टू लाइफ' दिखाया। वर्तमान में 'द हिंदू', 'डेक्कन क्रोनिकल' अखबार और योजना पत्रिका नियमित रूप से NIF डेटाबेस से सामग्री प्रकाशित कर रहे हैं। 'द हिंदू' में प्रकाशित होने वाले लेखों की वजह से ढेरों-ढेर पूछताछें प्राप्त हुई हैं। इन सबके अलावा इंडियन एक्सप्रेस, टाइम्स ऑफ इंडिया, द स्टेट्समैन, द टेलीग्राफ, वाल स्ट्रीट जर्नल, द डेली मेल, डीएनए, दिव्य भास्कर इत्यादि प्रमुख समाचार पत्रों में भी NIF और हनी बी नेटवर्क द्वारा पहचाने गए नवप्रवर्तकों के बारे में अनेक आलेख प्रकाशित किए गए हैं।

4.3 राष्ट्रपति भवन में प्रथम बार नवप्रवर्तन प्रदर्शनी

उल्लेखनीय है कि मुगल गार्डन, राष्ट्रपति भवन में 10-14 मार्च 2010 को मुख्यतः तृणमूल नवप्रवर्तनों पर केंद्रित एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था। यह अपने आप में एक अद्वितीय एवं ऐतिहासिक अवसर था जब भारत की महामहिम राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील ने स्वयं नवप्रवर्तन प्रदर्शनी की मेजबानी की। हजारों आम लोगों के अलावा अनेक गणमान्य व्यक्तियों ने भी प्रदर्शनी को देखा।

5.0 कुछ प्रमुख नवप्रवर्तनों पर एक नजर

5.1 चेतक – कपास निकालने की मशीन

श्री मनसुखभाई पटेल, अमरेली, गुजरात

कपास के पौधे में खुले या अधखुले खोल में से हाथ से कपास निकालना बहुत थकाऊ काम होता है। गुजरात के मनसुखभाई ने खोल से आसानी-से कपास निकालने और इसे ओटाई के लिए तैयार करने हेतु एक मशीन बनाई। इस मशीन से निकाले गए कपास के बीजों की गुणवत्ता अच्छी होती है और किसान को अच्छी आय भी प्राप्त होती है। मनसुखभाई ऐसे पहले ज़मीनी नवप्रवर्तक हैं जिन्हें उनकी प्रौद्योगिकी के लिए अमेरिकी पेटेंट प्राप्त हुआ। यह पेटेंट दिलाने में 'सृष्टि' और 'ज्ञान'-पश्चिम ने मदद की थी। वह ऐसे

नवप्रवर्तक रहे हैं जो सर्वाधिक सफल उद्यमी बने। टीईपीपी (टेक्नोएन्टरप्रेन्योर प्रमोशन प्रोग्राम) के तहत उन्होंने आठ वर्ष पहले लगभग छह लाख रुपये लिए थे। अब तक वह चार औद्योगिक इकाइयाँ खड़ी कर चुके हैं जिनसे सालाना होने वाली कुल बिक्री लगभग 2.5 करोड़ रुपये है। वर्तमान में वह 'सृष्टि' के निदेशक मंडल के सदस्य भी हैं। उन्होंने वर्ष 2002 में तृणमूल नवप्रवर्तनों एवं पारंपरिक ज्ञान की दूसरी राष्ट्रीय प्रतियोगिता में एक राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त किया।

चेतक –कपास निकालने की मशीन

5.2 ग्वारपाठा (एलोवेरा) का रस निकालने का संयंत्र

श्री धर्मवीर, पंचकूला, हरियाणा

धर्मवीर ने वनस्पतीय औषधियों को कूटने, भाप देने और उनका रस निकालने के लिए एक उपयोगी इकाई विकसित की है। विशेष ढंग से डिज़ाइन किए गए बर्तनों, जिनमें प्रेशर से पकाने की व्यवस्था है, द्वारा वह ग्वारपाठा का अर्क निकालते हैं। यह पूरी इकाई कहीं भी ले जाकर उपयोग करने की दृष्टि से सुविधाजनक है। उन्होंने इसके उपयोग द्वारा ग्वारपाठा और आँवला से अनेक स्वास्थ्य उत्पाद बनाने की विधियाँ भी विकसित की हैं। यह मशीन अभी प्रति घंटा 100 किग्रा ग्वारपाठा के प्रसंस्करण की क्षमता रखती है। NIF ने इस मशीन के उत्पादन और व्यवसायीकरण में 'ज्ञान'-उत्तर के माध्यम से नवप्रवर्तक को सहायता प्रदान की। एक मशीन का केन्या में, वहाँ पर इसकी संभावनाओं का पता लगाने के उद्देश्य से, निर्यात किया जा चुका है।

ग्वारपाठा का रस निकालने का संयंत्र

नवप्रवर्तक को वर्ष 2009 में NIF की तृणमूल नवप्रवर्तनों एवं पारंपरिक ज्ञान की पाँचवीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता में राज्य पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

5.3 गन्ने की बड (आँख) निकालने का कृषि, उपकरण,

श्री रोशनलाल विश्वकर्मा, मुरैना, मध्य प्रदेश

गन्ना बुवाई के लिए गन्ने की आँख को गन्ने की गाँठ से काटकर अलग करने के इस उपकरण को तैयार कर नवप्रवर्तक ने समय, पैसे और बीज की बचत का उपाय प्रस्तुत कर दिया है। दरअसल एक इंजीनियर ने रोशन लाल को ऐसा यंत्र तैयार कर दिखाने की चुनौती दी थी। उन्होंने इसे कर दिखाया। इस उपकरण में हत्थे को दबाने से गन्ने की गाँठ से आँख अलग हो जाती है। जिससे आसानी से बुआई की जा सकती है। केंद्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल (सी.आई.ए.ई) के अनुसार तकनीक में नवीनता है। संस्थान ने इसकी व्यवहार्यता संबंधी कुछ अध्ययन करने का सुझाव दिया है। यही काम करने वाले इससे थोड़े-बहुत भिन्न कृषि उपकरण तमिलनाडु व कर्नाटक में भी पता चले हैं किंतु यह उपकरण कम लागत और अधिक क्षमता वाला है।

गन्ने की आंख निकालने का कृषि उपकरण

NIF ने इस नवप्रवर्तन की टेस्ट मार्केटिंग और वाणिज्यीकरण के लिए लघु उद्यम नवप्रवर्तन निधि (एमवीआईएफ) द्वारा सहायता प्रदान की है।

नवप्रवर्तक को वर्ष 2009 में NIF की तृणमूल नवप्रवर्तनों एवं पारंपरिक ज्ञान की पाँचवीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता में सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

5.4 प्रदूषण नियंत्रक साइलेंसर -

श्री बीरेंद्र कुमार सिन्हा, पूर्वी चंपारण, बिहार

श्री बीरेंद्र कुमार वेल्डिंग मशीन चलाने के लिए जिस डीजल इंजन का प्रयोग करते थे, वह बहुत धुआँ छोड़ता था और शोर करता था। इस समस्या को देखते हुए उन्होंने एक प्रदूषण नियंत्रण

उपकरण तैयार कर उसे एक्जहॉस्ट पाइप के साथ जोड़ दिया। उनका नवप्रवर्तित उपाय दरअसल एक बेलनाकार पात्र (छोटे बंद ड्रम जैसा) है जिसके अंदर विभिन्न प्रकार के पंख इस तरह संयोजित किए गए हैं कि बाहर निकलने वाला धुआँ छनकर बाहर निकलता है। इससे प्रदूषण कम हो जाता है और आवाज में भी कमी आ जाती है। बीआईटी मेसरा, राँची ने पारंपरिक मफलर के स्थान पर इस उपकरण को लगा देने से उत्सर्जित गैसों कार्बन मोनोऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड में उल्लेखनीय कमी की पुष्टि की है। बाहर निकलने वाली गैस के तापमान में भी कमी देखी गई है। NIF ने इस उपकरण के लिए उनके नाम पर पेटेंट फाइल किया है।

नवप्रवर्तक को वर्ष 2009 में NIF की तृणमूल नवप्रवर्तनों एवं पारंपरिक ज्ञान की पाँचवीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता में राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

5.5 बायोमास गैसीकरण प्रणाली -

श्री राय सिंह दहिया, हनुमानगढ़, राजस्थान

राय सिंह ने एक दक्ष बायोमास गैसीफायर विकसित किया है। नवप्रवर्तक ने गैसीफायर के पारंपरिक डिज़ाइन में बदलाव किया है। उन्होंने विशेष तौर पर फिल्टर और कूलिंग यूनिट में परिवर्तन किया है जिससे स्वच्छ वायु आए और कम प्रचालन लागत पर इंजन ठीक ढंग से काम कर सके। वह उपभोक्ता की आवश्यकतानुसार 5 से लेकर 50 हॉर्सपावर वाले गैसीफायर बनाते हैं। उनका दावा है कि उनके मॉडल में पारंपरिक गैसीफायर के मुकाबले लकड़ी की आवश्यकता 30-35 प्रतिशत कम होती है। टेरी (द एनर्जी एंड रिसोर्सेज इंस्टीट्यूट) के वैज्ञानिकों ने इस गैसीफायर की अद्वितीयता की पुष्टि की है। उपयोगकर्ताओं ने इसे चलाने में आसान बताया है। नवप्रवर्तक ने NIF द्वारा 'ज्ञान- उत्तर' के माध्यम से उपलब्ध कराई गई लघु उद्यम नवप्रवर्तन निधि का उपयोग करते हुए अब तक ऐसी पचास से अधिक इकाइयों की बिक्री की है। उल्लेखनीय है कि जर्मनी के एक उद्यमी ने नामीबिया (अफ्रीका) में इसे परखने के उद्देश्य से एक इकाई खरीदी है।

नवप्रवर्तक को वर्ष 2009 में NIF की तृणमूल नवप्रवर्तनों एवं पारंपरिक ज्ञान की पाँचवीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता में राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

बायोगैस गैसीकरण प्रणाली

5.6 कम लागत की बांस निर्मित पवनचक्की -

श्री मोहम्मद मेहतार हुसैन एवं श्री मुश्ताक अहमद, दारांग, असम

खेतों में सिंचाई करने के एक कम लागत के विकल्प पर विचार करते हुए दो भाइयों मोहम्मद मेहतार हुसैन और मुश्ताक अहमद ने एक बांस निर्मित पवनचक्की विकसित कर ली। यह पवनचक्की बांस और टिन शीट से बनी है। NIF की मदद से इसका आईआईटी गुवहाटी में परीक्षण हुआ। इसके साथ ही NIF द्वारा लघु उद्यम नवप्रवर्तन निधि (एमवीआईएफ) और लघु उद्भवक योजना के तहत समर्थन भी दिया गया है। ऐसी कुछ इकाइयाँ आसपास के किसानों ने अपने यहाँ संस्थापित की हैं। दोनों नवप्रवर्तकों को वर्ष 2007 में तृणमूल नवप्रवर्तनों एवं पारंपरिक ज्ञान की चौथी राष्ट्रीय प्रतियोगिता में पुरस्कृत किया गया था।

गुजरात में इस नवप्रवर्तन की संभावनाओं को देखते हुए 'ज्ञान' पश्चिम ने कच्छ क्षेत्र में कई पवनचक्कियाँ स्थापित कराई हैं। कच्छ में नमक की खेती होती है। यहाँ ये पवनचक्कियाँ खारा पानी निकालने या सिंचाई आदि कार्य में उपयोगी हैं। विशेषज्ञों की राय लेकर इनके डिज़ाइन में सुधार कराया गया है। यह देश के एक कोने से दूसरे कोने (यानी उत्तर-पूर्व से पश्चिम भारत) में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण का एक शानदार उदाहरण है।

बांस से निर्मित कम लागत वाली पवनचक्की

5.7 पेड़ पर चढ़ने के लिए उपकरण -

स्व. श्री एम जे जोसेफ उर्फ अप्पचन, कन्नूर, केरल

श्री एम जे जोसेफ ने अपने पिता के मार्गदर्शन में ऐसा उपकरण विकसित किया था जिसकी मदद से नारियल या सुपारी के पेड़ पर चढ़ा जा सकता है। इस नवप्रवर्तन पर डिस्कवरी चैनल ने एक फिल्म बनाई थी जो आज भी यूट्यूब पर काफी पसंद की जाती है। दुर्भाग्य से एम जे जोसेफ और उनके पिता अब इस दुनिया में नहीं हैं। किंतु उनके काम उनकी याद बनाए हुए हैं। वर्ष 2002 में NIF

की तृणमूल नवप्रवर्तनों एवं पारंपरिक ज्ञान की दूसरी राष्ट्रीय प्रतियोगिता में उन्हें सांत्वना पुरस्कार प्राप्त हुआ था। NIF द्वारा लघु उद्यम नवप्रवर्तन निधि के माध्यम से नवप्रवर्तन को समर्थन प्रदान किया गया था। इसके साथ ही NIF ने इस नवप्रवर्तन के अमेरिका, मालदीव, थाइलैंड, आस्ट्रेलिया, ब्राजील, मैक्सिको आदि देशों में वाणिज्यीकरण के लिए भी प्रयास किए।

पेड़ पर चढ़ने का उपकरण

5.8 सैनिटरी नैपकिन बनाने वाली एक मशीन : महिला उद्यमियों के लिए एक अवसर

श्री ए. मुरुगानंथम, कोयंबटूर, तमिलनाडु

सैनिटरी नैपकिन सभी जगह एक जरूरी सामान होता है किंतु अधिक कीमत और पुराने कपड़ों के इस्तेमाल के चलन जैसी वजहों से अभी भी भारत में इसका प्रयोग बहुत व्यापक नहीं हो पाया है। मुरुगानंथम ने ऐसी मशीन विकसित की है जिससे कम लागत पर अच्छी गुणवत्ता की सैनिटरी नैपकिन बनाई जा सकती है। उनके द्वारा तैयार यूनिट में चार व्यक्ति प्रति मिनट दो पैड बना सकते हैं। आमतौर पर उपलब्ध उत्पादों की तुलना में इसकी लागत आधी आती है। एक पैड बनाने में लगभग एक से डेढ़ रुपए लागत आती है।

मुरुगानंथम ने एक वेंडिंग मशीन भी डिज़ाइन की है जिसमें सिक्का डालिए और उत्पाद प्राप्त करिए। NIF ने लघु उद्यम नवप्रवर्तन निधि (एमवीआईएफ) से नवप्रवर्तक की सहायता की है। NIF की मदद से मुरुगानंथम देश भर के 14 राज्यों में इसकी अस्सी से अधिक इकाइयाँ स्थापित करने में सफल रहे हैं।

नवप्रवर्तक को वर्ष 2009 में NIF की तृणमूल नवप्रवर्तनों एवं पारंपरिक ज्ञान की पाँचवीं राष्ट्रीय प्रतियोगिता में राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

6.0 आपसी सहयोग : कौन और कैसे ?

संगठनों (गैर-सरकारी संगठनों) की तुलना में अभी तक व्यक्तियों (गैर-सरकारी व्यक्तियों) का योगदान कहीं अधिक रहा है लेकिन हमेशा ऐसा हो, आवश्यक नहीं। तृणमूल नवप्रवर्तन मुहिम से जुड़ने के इच्छुक प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक संगठन का NIF हार्दिक स्वागत करता है। आप किसी पेशे में हों या किसी भी पृष्ठभूमि से हों, विचारों, नवप्रवर्तनों व पारंपरिक ज्ञान को आगे बढ़ाने में आपकी भूमिका हो सकती है। इन्हें मूल्य श्रृंखला में लाना होगा। बिना इसके लाभ सृजित करना और ज्ञानधारकों को आर्थिक फायदा पहुँचा पाना संभव नहीं हो पाएगा। यद्यपि सस्ते समाधानों का लोगों के बीच नेटवर्क तैयार कर भी प्रसार हो सकता है, जैसा कि हनी बी नेटवर्क अब तक करता भी रहा है। गैर-आर्थिक लाभ भी कम महत्वपूर्ण नहीं होते। आप मूल्य और/या ज्ञान श्रृंखला के किसी भी पहलू में मददगार हो सकते हैं। आप औपचारिक और अनौपचारिक ज्ञान क्षेत्रों के बीच न्यायोचित शर्तों पर संबंध कायम करने में अपनी भूमिका निभा सकते हैं। तृणमूल नवप्रवर्तन मुहिम को 'आर्थिक तौर पर विपन्न, किंतु ज्ञान से संपन्न' लोगों के प्रति जवाबदेह तथा पहुँच योग्य व समावेशी प्रकृति का बनाने के लिए आपके योगदान, प्रतिक्रिया और सुझावों का हमें इंतजार रहेगा।

संपर्क :

मुख्य नवप्रवर्तन अधिकारी
राष्ट्रीय नवप्रवर्तन प्रतिष्ठान
बंगला नं. १, सैटेलाइट कॉम्प्लैक्स, जोधपुर टेकरा, सैटेलाइट, अहमदाबाद ३८००१५, गुजरात
ईमेल : info@NIFindia.org, वेबः www.NIFindia.org
दूरभाष : +9179 26732456, 26753501, 26753338
निःशुल्क दूरभाष सं.: 1800 233 5555

टैक्नॉलोजी – संस्कृति अन्तर्सम्बन्ध
(एक क्षेत्रीय अध्ययन)

हर्ष सत्या, शोध छात्र
सेन्टर फॉर एग्जैक्ट ह्युमिनिटीज
इन्टरनेशनल इंस्टिट्यूट ऑफ इन्फॉरमेशन टेक्नॉलोजी,
हैदराबाद

पृष्ठभूमि

श्री रविन्द्र कुमार शर्मा जी के बारे में सबसे पहले रजनी बख्शी की किताब **'बापू कुटीर'** के माध्यम से जाना। रजनी जी की यह किताब कुछ आम लोगों के बारे में हैं जिन्होंने कुछ खास सोचा और उसे करने का प्रयत्न किया। इसमें एक अध्याय "गुरुजी" अर्थात् रविन्द्र शर्मा जी के बारे में था। सिद्ध (सोसाइटी फॉर इन्टीग्रेटेड डिवेलपमेन्ट ऑफ हिमालयाज), बोधिग्राम, मसूरी में श्री पवन गुप्ता ने कुछ वर्ष पहले मुझे बोला था कि कभी समय मिले तो इनसे मिलना। इस घटना के एक वर्ष के अंदर ही, श्री कंवरजीत (वास्तुकार) के साथ एक चर्चा में फिर गुरुजी का जिक्र आया और इसमें एक नई और महत्वपूर्ण अवधारणा "सौन्दर्य दृष्टि" के बारे में पहली बार सुना। उस समय तो मैंने सौन्दर्य दृष्टि को सौन्दर्य विषयक भाव का नाम देकर मान लिया था कि मैं समझ गया। लेकिन आज, जब मैं गुरुजी के साथ लगभग एक वर्ष बिता चुका हूं तो मुझे कुछ–कुछ "सौन्दर्य दृष्टि" की गहराई का आभास सा हो रहा है।

कला आश्रम : विचार एवं व्यवस्था

कला आश्रम की शुरूआत के पीछे मूल प्रेरणा श्री येलाप्पा ताता की थी। उनका हाथ से बनाया हुआ एक चित्र आज भी यहां प्रेरणा देता है। येलाप्पा ताता नक्काशी वाले समुदाय में आते थे। श्री रविन्द्र शर्मा "गुरुजी" (फाइन आर्ट विशेषज्ञ) ने उनके पास रहकर नक्काशी का काम सीखा। उन्हीं की दृष्टि से जब समाज को पुनः देखना शुरू किया, तो समाज में अनेक प्रकार की कलाएं एवं कारीगरी दिखी। साथ ही इन कलाओं/कारीगरियों का और समाज में सौंदर्य एवं परस्पर पूरकता का एक गहरा सम्बन्ध दिखना शुरू हुआ। कला आश्रम एक संग्रहालय की तरह है, जिसमें आदिलाबाद (आन्ध्रप्रदेश) इलाके की लगभग हर एक कलाकृति का नमूना मौजूद है। लेकिन इतना ही नहीं इनके अलावा कला आश्रम में हजारों कहानियां हैं जो कलाओं व कारीगर समुदाय की सामाजिकता में भागीदारी की गवाह है। कला आश्रम में आने वाले शोधकर्ता एवं विद्यार्थीगण इन कहानियों और कलाकृतियों द्वारा भारतीय समाज को एक बार पुनः नए दृष्टिकोण् से देखने लगते हैं तथा उन्हें इसके विभिन्न आयामों की मजबूत नींव का अहसास होने लगता है। बड़ी ही सहज, प्रेम पूर्ण व्यवस्था है कला आश्रम की, जहाँ पारिवारिक भाव से कार्य निर्बाध गति से चलता रहता है।

सौन्दर्य दृष्टि : तकनीकी पक्ष

सौन्दर्य दृष्टि के बारे में मेरी गुरूजी के साथ कई बार चर्चा हुई और हर बार ऐसा लगा कि अभी भी समझ में नहीं आया। अपने आप को और अपने आस–पास को और अधिक सुन्दर बना लेने की ताकत सौन्दर्य दृष्टि से आती है। इसमें अपना परिवार भी आता है अपना गांव और समाज भी और अपना पर्यावरण भी। और इसे सुन्दर बना पाने की प्रक्रिया में, टैक्नॉलोजी (तकनीकी) की भूमिका परिलक्षित होती है। मुझे तो अब परम्परा के हर आयाम में सौन्दर्य दृष्टि की भूमिका दिखती है।

"सौन्दर्य दृष्टि" की दृष्टि से जब हम टैक्नॉलोजी को समझने जाते हैं तब समाज पर असर (social cost), पर्यावरण पर असर (environmental cost) और व्यक्ति पर असर (individual cost) की बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं। एक घड़े के उदाहरण से गुरुजी इस बात का विस्तार करते हैं। पानी भरने का घड़ा मिट्टी का सम्भव है, प्लास्टिक और स्टील (फौलाद) का भी सम्भव है। लेकिन परम्परा से मिट्टी का ही घड़ा मिलता है। इसी क्रम में और सोचने पर प्रश्न उठता है कि घड़ा (या लोटा) गोल आकार में ही क्यों? मिट्टी पर्यावरण अनुकूल सामग्री है। न केवल इतना, बल्कि यह परम्परा है कि एक घड़ा ज्यादा से ज्यादा एक साल ही चलेगा।

* यह लेख शैक्षिक क्रम और पत्रकारिता परक ज्यादा है। इस लेख को लिखते समय प्रयास रहेगा कि उसी गहराई तक जा सकू जिस गहराई की अपेक्षा एक शैक्षिक लेख में होती है लेकिन अंदाज पत्रकारिता परक होगा।

कला आश्रम में कुछ शोधकर्त्ता/जिज्ञासु गुरुजी के साथ विचार–विमर्श करते हुए

होली पर हर साल घड़ा तोड़ने का रिवाज है, ताकि अगले साल के लिए फिर एक नया घड़ा इस्तेमाल हो। हर साल नए घड़े खरीदने की परम्परा कुम्हार समुदाय को हर साल बाजार उपलब्ध कराती है। साथ ही पानी रखने का बर्तन हर साल नया होता है। यह मिट्टी जैसी कच्ची सामग्री से ही सम्भव है। इसके अलावा मिट्टी और गोलाकार डिजाइन की एक उपयोगिता और है। प्लास्टिक या स्टील के घड़े को उपयोग में लाना आसान होता हैं या यों कहें कि इनको कैसे भी उठा सकते हैं, कैसे भी रख सकते हैं। मिट्टी के घड़े के साथ यह सम्भव नहीं है। मिट्टी के घड़े को उठाने, रखने और इस्तेमाल करने की एक पद्धति होती है। यहां एक महत्वपूर्ण बात उजागर होती है कि जहां एक तरफ मिट्टी का घड़ा बच्चे को क्रमशिक्षित (सुव्यवस्थित) और सतर्क बनाता है, वहीं प्लास्टिक या स्टील का घड़ा लापरवाही और हड़बड़ी के लक्षण पैदा करता है। इस प्रकार विभिन्न पदार्थ/उत्पाद बच्चों में अलग–अलग प्रकार की संवेदनाएं एवं गुणों का प्रादुर्भाव कर सकते हैं।

एक की ताकत

पारम्परिक तकनीकी की सबसे बड़ी ताकत है 'एक' का उत्पादन करना। आधुनिक तकनीकी 'एक' जैसा सैकड़ों का उत्पादन कर सकती है, लेकिन एक अनोखी वस्तु का उत्पादन आर्थिक और ऊर्जा की दृष्टि से बेहद अक्षम प्रक्रिया होगी। पारम्परिक तकनीकी की यह काबिलियत अति विशिष्ट प्रकार के निर्माण करने में सक्षम है। हर कारीगर अलग–अलग परिवार की जरूरत एवं रिवाज को ध्यान में रखकर वस्तु का उत्पादन करता है। और इसी वजह से पारम्परिक तकनीकी छोटी और साधारण है। गुरु जी के शब्दों में कहें तो 'तकनीकी इतनी छोटी और साधारण है कि हर कारीगर अपने बगल में अपना कारखाना लेकर घूमता है। बगल में पता नहीं, लेकिन इतना निश्चित है कि गांव के हर घर में एक कारखाना मौजूद था। हिन्दुस्तान का कारीगर कारखाना चलाता था, मजदूरी नहीं। यूरोप का बाजार हिन्दुस्तान में निर्मित वस्तुओं से भरा पड़ा था। लेकिन जब अंग्रेज हिन्दुस्तान में आए तो किसी केन्द्रित कारखाना (factory) को न पाकर आश्चर्यचकित रह गए। बिना किसी विशाल/आधुनिक कारखाने के इस स्तर का औद्योगिक उत्पादन कल्पना के बाहर की चीज थी। उस समय (अठारहवीं शताब्दी) में हिन्दुस्तान दुनिया का 23 से 28 प्रतिशत औद्योगिक उत्पादन करता था (आज लगभग एक प्रतिशत का आंकड़ा है)। इतने बड़े स्तर पर उत्पादन सम्भव था छोटी एवं विकेन्द्रित तकनीकी (decentralised techonology) के साथ।

'एक' वस्तु के उत्पादन में विकेन्द्रित समाज के लिए एक अलग तरह की तकनीकी की अहम जरूरत है। जैसे–जैसे समाज केन्द्रीकरण (centralization) की तरफ बढ़ता है, वैसे–वैसे तकनीकी बड़े उत्पादन की तरफ बढ़ती है। इसी चीज को दूसरी तरफ से देखें तो तकनीकी का यह बदला स्वरूप केन्द्रीकरण में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कई लोग तकनीकी को गैर–राजनीति (apolitical) या मूल्य निरपेक्ष (value neutral) मानते हैं। यही कारण है कि तकनीकी की गैर राजनीतिक या मूल्य निरपेक्षता पर प्रश्न उठते हैं जबकि 'एक की ताकत' के लिए टैक्नॉलोजी का बिल्कुल अलग स्वरूप है, इन दो प्रश्नों से बहुत ऊपर है।

भारतीय समाज विकेन्द्रित व्यवस्था का एक सुदृढ़ उदाहरण रहा है और इसी के चलते तकनीकी छोटी और साधारण रही तथा उत्पाद पर्यावरण मित्र बने। साड़ी के डिजाइन से लेकर मिट्टी के घड़े, दीये इत्यादि परिवार दर परिवार बदलते रहे। लेकिन इसी तकनीकी में बड़ा उत्पादन करने की ताकत भी थी – चाहे वो हजारो अवरोधक हों, बांध हों, या समुद्री बंदरगाह। रविन्द्र शर्मा जी ने अपने बचपन में 35 गज लम्बी और 20 गज चौड़ी चद्दर देखी है, जो कि अनेकों जुलाहों के करघों को जोड़कर बुनी गई थी।

उपसंहार

अतः उपर्युक्त वर्णित 'व्यक्ति पर असर' 'समाज पर असर' एवं 'पर्यावरण पर असर' 'सौन्दर्य दृष्टि' के आधार स्तम्भ हैं। यह स्फूर्तिपूर्ण व विवेकशील मानव, समरसता पूर्ण परिवार व समाज तथा समृद्ध पर्यावरण का सृजन व इसकी निरन्तरता कायम रखने की आधारशिला है। वैश्विक युग में, बदलते परिवेश में 'सौन्दर्य दृष्टि' को कैसे पुर्नस्थापित करें यह एक जटिल प्रश्न है, समाज के सामने एक बड़ी चुनौती है। उसका समाधान शिक्षा व्यवस्था का सही स्वरूप विकसित करके ही हो सकता है। अपने देश में श्री रवीन्द्र शर्मा जी के मार्ग दर्शन से

(गुरु जी) कारीगर पंचायत, राष्ट्रीय नवप्रवर्तन प्रतिष्ठान (NIF), भा.प्रौ.सं. तन्त्र में 'ग्रामीण प्रौद्योगिकी केन्द्र' तथा नई शिक्षा व्यवस्था की और कार्यरत अन्य प्रतिष्ठित संस्थाएं आदि आपसी तालमेल व समरसता के साथ पैराडाइम परिवर्तन की दिशा में सार्थक योगदान करेंगी, ऐसी आशा है।

अभी हाल में इंटरनेशनल इन्स्टिटयूट आफ इनफारमेशन टेक्नॉलोजी हैदराबाद ने सुविधाप्रदाता (facililator) के रूप में कला आश्रम के साथ मिलकर ग्रामीण कारीगर की जिन्दगी से जुड़े विभिन्न प्रकरण/आयाम पर जानकारी एकत्रित कर संकलन करने की शुरूआत की है। इस प्रकार कारीगर शास्त्र पारम्परिक ग्रामीण प्रौद्योगिकी के संग्रह के रूप में उपलब्ध होगी। आशा है कि आदिलाबाद का यह प्रसिद्ध 'कला आश्रम' ग्राम ज्ञानपीठ के रूप में कार्य करेगा। (दि हिन्दू, 24 मार्च, 2010)।

आभार

लेखक इस क्षेत्रीय अनुसंधान कार्य के लिए प्रो. राजीव संगल, निदेशक, आई.आई.आई.टी. हैदराबाद और अपने विद्यावाचस्पति (Ph.D) गाइड प्रो. नवज्योति सिंह व श्री रवीन्द्र शर्मा (गुरुजी) के मार्गदर्शन व पूर्ण सहयोग के लिये हार्दिक धन्यवाद ज्ञापित करता है। क्षेत्रीय कार्य के दौरान श्री हरपाल सिंह (पत्रकार) का सान्निध्य अनमोल रहा।

संदर्भ

1. धर्मपाल ; द ब्यूटीफुल ट्री : इन्डिजेनस इंडियन एजूकेशन; बिब्लिआ इम्पेक्स, नई दिल्ली (1983)।
2. क्षेत्रीय अनुसंधान के लिए श्री रविन्द्र शर्मा, (कला आश्रम, आदिलाबाद) के साथ वैयक्तिक अन्तर्संवाद।
3. प्रो. नवज्योति सिंह, सेन्टर फॉर इग्जैक्ट ह्यूमिनिटीज, आई.आई.आई.टी. हैदराबाद के साथ वैयक्तिक अन्तर्संवाद।
4. श्री हरपाल सिंह; दि हिन्दू, 24 मार्च, 2010।
5. धर्मपाल; इंडियन साइन्स ऐन्ड टेक्नॉलोजी इन एटीन्थ (18th) सेन्चुरी : सम कन्टेम्परेरी यूरोपियन एकाउन्टस; इम्पेक्स इंडिया (1970)।
6. आनंद के. कुमारास्वामी; आर्ट ऐन्ड स्वदेशी; गणेश ऐन्ड कम्पनी पब्लिशर; मद्रास (1911)

आपसी व्यवहार में जैसे मौन भी बोलता है, वैसे ही भाषा में शब्द का अभाव भी बोलता है। दो या तीन नुक़्ते डालकर जाने हम कितना नहीं कह जाते।

- जैनेन्द्र कुमार

सकारात्मक मनोविज्ञान: एक सिंहावलोकन

श्री रजनीश चौबीसा, शोध छात्र
(वरिष्ठ अध्येता, भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद)
डॉ. कमलेश सिंह
मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0. प्रस्तावना

आधुनिक मनोविज्ञान की इस नवीनतम अवधारणा की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि प्रसार सामयिक एवं तर्कसंगत प्रतीत होता है। आज से लगभग 10 वर्ष पूर्व श्री सेलिगमेन (Seligman) ने इस मनोविज्ञान की मीमांसा की तथा अपनी राष्ट्रपति उद्घोषणा के व्याख्यान में इस विज्ञान को आधिकारिक रूप में प्रतिपादित किया (APA 1998) । तब से लेकर आज तक सकारात्मक मनोविज्ञान ने अद्वितीय प्रगति की है तथा दुनियाभर के मनोवैज्ञानिक पेशेवरों को अपनी ओर आकर्षित किया है। यही कारण है कि सकारात्मक मनोविज्ञान की विषयवस्तु को हाथों हाथ लिया गया है तथा इसके विभिन्न अवयवों पर प्रकाशित अनुभव आधारित तथा सैद्धांतिक शोध ग्रंथों की सूचि बहुधा प्रभावी तथा अलौकिक जान पड़ती है।

2.0 सकारात्मक मनोविज्ञान

2.1. परिभाषा तथा अर्थ

सकारात्मक मनोविज्ञान के अंतर्गत हम उन शक्तियों तथा सद्गुणों का वैज्ञानिक अध्ययन करते हैं जिससे सामाजिक स्तर पर व्यक्ति विशेष या समूह विशेष फलते–फूलते अथवा उन्नति करते हैं। इस विज्ञान की बुनियाद इस विश्वास पर रखी गई है कि जीवन में हर व्यक्ति पूर्णतः सार्थक जीवन, आपसी सद्भाव के साथ पोषण, संचरण एवं अनुभव आधारित विस्तार की कामना रखता है (सेलिगमेन तथा चिकसेन्टमिहालयी, 2000)। सकारात्मक मनोविज्ञान के तीन महत्वपूर्ण पहलू हैं; धनात्मक संवेग (emotion), सकारात्मक व्यक्तिगत विशेषताएँ तथा सकारात्मक संस्थायें जहाँ उपर्युक्त अवस्थाओं का प्रसार तथा अग्रेषण होता है।

2.2 विषयवस्तु एवं अवयव

जब हम सकारात्मक मनोविज्ञान के तीन महत्वपूर्ण पहलुओं की विषयवस्तु के बारे में विचार करते हैं तो वे हमें उन मदों की संस्तुति करने पर विवश करते हैं जोकि उच्चकोटि की जीवन शैली के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। ये उन जीवन कौशल की ओर इशारा करते हैं जोकि सकारात्मक मनोविज्ञान तथा उत्कृष्ट मानसिक स्वास्थ्य की परिपाटी पर संपूर्ण रूप से खरे उतरते हों। सकारात्मक संवेगों में हम भूत, वर्तमान तथा भविष्य में व्याप्त व्यक्तिगत स्तर के प्रेम, सौहार्द, आशावाद सरीखे संप्रत्ययों की चर्चा करते हैं। व्यक्तिगत विशेषताओं के पाले में वे सभी चारित्रिक शक्तियाँ एवं सद्गुण आते हैं जिनका उल्लेख चारित्रिक शक्तियाँ एवं सद्गुण वर्गीकरण पुस्तिका में मिलता है। इनका संक्षिप्त विवरण सारणी-1 में दिया गया है।

सारणी–1 : गुणों (6) तथा सम्मिलित चारित्रिक शक्तियों (24) का विस्तृत ब्योरा

सदगुण तथा भाक्तियाँ	परिभाषिक अर्थ
(क) ज्ञान एवं विवेक :- संज्ञानात्मक शक्तियाँ जो ज्ञानार्जन तथा उपयोग के लिए आवश्यक हैं।	
(i) सृजनात्मकता	नवीन विचारधारा तथा उपयोग के नवाचार का चिंतन।
(ii) कौतुहल / जिज्ञासा	आगामी अनुभवों में रुचि रखना।
(iii) उदारमति	वस्तुओं का पूर्ण रूपेण सभी तरह से चिंतन करना।
(iv) अधिगम प्रेम	अभिनव कौशल,विषय तथा ज्ञान की प्रवीणता प्राप्त करना।
(v) परिप्रेक्ष्य	व्यक्तियों को उपयुक्त परामर्श देने में सक्षम होना।

(ख) धैर्य:- आंतरिक / बाह्य विकटताओं की स्थिति में लक्ष्यों को सम्पादित करने में समर्थ करने वाली सांवेगिक शक्ति।	
(i) प्रमाणिकता	सत्यवाचन एवं स्वयं की विशुद्धता।
(ii) वीरता	चुनौतियों, कठिनाइयों तथा कष्टों का दृढ़ता से सामना।
(iii) दृढ़ता / अध्यवसाय	शुरु किया कार्य खत्म करना।
(iv) उत्साह	उत्तेजना तथा ऊर्जा के साथ जीवन की तरफ उपागम।
(ग) मानवीयता:- मित्रवत् व्यवहार संबंधित अंतरवैयक्तिक शक्तियाँ।	
(i) दयालुता	दूसरों की सहायता तथा कृपा करना।
(ii) प्रेम	दूसरों के साथ निकट संबंधों का आदर करना।
(iii) सामाजिक बुद्धिमता	दूसरों के इरादों / आशयों / अभिप्रायों से अवगत होना।
(घ) न्याय :– नागरिक शक्तियाँ जो खुशहाल सामुदायिक जीवन की ओर इंगित करती हों।	
(i) समानता / निष्पक्ष	सभी व्यक्तियों से समान व्यवहार करना।
(ii) नेतृत्व	सामूहिक क्रियाकलापों का संघटन एव सफल संचालन।
(iii) नागरिकता	दल या समूह में अच्छी तरह से कार्य करना।
(ङ) संयम :– प्रचुरता / अधिकता से रक्षा करने वाली शक्तियाँ।	
(i) उदारता / कृपा	गलती करने पर क्षमा दान देना।
(ii) नम्रता	अपनी उपलब्धियाँ स्वविवेचन करने संबंधी स्थितियाँ उत्पन्न करना।
(iii) विवेक	स्वयं के चुनावों / विकल्पों का सटीक चयन, ऐसी चीजें न करना जिन पर बाद में पछतावा हो।
(iv) स्वःनियंत्रण	अनुभवों तथा क्रियाकलापों का नियंत्रण।
(च) सर्वोत्कृष्टता / भावातीत– शक्तियाँ जो ब्रह्माण्ड से संबंद्ध स्थापित करके जीवन को अर्थ प्रदान करती हैं।	
(i) सुंदरता की सराहना	सुंदरता, उत्कृष्टता, निपुण निष्पादन इत्यादि, जैसी चीजों का बोध एवं प्रशंसा करना।
(ii) कृतज्ञता / आभार	अच्छी चीजों या स्थितियों से अवगत होना एवं उनके प्रति आभारी रहना।
(iii) आशावाद	अति उत्तम की प्रत्याशा तथा उस उत्तमता के लिए कार्यशील होना।
(iv) हास्य	हंसी खुशी का माहौल बनाना तथा दूसरों को हसाँने की क्षमता रखना।
(v) आध्यात्मिकता	उच्चकोटि के प्रयोजन तथा जीवन के अर्थ की सुसंगति तथा संज्ञान।

(स्त्रोत: पीटरसन एवं सेलिगमेन, 2004.)

सकारात्मक मनोविज्ञान की दिशा में उपर्युक्त वर्गीकरण की एक विशिष्ट पहचान है क्योंकि यह नैदानिक (Clinical) एवं सांख्यिकीय हस्तपुस्तिका के विरुद्ध होकर भी विपरीत वर्णक्रम की प्रभावी संस्तुति करता है। इस वर्गीकरण के अनुभवजन्य परिशोधन विभिन्न संस्कृतियों में हुए हैं। लेखकों द्वारा इस मापनी का हिन्दी अनुवादित संस्करण जिसे वी.आई.ए.आई.एस.–हिन्दी (VIA-IS-Hindi) कहा गया है प्रकाशित हो चुका है (सिंह एवं चौबीसा, 2009) । अंततः सकारात्मक संस्थाएं वे निकाय होते हैं जिनका परम उद्देश्य सकारात्मक वातावरण से युक्त एवं इन सभी विशेषताओं से लैस व्यक्तियों, समूहों तथा संगठनों का रचनात्मक क्रियान्वयन करना होता है।

3.0 सकारात्मक मनोविज्ञान के उद्देश्य

सकारात्मक मनोविज्ञान के द्वारा अंगीकार तीन महत्वपूर्ण अंगों का यदि मूल रूप से स्मरण करें तो इस विज्ञान का अभिप्राय एवं उद्देश्य स्वतः ही स्पष्ट हो जाएगा। यद्यपि इसके सामाजिक प्रभाव एवं प्रादुर्भाव की बात करें तो समाज में व्याप्त विशिष्ट विषमताओं के आधार पर विभिन्न स्तर पर इस तरह ग्रंथित हस्तक्षेपण (intervention) का स्तर पृथक होगा। इस संयोजन में अधोलिखित बिंदु इसके वैज्ञानिक आधार तथा उपागम की अभिपुष्टि करते हैं। निःसंदेह सकारात्मक मनोविज्ञान के अतिआवश्यक उद्देश्यों को यदि क्रमबद्ध किया जाए तो कुछ प्रमुख बिंदु निम्न होंगे–

- उन स्थितियों का अभिसरण करना जहाँ पर परिवारों तथा विद्यालयों का ऐसा सम्मिश्रण हो जिससे बालकों का सकारात्मक विकास हो।
- ऐसे कार्यस्थलों का उत्सर्जन हो, जहाँ उच्च स्तरीय उत्पादकता तथा कर्मचारी अनुरूप संतुष्टि का माहौल हो।
- ऐसे समाज की अभिकल्पना हो, जो कि नागरिक संप्रभुता तथा संलिप्तता को प्रोत्साहित करते हों।
- ऐसे मनोवैज्ञानिकों का प्रादुर्भाव हो जो अपने विषयों के गुणों/चारित्रिक विशेषताओं को समझने तथा पोषित कर, उनका विस्तार करने में समर्थ हों।
- ऐसे सुधारोन्मुखी/विकासोन्मुखी हस्तक्षेपन कार्यक्रमों का आयोजन हो जो विभिन्न संगठनों, समुदायों तथा समाजों के उत्थान में प्रभावकारी तथा सक्षम हों।

4.0. भारतीय परिदृश्य में सकारात्मक मनोविज्ञान

भारतीय मनोविज्ञान भी सकारात्मक मनोविज्ञान के उदभव की संस्तुति करता है परन्तु भारतीय परिप्रेक्ष्य, मनोविज्ञान के भिन्न–भिन्न रूपों का खंडन करता है तथा इसके एकीकृत संघटन में ज्यादा रुचि रखता है। ज्ञानशास्त्र में आंदोलन के रूप में प्रतिपादित सकारात्मक मनोविज्ञान भी पूर्ण रूपेण जीवन की आंतरिक, व्यक्तिगत, सांस्कृतिक तथा आत्मगत विषमताओं से पार पाने में असक्षम है (मिश्रा एवं दलाल, 2010)। यद्यपि भारत में इस विषय पर ज्यादा कार्य नहीं हुआ है तथा जो कुछ छुटपुट प्रयास किए गए हैं वे सुव्यवस्थित रूप से प्रकाशित एवं संकलित नहीं है। शायद यही कारण है कि भारत में इसकी व्यापकता का अनुमान लगाना कठिन है। परन्तु जैसा कि विदित है भारतीय परिदृश्य में कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में सकारात्मक मनोविज्ञान के प्रणेताओं की रुचि होना अतिआवश्यक है। उदाहरणतः हमारे प्राचीन साहित्य का योगदान, भारतीय सम–सांस्कृतिक मद आधारित हस्तक्षेपन कार्यक्रम तथा विभिन्न सकारात्मक मनोवैज्ञानिक परीक्षणों/पैमानों (Scale) का निर्माण एवं भारतीय अनुकूलन (adaptation) इत्यादि। प्राचीन भारतीय साहित्यों (वेद, उपनिषद, योग–सूत्र, भगवद्‌गीता इत्यादि) में विभिन्न संप्रत्ययों का उल्लेख मिलता है जोकि आधुनिक सकारात्मक मनोविज्ञान से सरोकार रखते हैं (किरण कुमार, 2006)। शास्त्रीय संस्कृत साहित्य से उद्धृत; भोग, सुख, संतोष, हर्ष, उल्लास, आनंद, तृप्ति, तुष्टि, शुभ, मंगल, कल्याण, श्रेयस, प्रेयस, शान्ति, आरोग्य, स्वास्थ्य सरीखे सप्रंत्यय भारतीय सकारात्मक मनोवैज्ञानिक शब्दावली को सुदृढ़ करते हैं।

4.1 अनुप्रयुक्त सकारात्मक मनोविज्ञान

आधुनिक युग में इसके सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य पर जोर देना आवश्यक हो चला है जिसमें भारतीय सकारात्मक मनोविज्ञान के अनुप्रयुक्त पक्ष को गहराई से समझा जाए। इसी तत्वाधान के अंतर्गत दो तरीके के हस्तक्षेपन कार्यक्रमों पर प्रकाश डालना सर्वोचित रहेगा। ये निम्नानुसार हैं:

(क) कक्षा आधारित (एकल तथा सामूहिक) हस्तक्षेपन कार्यक्रमः

इस तरीके के कार्यक्रमों का गठन पश्चिमी संस्कृतियों में अधिकाधिक रूप से हुआ है। सेलिगमेन तथा साथियों ने ऐसे सकारात्मक अभ्यास विकसित किए हैं जिनसे सदगुणों का समुन्नत विकास तथा बढोतरी होती है। सिंह एवं चौबीसा (2009) द्वारा एक विद्यार्थी अनुरूप हस्तक्षेपन कार्यक्रम विकसित किया गया है जिसमें विद्यार्थी जीवन के महत्वपूर्ण पहलू जैसे प्रतिबल निरोध, समय प्रबंधन यथा सांवेगिक बुद्धिमता बढाने संबंधित आशानुकूल प्रयास एवं दिशानिर्देश हैं।

(ख) इन्टरनेट आधारित इंटरवेन्शन कार्यक्रमः

इस श्रेणी में सकारात्मक अभ्यासों को इन्टरनेट (Internet) के द्वारा प्रसारित किया जाता है। इसकी सबसे अच्छी बात यह है कि कोई भी व्यक्ति एक इन्टरनेट समर्थ कम्प्यूटर की सहायता से किसी भी वक्त इन अभ्यासों को कर सकता है। हालाँकि इनकी अभिकल्पना तथा उद्देश्य पृथक–पृथक हो सकते हैं (सेलिगमेन एट. अल. 2005; मिशेल एट.एल. 2009)। इसी दिशा में लेखकों द्वारा तकनीक तथा सकारात्मक मनोविज्ञान के संयोजन से एक इन्टरनेट आधारित विद्यार्थी सुधारोन्मुखी कार्यक्रम निर्मित किया गया है। इसे निम्न यू.आर.एल.

http://www.iitd.ac.in/~kamleshsingh/PPR/

पर देखा तथा उपयोग किया जा सकता है। विद्यार्थी वर्ग के लिए इसे निःशुल्क रखा गया है।

चूंकि अभिव्यक्त व्यवहार के विभिन्न पक्ष हर संस्कृति में विलक्षण होते हैं जो कि विषमताओं तथा भिन्नताओं से ओत–प्रोत होते हैं, यही कारण है कि हमें व्यक्ति,संस्कृति–विशेष, हस्तक्षेपन कार्यक्रमों की आवश्यकता है। इनके अलावा कुछ संस्कृति विशिष्ट प्रभावकारी सकारात्मक हस्तक्षेपन कार्यक्रमों का संज्ञान एवं अर्थपूर्ण संपादन इस दिशा में नवीन योगदान की

ओर संकेत करता है। सिंह एवं सिंह (2010) द्वारा अग्रेषित एक लोकगीत आधारित हस्तक्षेपन कार्यक्रम की अभिकल्पना की गई है जो संगीत मनश्चिकित्सा का उपागम लेकर क्रियान्वित होता है। सिंह एवं सिंह (2010) का मानना है (चित्र–1) कि भारतीय मनोविज्ञान में दो तरह के सकारात्मक हस्तक्षेपन उपागम हो सकते हैं। प्रथम वे जो स्थिति विशेष की मंशा कर खास तौर पर गठित किए जाते हैं तथा दूसरे वे जो समाज में व्याप्त प्रथाओं के रूप में हस्तक्षेपन की तरह प्रयोग हो रहा है अथवा किया जा रहा है। लोकगीत, सत्संग एवं धार्मिक आयोजन तथा समारोह इस श्रेणी में वर्गीकृत किए जा सकते हैं।

यह तो स्पष्ट होता है कि भारतीय दर्शन एवं साहित्य का समसामायिक आधुनिक मनोविज्ञान से उच्च स्तर का सहसम्बन्ध है। चाहे जो कुछ भी हो इस सारे वर्णन से यह जरूर स्पष्ट होता है कि; प्रथम हम भारतीय परिप्रेक्ष्य में सकारात्मक मनोविज्ञान की आशा और सामार्थ्यानुसार संबल प्रदान कर रहे हैं तथा द्वितीय यह कि मनोविज्ञान चाहे कोई भी हो बावजूद विषमताओं के उसका प्रयोजन, प्रविधियाँ एवं क्रियाकलाप समानता रखते हैं।

4.2 सकारात्मक मनोविज्ञान–चुनौतियाँ तथा आलोचनाएँ

जैसी की प्रत्याशा होती है हर नई वस्तु, खोज या सिद्धांत की उत्पत्ति के सकारात्मक तथा नकारात्मक आयाम होते हैं, इसी साम्यानुमान से संदर्भित कुछ कटु आलोचनाएँ एवं चुनौतियों सकारात्मक मनोविज्ञान के बारे में भी सत्य हैं। भारतीय परिप्रेक्ष्य में इसकी नवीनता का खंडन इस बात से पुष्ट होता है कि भारतीय साहित्य एवं दर्शन में इसका उपागम इस विज्ञान के उद्गम से पूर्व मिलता है (किरण कुमार 2006)। एक अन्य आलोचना में इल्जाम है कि सकारात्मक मनोविज्ञान जीवन के महत्वपूर्ण ऋणात्मक पक्षों को दरकिनार करता है। ये बात युक्तिसंगत नहीं है तथा अग्राह्य है और इसी कारणवश इस मनोविज्ञान की पूर्णता तथा अखण्डता बाधित होती है।
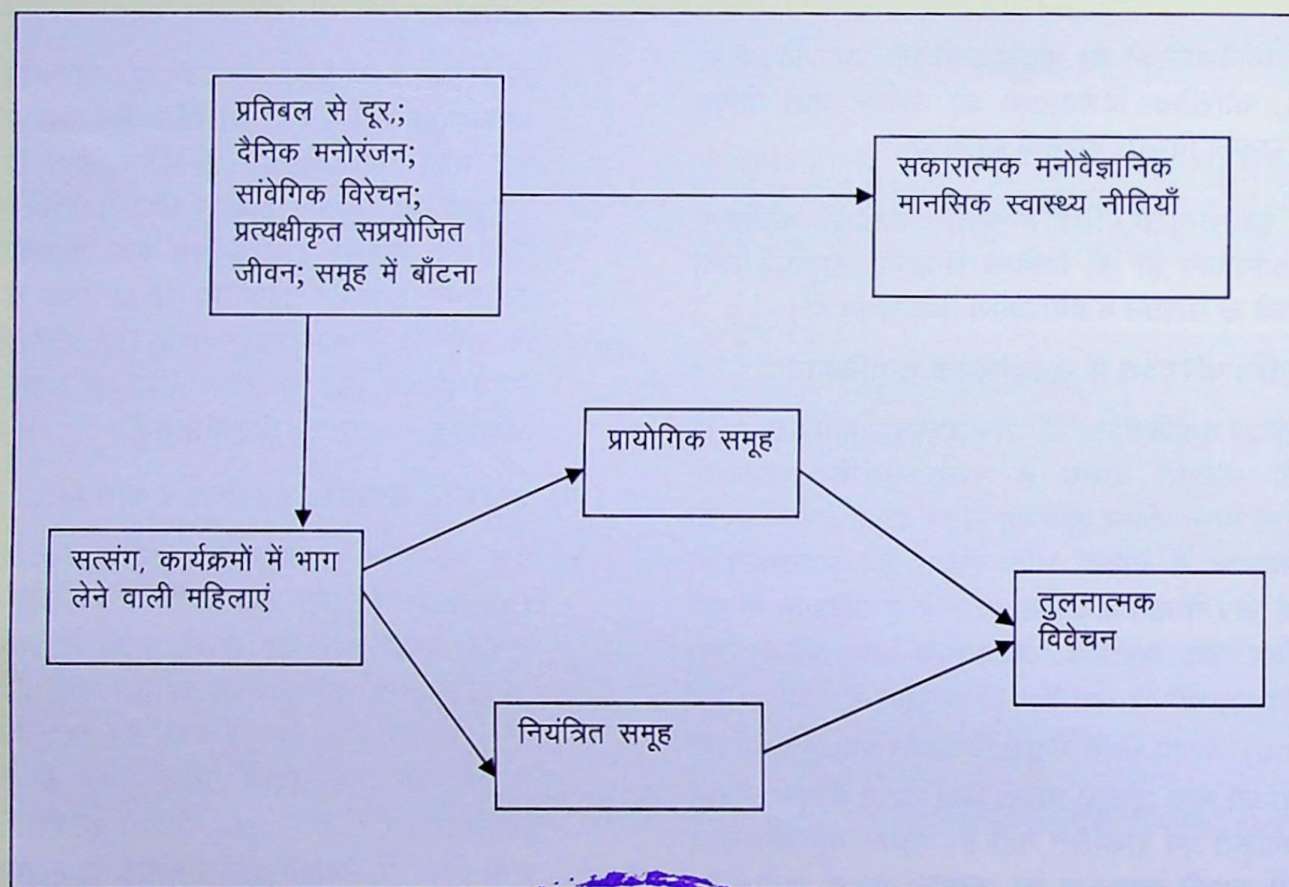
(स्रोतः सिंह एवं सिंह, 2010)

आरेख–1 हरियाणवी समाज के लिए अभिकल्पित सत्संग : एक इन्टर्वेन्शन मॉडल

अगर विशेषज्ञों की माने तो सबसे भंयकर चुनौती तब पैदा होती है जब हम सकारात्मक मनोविज्ञान को परिभाषित करते वक्त इस विरोधाभास का शिकार होते हैं कि सकारात्मक क्या है और ऋणात्मक क्या नहीं है? क्योंकि मनोविज्ञान की भाषा में अच्छे और बुरे को परिभाषित करना सरल नहीं अपितु जटिल है (हेल्ड 2004) । इन आलोचनाओं तथा चुनौतियों से निपटने के लिए सकारात्मक मनोविज्ञान को सामान्य से ऊपर उठकर उन जटिल परिस्थितियों तथा पारस्परिक क्रियाओं को गहराई से समझना और करना होगा जोकि आधुनिक मनोविज्ञान का आधार है। इसी तरह से सामंजस्य युक्त प्रयत्नों से ही सकारात्मक मनोविज्ञान का सर्वांगीण विकास संभव होगा।

5.0 उपसंहार

जिस गति से सकारात्मक मनोविज्ञान का विकास हुआ है तथा जो प्रगति इस अल्प समयावधि में सकारात्मक मनोविज्ञान ने दर्शायी है वह वाकई प्रशंसनीय है। भविष्य में प्राविधिक रूप से उन सभी कारकों के अध्ययन की संस्तुति की जाती है, जोकि शक्तिपरक गुणों और चारित्रिक विशेषताओं को पोषित करे, सुदृढ बनाएँ, जोकि इन कारकों के संचालन, संप्रेक्षण तथा समागम की कार्यप्रणाली सुनिश्चित करते हो। अंततः इस मनोविज्ञान के सिद्धांतों पर आधारित प्रभावी हस्तक्षेपन प्रक्रियाओं के निर्माण का प्रयास किया जाना चाहिए। तभी यह प्रबल संभावना बनेगी जिसके द्वारा सकारात्मक मनोविज्ञान एक सबल विज्ञान बन कर स्वयं को सिद्ध करें, अन्यथा दूसरे मनोविज्ञानों की तर्ज पर रुढ़िवादी ढाँचे में ढलकर अपना अस्तित्व मिटा दे अन्यथा अन्य के साथ सम्मिलित हो एकीकृत हो जाए। यद्यपि दोनों ही स्थितियों की प्रबल संभावनाएँ बनती हैं परन्तु इसके क्षेत्रीय समर्थक होने के नाते हमारा फर्ज़ बनता है कि हम इसके अनुभववादी प्रचार–प्रसार में योगदान करें।

संदर्भ

1. सेलिगमेन, एम. एवं चिकसेन्टमिहालयी, एम. (2000); पॉजीटिव सॉइकोलॉजी एन. इंट्रोडक्शन, अमेरिकन सॉईकोलॉजिस्ट, 55,5–14।
2. पीटरसन, सी. सेलिगमेन, एम. (2004); करेक्टर स्ट्रेन्थस ऐन्ड विरटयूस ए हेण्डबुक ऑफ क्लासिफिकेशन, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूयार्क।
3. दलाल, ए.के., एवं गिरिश्वर मिश्रा. (2010); द कोर ऐन्ड कंटेक्स्ट ऑफ इंडियन सॉईकोलॉजी सॉईकोलॉजी ऐन्ड डिवलेपिंग सोसाइटीज, 22,121–155।
4. हेल्ड, बी. (2004); द नेगेटिव साईड ऑफ पॉजीटिव सॉइकोलॉजी; जर्नल ऑफ ह्यूमनस्टिक सॉईकोलॉजी, 44,9–46।
5. सिंह के. एवं चौबीसा, आर. (2009); इफेक्टिवनेस ऑफ सेल्फ फोकस्ड इंटरवेशन फॉर एनहासिंग स्टूडेण्ट्स वेल बींगः एन एम्पीरीकल इंवेस्टीगेशन; जर्नल ऑफ इंडियन अकादमी ऑफ अप्लाइड सॉइकोलॉजी, 35,23,32।
6. सलाग्से, के.के.के. (2006); इण्डियन सॉईकोलॉजी ऐन्ड पॉजीटिव साइकोलॉजी बड्र्स ऑफ द सेम फेदर; इनवाइटेड प्रेजेनटेशन 5th इंटरनेशनल पॉजीटिव साइकोलॉजी समिट; गेलप पॉजीटिव साईकोलॉजी इंस्टिट्यूट, वाशिंगटन.।
7. सिंह, के एंव सिंह, डी. (2010); कल्चरल री इंजीनियरिंग ऑफ हरियाणवी कल्चर थ्रू फोल्क सॉन्गस। पेपर प्रेजेनटेड एट नेशनल सेमिनार ऑन पॉजीटिव साइकोलॉजी ऐन्ड हेल्थः इंटरवेशन ऐन्ड स्ट्रेटीजिस, एम. डी.यू. रोहतक, मार्च, 2010।

भाषा मानव – मस्तिष्क की वह शस्त्रशाला है जिसमें अतीत की सफलताओं के जयस्मारक और भावी सफलताओं के लिए अस्त्र–शस्त्र, एक सिक्के के दो पहलुओं की तरह साथ साथ रहते हैं।

– कालरिज

जिस भाषा में तुलसीदास जैसे कवि ने कविता की हो वह अवश्य पवित्र है और उसके सामने कोई भाषा नहीं ठहर सकती।

– महात्मा गांधी (भाषणः काशी नागरी प्रचारिणी सभा में, 5 फरवरी, 1916)

भाग–II

ऊर्जा एवं खाद्य सुरक्षा

खाद्य गुणवत्ता व सुरक्षा का संसार – एक नयी समग्र दृष्टि

प्रो. सन्तोष सत्या, गीतांजलि कौशिक, शोध छात्रा
डॉ. जागृति शर्मा एवं **प्रो. एस.एन. नायक**
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

भोजन सभी प्राणियों की मूलभूत आवश्यकता है। हालांकि पिछले कुछ दशकों में भोजन की प्रकृति व गुणवत्ता के मानव स्वास्थ्य पर प्रत्यक्ष प्रभाव के कारण खाद्य गुणवत्ता व सुरक्षा से जुड़े मुद्दों ने जन मानस के मन को झकझोर दिया है। अतः भोजन के संसार (universe) को गहराई से समझने की आवश्यकता है। प्रस्तुत लघु शोध पत्र में इस ज्वलन्त विषय के स्वरूप का समग्र दृष्टि से चिन्तन–मनन व विश्लेषण किया गया है।

खाद्य गुणवत्ता के मुख्य घटक हैं – पोषक तत्व, कार्यात्मक (functional) गुण, स्वच्छता/स्वास्थ्यकर (hygienic), स्वादपरक विशेषताएं (organoleptic properties), पर्यावरणीय व ऋतु अनुकूलता, विविधता तथा सात्विक गुण। ये विभिन्न विशेषतायें परस्पर पूरकता के रूप में एक दूसरे में समाए अर्न्तसम्बन्धों के साथ खाद्य की 'गुणवत्ता व सुरक्षा' को परिभाषित करती हैं। चित्र-1 में यह स्वरूप दर्शाया गया है।

पोषित गुण (nutritional properties) भोजन में उपस्थित प्रोटीन, वसा, स्टार्च, विटामिन तथा मिनरल घटक की मात्रा का वर्णन करते हैं, जबकि कार्यात्मक गुण विभिन्न खाद्य पदार्थों के विशिष्ट गुणो से सम्बन्धित है। उदाहरण के लिए– दालों में प्रोटीन की मात्रा, गन्ना व शकरकन्द में चीनी (मिठास) की मात्रा, आलू में स्टार्च......। भोजन के संवेदक गुण (organoleptic properties) इसके स्वाद व रूप से जुड़े हैं। फसल उत्पादन के बाद के प्रसंस्करण (post harvest processing) तथा कुकिंग व भंडारण के दौरान स्वच्छता आदि बनाये रखना स्वास्थ्यकर (hygienic) विशेषताओं का द्योतक है। पर्यावरणीय अनुकूलता इस बात को दर्शाती है कि फसल उत्पादन पर्यावरण अनुकूल कृषि विधियों से किया गया है जिससे उत्पाद में कीट अवरोधक क्षमता है। ऋतु चक्र के अनुसार तथा अनाज, फल, सब्जियों आदि की विविधता प्राणियों में रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाती है। भोजन के सात्विक गुण, उपर्युक्त सभी विशेषताओं के साथ–साथ उत्तम पोषक गुणवत्ता (superior nutrition) जिसके प्रकार्य (functions) अदृश्य है लेकिन प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, मनुष्य में मानवीय गुणों का समावेश करने में सहायक है। वास्तव में भोजन का सात्विक स्वभाव कुदरती सहारा है, प्रकृति की शक्ति का संकेत है तथा एक सक्रिय, शान्त व्यक्तित्व तथा स्वस्थ शरीर के प्रकार्यों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

जब 'खाद्य सुरक्षा' तथा 'खाद्य गुणवत्ता' के मूल अन्तर को समझते हैं तो पाते हैं कि खाद्य गुणवत्ता बहुआयामी (multidimensional) है जबकि खाद्य सुरक्षा की पहचान सरल व स्पष्ट है। यद्यपि खाद्य सुरक्षा एक सीमित परिधि/क्षेत्र में कार्य करती है लेकिन सभी प्राणियों के लिए गम्भीर खतरा उत्पन्न करती है। अतः खाद्य पदार्थों में जहरीले पदार्थ, संदूषित पदार्थ, मिलावटी अवयव आदि की सुरक्षित स्वीकृत सीमा अथवा पूर्ण रूपेण अनुपस्थित होना ही खाद्य सुरक्षा कहलाती है। वास्तव में सूक्ष्म जैविक तत्व विभिन्न प्रकार के रसायन, प्राकृतिक रूप में व्याप्त जहरीले अवयव की अनुपस्थिति ही खाद्य सुरक्षा की मुख्य प्रहरी है। उदाहरण के रूप में भोजन से उत्सर्जित/उदभवित पैथोजन जैसे salmonella, campylobacter, E. cole 0157, rotavirus, protozoan, cryptosporidium तथा mycotoxins भोजन विषाक्तता के लिए जिम्मेदार हैं। अन्य रसायन संदूषक में कीटनाशक अवशेष, भारी धातु (मरकरी, सीसा, कैडमियम, कॉपर आदि), विभिन्न खाद्य परिरक्षक व रंग, पशु औषधि अवशेष, जीन संवर्धित पदार्थ आदि सम्मिलित हैं।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि वर्तमान कृषि पद्धति, जीवन शैली व सामाजिक व्यवस्था में "सम्पूर्ण खाद्य गुणवत्ता व सुरक्षा" प्राप्त करना अत्यन्त जटिल कार्य है। आई.आई.टी. दिल्ली में अभी हाल ही में किया गया अनुसंधान कार्य एक प्रकार से चौंकाने वाला है। प्रयोग द्वारा यह पाया गया कि क्लोरपाइरीफोस कीटनाशक से संदूषित चना यदि माइक्रोवेव में पकाया जाता है तो भोजन में क्लोरपायरीफोस का एक अत्यन्त घातक/जहरीला metabolite (oxon), प्रेशर कुकर की तुलना में कई गुना अधिक उत्पन्न हो जाता है। जबकि साधारण विधि (पारम्परिक खुला कुकिंग) में यह metabolite
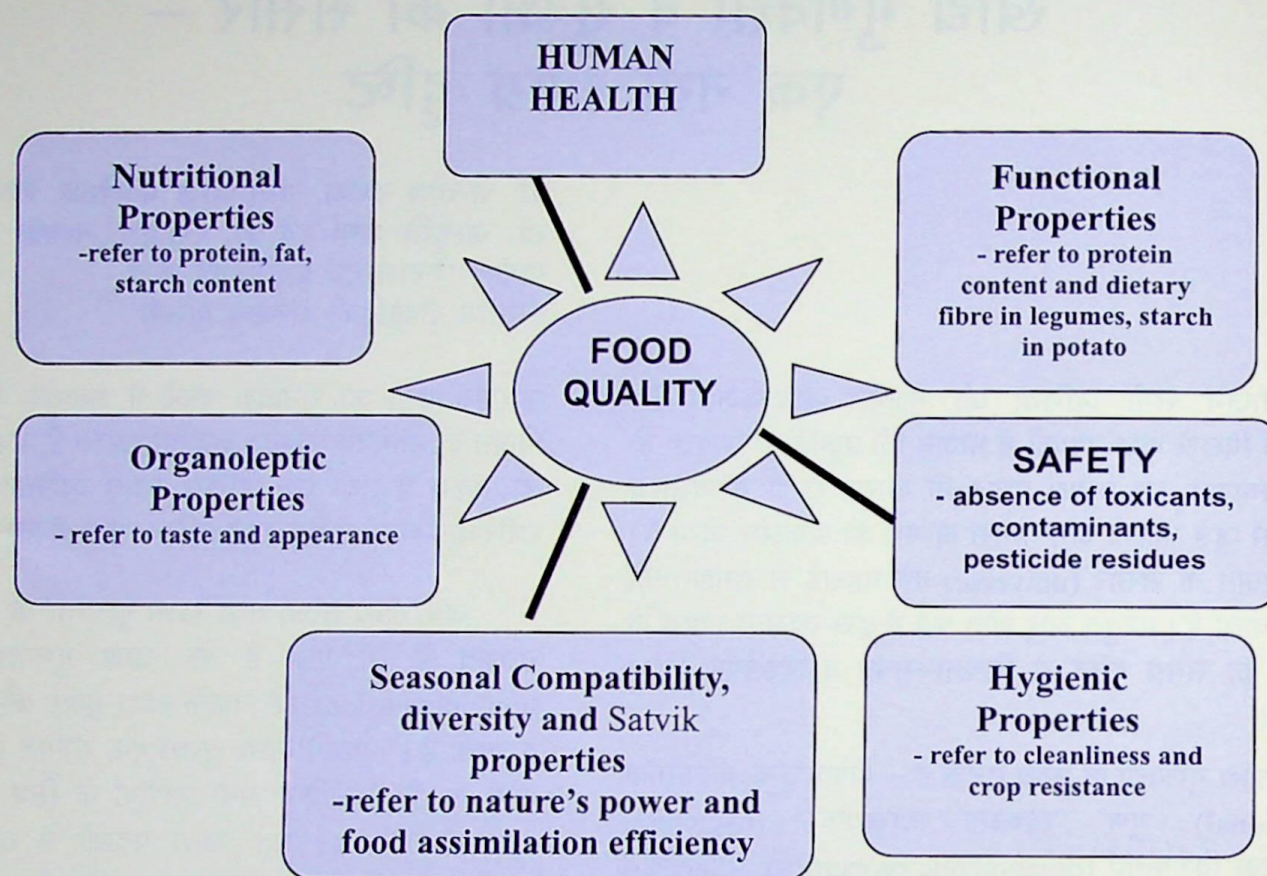
चित्र–1 खाद्य गुणवत्ता एवं सुरक्षा का स्वरूप
(स्रोतः सत्या व सहलेखक, 2007)

नहीं पाया गया। महर्षि बागभट्ट के अष्टाँग ह्रदयम में भी स्पष्ट वर्णित है कि खाद्य गुणवत्ता के लिए भोजन कुकिंग में सूर्य की किरणों तथा पवन का स्पर्श मिलना चाहिए। हालाँकि माइक्रोवेव कुकिंग समय की बचत करता है व कुछ पोषक तत्व अधिक बने रहते हैं लेकिन खाद्य सुरक्षा की दृष्टि से स्वीकार्य नहीं हो सकता है। अतः वैदिक ज्ञान को ध्यान में रखकर नये अनुसंधान की आवश्यकता है। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि मैक्सिको स्थित Gersen Diet Therapy Institute, कैंसर के इलाज के लिए माइक्रोवेव ही नहीं बल्कि प्रेशर कुकर में भी भोजन पकाने का सुझाव नहीं देता है। अतः 'भोजन की गुणवत्ता व सुरक्षा' का सही स्वरूप समझकर प्रचालित चिन्तन–मनन में आमूल चूल बदलाव अर्थात paradigm shift की आवश्यकता है, ताकि प्रकृति/ब्रह्माण्ड के सभी प्राणियों के स्वास्थ्य की सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके।

संदर्भ

1. अबालका, जे.ए. (1999); "ॲशुरिंग फूड क्वालिटी ऐन्ड सेफ्टी : बैंक टू दि बेसिज क्वालिटी कन्ट्रोल थ्रो आउट दिफूड चेन";एफ.ए.ओ./डब्ल्यू.एच.ओ./डब्ल्यू. टी. ओ. कॉन्फ्रेन्स ऑन इन्टरनेशॅनल फूड ट्रेड बियोण्ड 2000, मेलबोर्न, आस्ट्रेलिया, 11–15 अक्टूबर 1999।

2. क्रोश, ए. (2004); k- इफैक्ट्स ऑन यील्ड क्वालिटी पोटाफोस IPI-PPI-PPIC सिम्पोजियम ऑन k इन ब्राजिलियन एग्रीकल्चर। साओ पेड्रो, एस.पी., ब्राजील 22–24 सितम्बर, 2004।

3. सत्या एस., कौशिक जी., नायक, एस.एन., मलिक ए; "एन्हासिंग फूड क्वालिटी ऐन्ड सेफ्टी इन ए रूरल हैबिटेट–ए हॉलिस्टिक प्रॉस्पैक्टिव"; इन : ट्रोपेन्टेग, 2007, वितजेनहाजेन, जर्मनी, 9–11 अक्टूबर, 2007।

4. शर्मा, जागृति (2006); "इफैक्ट ऑफ प्रोसेसिंग मैथड्स ऑन दि क्वालिटी ऑफ सीरियल ऐन्ड लिग्यूम प्रोडक्ट्स"; पीएच.डी. थिसिस, सी.आर.डी.टी., आई. आई.टी. दिल्ली।

5. बागभट्ट का अष्टाँग ह्रदयम; volume-II (अनुवादकः प्रो. के. आर. श्री कान्था मूर्थि), चौखम्बा कृष्णदास एकेडेमी द्वारा प्रकाशित, edition (reprint), 2009।

सौर शुष्कीकरण : आज की आवश्यकता

प्रो. सुभाष चन्द्र कौशिक एवं
एन. एल. पंवार, शोध छात्र
ऊर्जा अध्ययन केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

प्रस्तावना

आज विश्व में ऊर्जा की कुल खपत का 80% भाग जीवाश्म ईंधन द्वारा पूरा किया जाता है। बढ़ते जीवाश्म ईंधन का उपयोग वर्तमान में हो रहे वातावरण परिवर्तन का मुख्य कारक बढ़ती जनसंख्या, घटते संसाधन हैं और बढ़ती विकास दर ने ऊर्जा को नए विकल्पों पर लाकर छोड़ दिया है, इसीलिए कहा गया है कि "आवश्यकता अविष्कार की जननी है"। भारत एक कृषि प्रधान देश है। आज भी इसकी आबादी का 60% भाग गाँवों में निवास करता है, इतना ही नहीं कृषि भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ मानी जाती रही है।

आज भारत में खाद्य उत्पादन में कोई समस्या नहीं है, परन्तु खाद्य में कमी का मुख्य कारण कटाई उपरान्त अधिकतर मात्रा में उत्पादन का व्यर्थ होना है, जो कि कीटों के हमले, संग्रहण के दौरान नाश, विषाक्तता इत्यादि द्वारा हो रही है। खाद्य कीं यह हानि उत्पाद का संग्रहण करने से पूर्व उपयुक्त रूप से शुष्कीकरण द्वारा रोकी जा सकती है। किसी भी खाद्य पदार्थ के संग्रहण के दौरान हानि अंतिम उत्पाद की आर्द्रता पर निर्भर करती है।

फल सब्जियाँ जल्दी खराब होने वाले पदार्थ हैं जिन्हें बिना गुणवत्ता में कमी लाए लम्बे समय तक संरक्षित करने की आवश्यकता होती है। संरक्षण हेतु तीन पद्धतियाँ काम में लायी जाती हैं जिनमें डिब्बाबंदी, गहन शीतकरण एवं शुष्कीकरण शामिल हैं। पहली दो विधियाँ महंगी हैं और उनमें प्रौद्योगिकी की आवश्यकता होती है जबकि शुष्कीकरण एक सहज एवं साधारण पद्धति है जो कि सौर ऊर्जा द्वारा पूर्ण होती है। सब्जियों के शुष्कीकरण में, उनकी आर्द्रता की मात्रा 4–6 प्रतिशत तक कम की जा सकती है जिसके परिणामस्वरूप बचे हुए भाग में पोषक तत्वों की सान्द्रता बढ़ जाती है। सौर ऊर्जा पर्यावरणीय मित्र है, सौर ऊर्जा, अक्षय, प्रदूषण रहित और बिल्कुल मुफ्त है। यह परम्परागत ईंधन से संबंधित समस्याओं से बचाती है। भारत देश के अधिकतर स्थान साल में 300 दिन खुली धूप वाले हैं, जहाँ सौर ऊर्जा को आसानी से शुष्कीकरण के लिए उपयोग में लाया जा सकता है।

सौर ऊर्जा का सुसंगठित एवं व्यवस्थित ढंग से उपयोग यदि कृषि उत्पादों को जो कम तापमान पर सुखाए जाते हैं, में किया जाए तो किसानों को उनके मेहनत एवं उत्पाद का उचित मूल्य मिल सकता है। गत दशकों में बढ़ती ईंधन की खपत एवं कीमत को देखते हुए सौर शुष्कीकरण के क्षेत्र में बहुत अनुसन्धान किए गए हैं। सौर शुष्कीकरण में सौर ऊर्जा का उपयोग होता है जो किसी प्रकार का प्रदूषण नहीं फैलाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युत की कमी को देखते हुए कृषि उत्पादों को खेतों में प्राकृतिक संवहन प्रकार का शुष्कीकरण काम में लिया जाता है।

सौर शुष्कीकरण का सिद्धान्त

शुष्कीकरण एक बहुत पुरानी तकनीक है जिससे कृषि एवं उद्यानिकी के विभिन्न उपयोगी उत्पादों में उपस्थित अतिरिक्त नमी हटाई जाती है। इसके तहत सौर संग्राहक में सूर्य की ऊष्मा से वायु को गरम किया जाता है। यह गरम वायु उत्पाद से होकर गुजरते समय उत्पाद में उपस्थित जल को वाष्पित करके अपने साथ बाहर ले जाती है। बाहर जाने वाली हवा में नमी की मात्रा बढ़ जाती है, यह नमी समय के साथ कम होती जाती है। जब अंदर की हवा में उपस्थित नमी बाहर की हवा में उपस्थित नमी के लगभग समान हो जाए तब उत्पाद सुखने वाला होता है। बहुत से शोध पत्रों में पाया गया है कि सौर शुष्कीकरण में तापमान बाहरी वायुमण्डल से लगभग 20 से 35 डिग्री सेंटीग्रेड ज्यादा रहता है तथा सौर शुष्कर के अंदर का तापमान लगभग 55 से 65 डिग्री सेंटीग्रेड तक प्राप्त होता है जो कृषि उत्पादों को सुखाने के लिए आवश्यक है।

1. खुला सौर शुष्कीकरण

भूमध्य रेखीय देशों में सौर ऊर्जा की प्रचुर उपलब्धता के कारण इसका उपयोग प्राचीनकाल से होता आया है। इन देशों में कृषि उत्पादों को खुले वातावरण में सुखाना एक आम प्रक्रिया है। ग्रामीण क्षेत्रों में शुष्कीकरण मुख्य रूप से वातावरण में सूर्य विकिरणों पर आधारित होता है। जिसे खुला सौर शुष्कीकरण

कहते हैं। जिसमें धूल, संक्रमण, पक्षियों द्वारा खा लिये जाने तथा अचानक वर्षा से नुकसान होने की आशंका बनी रहती है। इस पद्धति का सबसे बड़ा आकर्षण इसकी सरलता एवं कम कीमत होना है, हालांकि इस पद्धति में कुछ कमियाँ भी हैं, जिनमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

- शुष्कीकरण की दर पर कोई नियंत्रण नहीं होता है जिसका परिणाम अति शुष्कीकरण, रंग रूप का खराब होना, अंकुरण शक्ति में कमी, पोषण में बदलाव आदि हैं।
- इस पद्धति से खाद्य पदार्थों के शुष्कीकरण में, विषाणु व जीवाणु आदि पनपने का डर भी रहता है, जो कि अंततः उत्पादन की गुणवत्ता को नकारात्मक रूप से प्रभावित करते है।
- समान रूप से उत्पाद का शुष्कीकरण नहीं हो पाता।
- इस विधि द्वारा शुष्कीकरण लम्बा समय लेती है और इसमें शुष्कीकृत उत्पाद निम्न गुणवत्ता वाला भी हो सकता है।
- उत्पाद धूल, चिड़िया, कीड़ों व चूहों की गन्दगी द्वारा भी विषाक्त हो सकता है।
- हालांकि उत्पाद पर्याप्त सूखा प्रतीत होता है परन्तु इसमें भी हमेशा फफूंद एवं विषाणुओं के हमले द्वारा विषाक्तता पनपने की संभावना होती है।

खुले सौर शुष्कीकरण को चित्र 1 में दर्शाया गया है।

इसके अन्तर्गत उत्पाद को खुले सौर विकिरणों में फैलाया जाता है और तब तक रखा जाता है जब तक उत्पाद की नमी हट न जाए और वाष्पित पर शुष्कीकृत उत्पाद प्राप्त न हो जाए। शुष्कीकरण के दौरान उत्पाद को सब तरफ से समान रूप से सुखाने के लिए थोड़े समय के अन्तराल में पलटा जाता है। जैसा चित्र 1 में दर्शाया गया है सूर्य से आने वाली कुछ विकिरणों को उत्पाद द्वारा सोख लिया जाता है तथा कुछ को परावर्तित कर दिया जाता है, विकिरणों को सोखने के कारण उत्पाद गरम हो जाता है, साथ ही आस–पास कि वायु भी गरम हो जाती है, सूर्य के पास की ऊष्मा जो उत्पाद द्वारा सोखी गयी थी, उत्पाद में उपस्थित पानी को वाष्पित करने के उपयोग में आती है। उत्पाद द्वारा शोषित ऊष्मा का कुछ भाग बहद तरंगदैर्घ्य के रूप में पुनः वातावरण में चली जाती है तथा कुछ धरातलीय सतह द्वारा सोख ली जाती है।
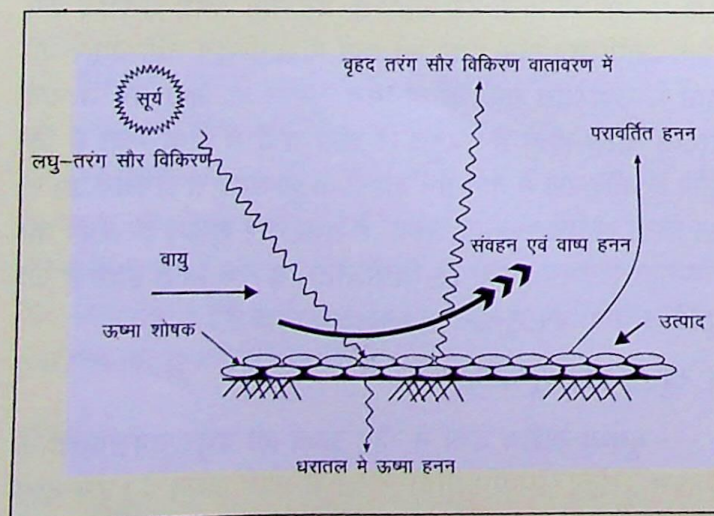
2. प्राकृतिक संवहन सौर शुष्कर

सौर शुष्कर जिसमें सौर ऊर्जा एक मुख्य इकाई में एकत्र होती है और उसी इकाई में शुष्कीकरण होता है इसे **प्राकृतिक सौर शुष्कर** के नाम से जाना जाता है। चित्र 2 में प्राकृतिक संवहन सौर शुष्कर को दर्शाया गया है। बक्सेनुमा शुष्कर, रैक युक्त शुष्कर, गुफानुमा शुष्कर, हरित गृह शुष्कर व बहु–रैक युक्त शुष्कर इस प्रकार के शुष्कर के कुछ उदाहरण हैं। साधारणतया ये शुष्कर आकार में छोटे होते हैं। घरेलू स्तर पर इस तरह के शुष्करों की एक इकाई लगाकर लाभ उठाया जा सकता है उत्पाद जो कि सुखाना है वह कुछ ट्रे में एक के ऊपर एक रखा जाता है। वायु नीचे से ऊपर बहती है और नमी को तब तक हटाती है जब तक कि वह ऊपर की तरफ से शुष्कर से बाहर न निकल जाए। यदि उत्पाद को सीधे धूप में न रखना हो तो उसे ढकने की व्यवस्था की जा सकती है।

चित्र 1: खुला सौर शुष्कीकरण
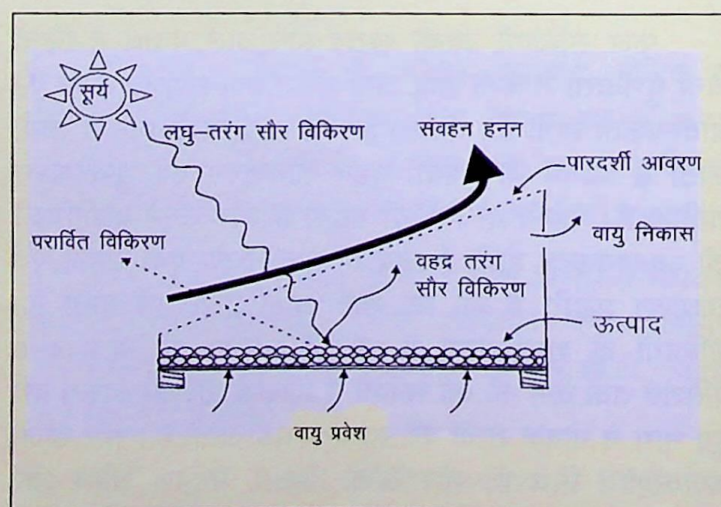
चित्र 2 : प्राकृतिक संवहन सौर शुष्कर

इस शुष्कर की विशेषता निम्न प्रकार से है :

- उत्पाद को पाउडर रूप में शुष्क करने हेतु उपयोगी है।
- दूर दराज इलाकों में भी आसानी से उपयोग में लाया जा सकता है।
- इसका उपयोग छोटे स्तर पर उपयुक्त है।
- इसकी प्रारंभिक लागत भी अपेक्षाकृत कम है।

3. दबावीय संवहन और शुष्कर

इस प्रकार के शुष्कर में उत्पाद को सूर्य की सीधी विकिरणों से बचाया जाता है, इससे उत्पाद का रंग व बाहरी सतह पर आने वाली दरारों से बचा जा सकता है। इसमें हवा को एक अलग स्थान पर गरम करके उसे पंखे की सहायता से शुष्कन कक्ष में भेजा जाता है जहां पर उत्पाद सुखाने के लिए रखा जाता है। चित्र–3 में दबावीय संवहन शुष्कर संरचना को दिखाया गया है। सौर संवाहक को एक निश्चित कोण पर झुकाया जाता है जिससे अधिकतम सौर ऊर्जा का संग्रहण किया जा सके। सौर संग्राहक की गरम हवा को शुष्कन कक्ष में इस प्रकार से भेजा जाता है कि गरम हवा उत्पाद के अधिकतम भाग से होकर गुजरे। इस प्रकार का शुष्काक अधिक नमी वाले उत्पादों को सुखाने में काम लिया जाता है। इसमें प्राकृतिक संवहन शुष्कन की बजाय उत्पाद जल्दी सूखता है,

यह दूर दराज इलाकों में, जहाँ विद्युत उपलब्ध नहीं होती है, वहाँ काम में नहीं लाए जा सकते। औद्योगिक स्तर पर इस तरह के सौर शुष्कर ज्यादा लाभकारी होते हैं।

चित्र 3 : दबावीय संवहन सौर शुष्कर
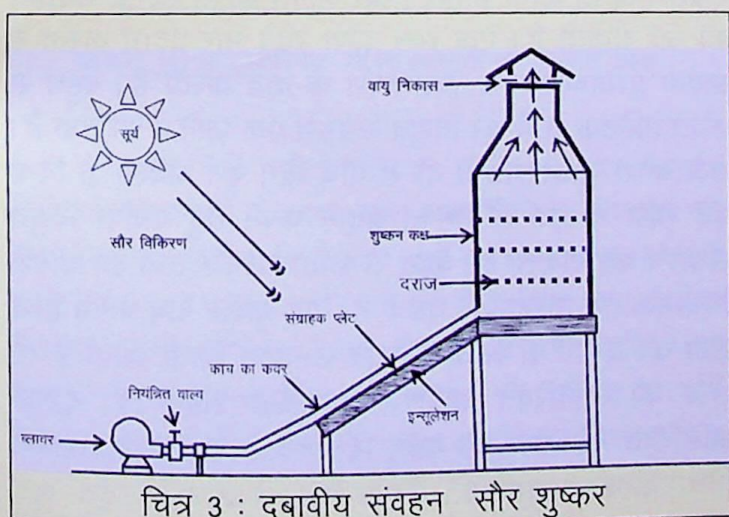
शुष्कर की संरचना को प्रभावित करने वाले कारक–

शुष्कर की दक्षता बाह्य वातावरणीय परिस्थितियों एवं उत्पाद के गुणों पर मुख्य रूप से आधारित होती है। निम्नलिखित कारक किसी स्थान पर शुष्कर की डिजाइन निर्धारित करते हैं:

☞ **सौर विकिरण** – सौर विकिरणों की उपलब्धता अलग–अलग स्थान पर भिन्न होती है। किसी स्थान पर सौर विकिरणों की तीव्रता उस स्थान के अक्षांश व सूर्य की ऊंचाई, आसमान की स्वच्छता पर निर्भर करती है। शुष्कर की संरचना इस प्रकार से करनी चाहिए कि उत्पाद को आवश्यक ऊष्मा मिलती रहे।

☞ **तापमान**–सौर शुष्कन में तापमान का अपना महत्व है। इसे नियंत्रित करना आवश्यक होता है वरना उत्पाद की गुणवत्ता प्रभावित होगी। शुष्कक के अन्दर का तापमान 55–65 डिग्री सेन्टीग्रेड तक होना चाहिए। शुष्कर की संरचना इस प्रकार की होनी चाहिए कि अंदर वायु का तापमान समान बना रहे यह तापमान वाष्पित जल को बाहर ले जाने में सहायता करता है।

☞ **आपेक्षिक आर्द्रता**– शुष्कर में पदार्थ की नमी के वाष्पीकरण के लिए आवश्यक दबाव, वाष्पीय दबाव का उत्पाद की सतह पर एवं शुष्कीकरण करने वाली वायु की आर्द्रता के बीच की विभिन्नता पर निर्भर करता है। अगर शुष्कीकरण करने वाली वायु की आपेक्षिक आर्द्रता उच्च है तो उससे शुष्कीकरण दर भी कम हो जाएगी। इसके अलावा, आपेक्षिक आर्द्रता यदि 80 प्रतिशत से अधिक होती है तो उत्पाद में नमी पैदा हो जाती है और उत्पाद खराब हो जाता है।

उपर्युक्त कारक उत्पाद के चारित्रिक गुण (खुरदरापन अथवा चिकनापन), रासायनिक संरचना (शर्करा, स्टार्च आदि), नाप व आकार को प्रभावित करते हैं एवं ऊष्मा एवं नमी के प्रवाह से आन्तरिक प्रतिरोधकता निर्धारित करते हैं।

संदर्भ

- राठौड़ एन. एस.; पंवार एन. एल. (2010) नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत; हिमांशु पब्लिकेशन उदयपुर, राजस्थान
- पंवार एन.एल.; कौशिक एस.सी.; कोठारी एस. (2010); स्टेट ऑफ दि आर्ट ऑन सोलर डाइंग टेक्नोलॉजी : एक समीक्षा; इन्टरनेशनल जे. रिन्यूएबॅल एनर्जी टेक्नोलॉजी (प्रकाशनाधीन)

सौर फोटोवोल्टिक:एक पुनःदृष्टि

प्रो. नरेन्द्र दत्त कौशिक
निदेशक, स्कूल आफॅ रिसर्च ऐन्ड डिवेलपमेन्ट
भारती विद्यापीठ कॉलेज ऑफ़ इंजीनियरिंग,नई दिल्ली
प्रो. मनीषा गुप्ता,
अध्यक्ष, भौतिक शास्त्र विभाग
राजस्थान इंस्टीट्यूट ऑफ इंजीनियरिंग ऐन्ड टेक्नोलोजी
भांकरोटा,जयपुर

1.0 प्रस्तावना

विगत वर्षों में वैश्विक माँग एवं शक्ति की आपूर्ति के बीच की खाई पाटने में सौर, पवन, जैव ऊर्जा, सूक्ष्म–अतिसूक्ष्म जलीय ऊर्जा, सामुद्रिक प्रवणता एवं तरंगों जैसे पुनः नवीनीकृत स्रोतों को गम्भीरता से गिना जाने लगा है। विगत 25 वर्षों में पुनर्नवीनीकृत शक्ति तकनीक ने समस्त विश्व में अनुसंधान, विकास, परीक्षण एवं प्रदर्शन हेतु अथक प्रयास किए हैं। सौर फोटोवोल्टिक, सौर तापीय विद्युतिकी एवं पवन ऊर्जा प्रमुख उभरती हुई तकनीक हैं। सौर फोटोवोल्टिक विकास की सबसे अग्रणी अवस्था है एवं 21वीं सदी में सौर फोटोवोल्टिक तंत्र ऊर्जा का प्रमुख साधन होगा।

2.0 आधारभूत तथ्य

सौर फोटोवोल्टिक में अर्धचालक युक्ति जो सौर सेल के नाम से जाना जाता है, का उपयोग कर सूर्य की विकिरण ऊर्जा को विद्युत में रूपान्तरित किया जाता है। सौर सेल के लिए साधारणतया सिलिकॉन का प्रयोग किया जाता है। सिलिकॉन पदार्थ की अवस्था एवं गुणता पर आधारित तीन तरह की सौर सेल निष्पादित एवं विक्रय की जाती हैं। ये सेल हैं –

- **एकल क्रिस्टल सेल** – ये शुद्ध एकल क्रिस्टल सिलिकॉन से बनती है जिनमें कोई विकृति नहीं होती। इन सेलों की रूपान्तरण दक्षता लगभग 15% होती है।
- **बहु क्रिस्टल सेल** – ये सेल एकल क्रिस्टल सिलिकॉन या अर्धचालक स्तर सिलिकॉन से थोड़े से खराब स्तर से उत्पादित होते हैं। इसके उत्पादन में सतह पर अशुद्धि के कारण धब्बे होते हैं। इसके उत्पादन में सरल प्रक्रिया निहित होने की वजह से ये एकल क्रिस्टल सेल की तुलना में सस्ते होते हैं। इन सेलों की रूपान्तरण दक्षता लगभग 12% होती है।
- **अनियमित सिलिकॉन सेल/पतली फिल्म सेल** – ये सिलिकॉन क्रिस्टल संरचना के स्थान पर अनियमित सिलिकॉन से बने होते हैं। ये क्रिस्टल संरचना की बजाय एक पतली परत में परमाणुओं का प्रयोग करते हैं। ये क्रिस्टल सेल की अपेक्षा ज्यादा प्रभावी अवशोषण करते हैं एवं इसी कारण से ज्यादा पतले हो सकते हैं। पतली फिल्म तकनीक का प्रयोग दृढ़ लचकदार, वक्रीय, मुड़ने वाली सरंचनाओं में किया जा सकता है। ये क्रिस्टल सेल से सस्ते होते हैं किन्तु 5–7% तक की कम रूपान्तरण दक्षता वाले होते हैं।

सौर सेल, सौर फोटोवोल्टिक तंत्र की सूक्ष्मतम इकाई है। भारत में निर्मित एक प्रारूपिक क्रिस्टलीय सिलिकन सौर सेल मानक परीक्षण परिस्थितियों (STC), जो कि 1000 W/m2 एवं 25^{0}C सेल तापमान है, पर पूर्ण सूर्य के अन्दर 0.5V एवं 2.3A पर लगभग 1Wp का उत्पादन करता है।

3.0 तंत्रों का संतलुन

यदि रात्रि में अथवा बादलों वाले दिनों में शक्ति चाहिए तो विन्यास द्वारा प्रतिपादित चलायमान सीधी धारा का संग्रहण किया जाना चाहिए। सूर्य जनित विद्युत सेल में संग्रहित की जा सकती है। एक सेल कोश सीधे भार प्रदान करता है अथवा प्रत्यावर्ती धारा रूपान्तरण के बाद करता है। बहुत से फोटोवोल्टिक तंत्रों का विद्युत संग्रहण एक जटिल संघटक है। सेल कोश साधारणतया दो से पाँच दिन पूर्ण बादलों के दिनों एवं रात्रि में घर को शक्ति प्रदान करने हेतु पर्याप्त विद्युत संग्रहण कर सकता है। बहुत से फोटोवोल्टिक तंत्रों का आवेश नियामक एक महत्वपूर्ण घटक है। यह युक्ति, जब प्रमाप द्वारा सेल की क्षमता से अधिक विद्युत उत्पादन किया जाता है तो सेल को अतिरिक्त आवेश से सुरक्षित रखती है। इसके अतिरिक्त यह सेल को गहन विसर्जन से बचाता है। आवेश नियामक की अनुपस्थिति में एक सेल को अत्यधिक टूट–फूट झेलनी पड़ सकती है और कम प्रभावी हो जाती है और जल्दी ही खत्म हो जाती है और यहाँ तक की सम्भवतया लघु परिपथ भी हो जाता है। कभी–कभी, अतिआवेशित होने के दौरान सेल में भरे अम्ल से निकलने वाली गैस विकट अग्नि का रुप ले

सकती है। सेल शक्ति से बहुत अल्प वोल्टता (12V) का उत्पादन होता है, जबकि घरेलू उपकरणों में 240V की आवश्यकता होती है। प्रत्यावर्ती धारा को सीधी धारा में रूपान्तरित करने के लिये प्रतिलोमक (inverter) की आवश्यकता होती है। प्रतिलोमक इलक्ट्रोनिक युक्तियाँ है जो अकेले और उपयोग अन्योन्य फोटोवोल्टिक तंत्र दोनों में फोटोवोल्टिक विन्यास द्वारा उत्पादित सीधी विद्युत धारा (DC) को प्रत्यावर्ती विद्युत धारा (AC) में परिवर्तित करता है, जो प्रमुख उपकरणों एवं इलैक्ट्रोनिक युक्तियों में साधारणतया काम में आते हैं। प्रतिलोमक अपनी क्षमता (वाट या किलोवाट), निर्गमित वोल्टता (उदाहरणतः 120V AC) और उनकी शक्ति गुणता के आधार पर विशिष्टीकृत होते हैं। सभी उपयोग–अन्योन्य फोटोवोल्टिक तंत्रों को एक प्रतिलोमक की आवश्यकता होती है, क्योंकि अकेला तंत्र प्रत्यावर्ती धारा भार की आपूर्ति करता है। अकेला तंत्र जो सीधी धारा भार की आपूर्ति करता है, उसे प्रतिलोमक की आवश्यकता नही होती। फोटोवोल्टिक तंत्र जनित कोई भी अतिशक्ति तंत्र के मालिक के खाते में है, इसे विश्वस्त करने हेतु एक मापक की आवश्यकता होती है।
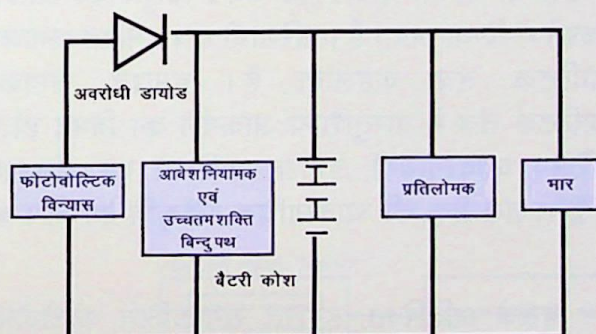
आकृति (1) फोटोवोल्टिक शक्ति आपूर्ति का विस्तृत चित्र

व्यवहार में फोटोवोल्टिक तंत्रों में इस कारण फोटोवोल्टिक प्रमापों के साथ–साथ अन्य विभिन्न संघटकों की भी आवश्यकता होती है जिसे प्रायः तंत्रों का संतुलन कहा जाता है, जिसमें तंत्र वायरिंग, आधार संगठन, प्रतिलोमक सेल, आवेश नियामक, डोरी/पंक्ति योजक, प्रकाश संरक्षण, अति धारा संरक्षण, स्विच को अवरुद्ध करना एवं पृथ्वी गड़बड़ संरक्षण निहित है। एकल फोटोवोल्टिक शक्ति आपूर्ति का विस्तृत चित्र आकृति (1) में दर्शाया गया है। तंत्रों के संतलुन के घटकों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जा सकता है।

यांत्रिकीः पैनल संगठन, सेल रैक, ध्रुव, केबल इत्यादि का आरेखन (Design)विपरीत मौसम परिस्थितियों एवं वायु भारित स्थिति में काम में आने योग्य किया जाता हैं।

विद्युतिकीः मुख्य नियंत्रण पैनल, परिपथ भंजक, स्विच गियर, संयोजक, बिजली भंडारित करना, सुरक्षा के लिए भूमिगत करना इलैक्ट्रॉनिकीः नियंत्रण एवं प्रबंधन हेतु, डी.सी.–ए.सी. प्रतिलोमक, डी.सी.–डी.सी. रूपान्तरण, शक्ति अनूकूलक, आवेश नियंत्रक, काल मापक, भारान्तरण, पर्यवेक्षण, डाटा लोगिंग इत्यादि।

तंत्र एवं अनुप्रयोग :– विगत 25 वर्षो में पुनर्नवीनीकृत शक्ति तकनीक ने समस्त विश्व में अनुसंधान, विकास, परीक्षण एवं प्रदर्शन हेतु अथक प्रयास किए हैं। परिणामतः सौर फोटोवोल्टिक एक मुख्य शक्ति स्रोत बनता जा रहा है। आकृति (2) 1989 में सौर फोटोवोल्टिक (SPV) का सकल वैश्विक उत्पादन 45 MW था। यह 1993 में बढ़कर 62.5MW हो गया एवं इस दशक के अंत में 1000MW से भी ज्यादा होने वाला है। इस फोटोवोल्टिक तकनीक के बारे में जागरुकता बढ़ रही है।
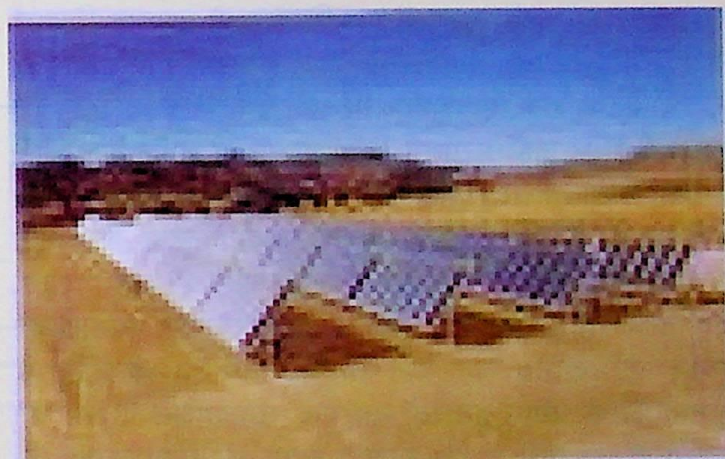
आकृति (2) एनटेक की विद्युत प्रसाधन प्रायोजना (100 kW टेक्सास में)

स्वच्छ विद्युत की आवश्यकता के परिप्रेक्ष्य में तंत्रों की बढ़ती हुई संख्या परिलक्षित होना महती लाभकारी है। फोटोवोल्टिक एवं फोटोवोल्टिक बाजार में उनके अनुमानित अंश की कुछ प्रारूपिक धारा अनुप्रयोग निम्नलिखित हैं –

- बिजली, सुरक्षा एवं अन्य उपभोक्ता उत्पाद – 28%
- ग्राम शक्ति – 10.5%
- दूरस्थ प्रशीतलन – 1%
- प्रतिव्यक्ति इमारतों या समस्त समुदायों हेतु विद्युत – 22%
- जल पम्पिंग एवं सिंचाई – 1.6%

- वितरण आधार हेतु प्रसाधन ग्रिड का पूरक – 0.4%
- संप्रेषण – 20%
- दूरस्थ परिवीक्षण उपकरण – 1%
- नौसंचालन के सहायक उपकरण – 1%
- ऋणागत संरक्षण – 4%
- फोटोवोल्टिक / डीजल हाइब्रिड जनरेटर – 8%
- मिलिट्री अनुप्रयोग – 0.5%
- विविध – 2%

वर्ष 2005 तक पिछले दशक में सौर फोटोवोल्टिक विद्युत 25 रु. प्रति किलोवाट घंटा से 13 रु. प्रति किलोवाट घंटा तक कम अंकित की गई। मूल्य में इस गिरावट से प्रसाधन ग्रिड के साथ व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा में इमारतों पर वितरित फोटोवोल्टिक तंत्र एक आकर्षक अनुप्रयोग हो सकता है। दूरस्थ क्षेत्रों में जहाँ प्रसाधन ग्रिड की सेवाएं उपलब्ध नहीं हैं, इमारतों में शक्ति स्रोत के रूप सौर फोटोवोल्टिक वरीयता प्राप्त कर सकते हैं। इमारतों पर लगे फोटोवोल्टिक तंत्र भूमि आरोपित तंत्रों हेतु भूमि की आवश्यकता, साथ ही क्षेत्र विकास, नींव, ढ़ांचागत आधार तंत्र, भूमिगत विद्युत वितरण एवं प्रसाधन युग्मन की कीमत को कम कर सकते हैं। व्यवहार में, फोटोवोल्टिक प्रमाप इमारतों का एक समाकलित हिस्सा बन सकता है जो प्रायः बाहय मौसमी त्वचा का काम करता है। इमारत फोटोवोल्टिक प्रभावन क्षेत्र एवं आधार संगठन उपलब्ध कराएगा और इमारत की प्रसाधन सेवाएं फोटोवोल्टिक विद्युत की उपभोक्ता बन जाएंगी। साथ ही जिन क्षेत्रों में बार–बार शक्ति व्यवधान होता है, वहाँ फोटोवोल्टिक शक्ति तंत्र इमारतों पर एक विश्वसनीय शक्ति स्रोत बन सकता है। सौर फोटोवोल्टिक की प्रभाविता एवं दक्षता निम्नलिखित विभिन्न चरों पर निर्भर करती है–

1. **स्थान** : उपलब्ध सूर्य प्रकाश की मात्रा विद्युत ऊर्जा उत्पादन की मात्रा पर प्रभाव डालती है।
2. **दिग विन्यास** : इमारत का दिग विन्यास एवं सौर विन्यासों की स्थिति अधिकतम ऊर्जा उत्पादन में महत्वपूर्ण घटक हैं। उत्तरी गोलार्ध में वर्ष भर में एक दक्षिणामुखी फलक अधिकतम सौर ऊर्जा संग्रहण करेगा और अधिकतम विद्युत उत्पादन करेगा।
3. **घुमावदार कोण** : सूर्य की तरफ झुके हुए और मुडे हुए सौर पैनल सतह पर सूर्य प्रकाश का स्तर बढ़ा सकते हैं और इस कारण से विद्युत उत्पादन बढ़ जाता है। प्रस्तावित स्थान के अक्षांश के आधार पर ढलान के उचित कोण का निर्धारण किया जाता है।
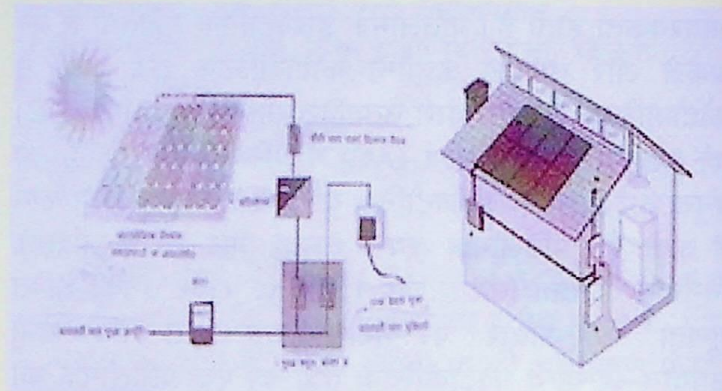
आकृति (3) इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक तंत्र का विस्तृत चित्र (www.solarcentury.co.uk के सौजन्य से)

आकृति (3) में दर्शाए अनुसार भारत के परिरूप में ये परिमाप आसानी से अधिकतम किए जा सकते हैं। इमारत की ढ़लवां छत या उचित दीवार का चयन विद्युत को अधिकतम प्राप्त करने में किया जाता है। परिणामी तंत्र इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक तंत्र कहलाता है। इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक तंत्र में वास्तुशिल्प आकर्षण का विभव होता है, जो परिरूप व्यावसायियों, इमारत मालिकों एवं जनसाधरण जनता द्वारा तकनीक की व्यावसायिक स्वीकृति का योग करता है।

इसके अतिरिक्त, इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक के घटक पारम्परिक इमारत के समान होते हैं एवं श्रम का प्रतिस्थापन करते हैं, इस प्रकार फोटोवोल्टिक तंत्र का स्थापना मूल्य कम हो जाता है। घटे हुए स्थापना मूल्य, बढ़े हुए सौंदर्य और वितरित पीढ़ी के इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक तंत्र के समस्त परिलाभों के साथ रिहायशी एवं व्यावसायिक इमारत दोनों के लिए एक आकर्षक विकल्प हो गया है। सौर फोटोवोल्टिक शक्ति तंत्र विभिन्न विधाओं में संचालित किए जा सकते हैं जो तीन वर्गों में वर्गीकृत किए जा सकते हैं।

(अ) **एकल** – समस्त शक्ति एक सौर फोटोवोल्टिक विन्यास द्वारा प्रतिपादित की जाती है और माँग की पूर्ति हेतु उपलब्ध करने के लिए सेल में संचित की जाती है।

(ब) **संकरित** – सौर फोटोवोल्टिक विन्यास के साथ–साथ अन्य साधन जैसे पवन, डीजल जनरेटर भी शक्ति उत्पादन के लिए काम में आते हैं।

(स) ग्रिड–योजी तंत्र – इस प्रकार के तंत्रों में सौर फोटोवोल्टिक तंत्र का निर्गम ग्रिड से जुड़ा होता है एवं संग्रह बैटरी नहीं होती। इमारतों के लिए फोटोवोल्टिक तंत्र एकल या ग्रिड–योजी होते है एकल तंत्र में इमारत का प्रसाधन ग्रिड से कोई संयोजन नहीं होता तथा प्रायः सेल के कोश पर रात्रि में एवं सीमित सूर्य की अवधि में मुक्त होती है। भारत में संकर तंत्र का प्रयोग सौर पैनलों एवं सेल कोश की अत्यधिक कीमत से बचने के लिए किया जाता है। उदाहरणतः एक 10 kWp सौर फोटोवोल्टिक एवं बायोमास गैसीफायर संकर शक्ति तंत्र टेरी (ऊर्जा एवं स्रोत संस्थान) में दस PL-11 एकल शाम से सवेरे तक गलियों मे प्रकाशयुक्त रिहायशी प्रशिक्षण सुविधाएं देने के लिए लगाया गया है। एक ग्रिड संयोजी एवं प्रसाधन–अन्योन्य तंत्र में इमारत फोटोवोल्टिक विन्यास एवं प्रसाधन ग्रिड दोनों से विद्युत प्राप्त करती है। कुछ फोटोवोल्टिक तंत्र एकल एवं प्रसाधन–अन्योन्य दोनों विधाओं में संचालित किए जा सकते हैं। लाभकारी होने और निरन्तर मूल्य में कमी के वादे के कारण फोटोवोल्टिक शक्ति युक्त इमारतों का विभव ऊपर उठता जा रहा है। एक सर्वोत्तम उदाहरण के परिदृश्य में, ऑरथर डी लिटिल, इंक ने कहा है कि अगले 10 वर्षों में इमारतों पर फोटोवोल्टिक का वार्षिक बाजार 0.5 से 2.5 बिलियन डॉलर बढ़ सकता है। जापान एवं यूरोप के बाजार जो पहले से ही विकासशील है, भी समान विभव रखते हैं।
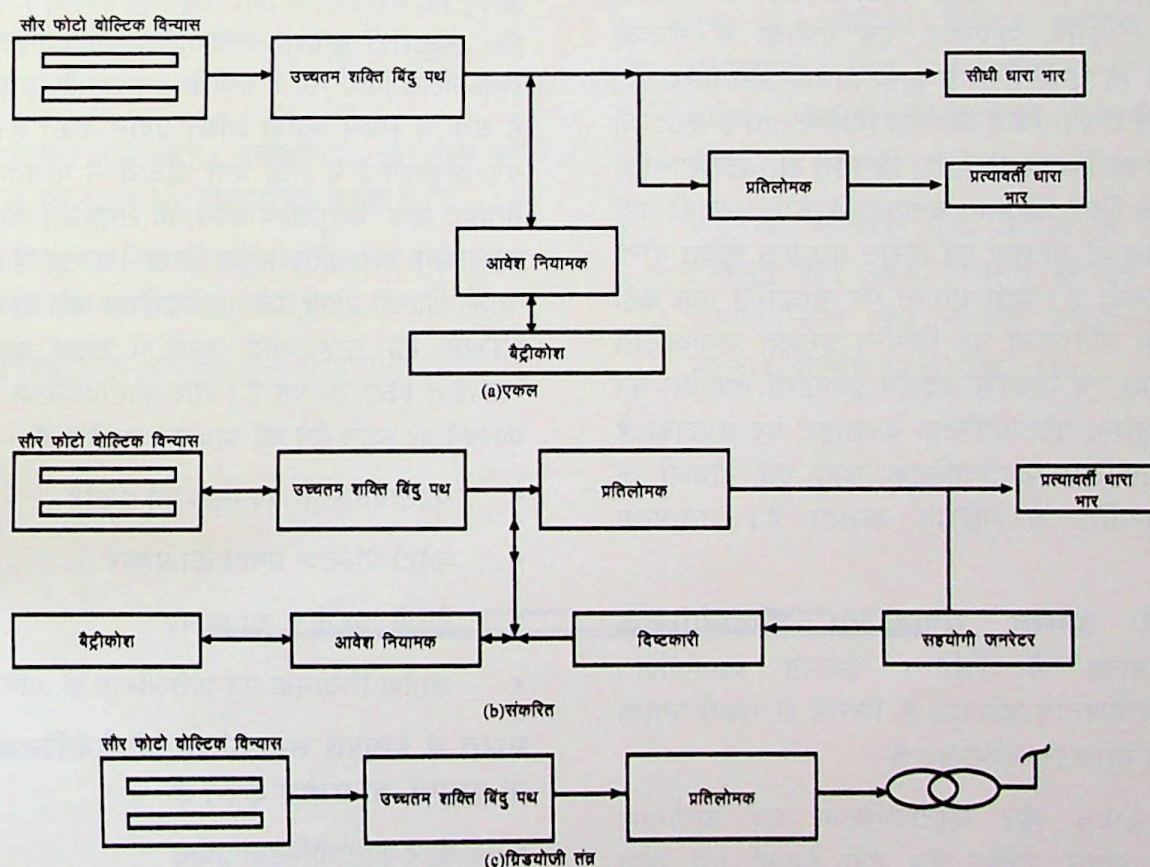
(आकृति –4) सौर फोटोवोल्टिक तंत्र की संचालन विधाएं

4.0 फोटोवोल्टिक एक चमकीले पदार्थ के समान

सौर फोटोवोल्टिक पैनल चूंकि व्यावसायिक रूप से उपलब्ध होते थे अतः इमारतों पर लगाए जाने लगे। प्रारम्भ में सौर फोटोवोल्टिक पैनल से आच्छादित इमारतें प्रत्येक के लिए उपयुक्त मानी जाती थी। पारम्परिक फोटोवोल्टिक प्रमाप एल्यूमीनियम फ्रेम के साथ बनते थे। ये प्रमाप इमारतों पर विद्युत भार कम करने के लिए स्थापित रैक के समूहन के लिए अभिरूपित थे। प्रस्थापना प्रायः इमारतों के निर्माण के पश्च चरण में की जाती थी। प्रमापों की प्रस्थापना से तात्पर्य दक्षिणमुखी छत में छेद कर महंगे–महंगे रैक पर उनको स्थापित करना है। छत की मरम्मत की स्थिति में फोटोवोल्टिक स्थापना को हटाना पड़ता था। हाल के वर्षों में सौर फोटोवोल्टिक प्रमापों की मांग इमारत के तत्व की भांति पहचानी गई है। प्रमाप नकली खिड़की या आकाशीय प्रकाश या वास्तविक छत की सामग्री का हिस्सा बन सकते हैं। इस अनुप्रयोग को इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक के नाम से जाना जाता है। यूरोप, यू.एस.ए. एवं एशिया में सैकड़ों परियोजनाएं पूर्ण हो चुकी हैं तथा अन्य अनेक प्रक्रियारत हैं। इमारत समाकलन से तात्पर्य है कि सौर विशिष्टताएं इमारत की मौसमरोधी त्वचा का हिस्सा होती हैं। विन्यास छत का सामान्य कार्य करती है। ये सिर्फ विद्यमान बनावट के ऊपर रखे ही नहीं होते, अपितु ये छत के आवरण एवं विद्युत प्रदायक युक्ति दोनों ही तरह कार्य करती है। इसी धारणा पर आधारित एक बड़ी संख्या में वैश्विक प्रतिष्ठानों पर विभिन्न इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक शोध एवं विकास प्रदर्शन इकाइयाँ स्थापित की गई हैं। इनकी सूचना फोटोवोल्टिक वेबसाइट पर उपलब्ध है जो इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक छतों एवं दीवारों के निर्माण एवं निष्पत्ति से परिचय कराता है। उदाहरण निम्नलिखित है–

5.0 भारत में इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक परियोजनाएं भारत में विभिन्न इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक परियोजनाएं अधिकृत हैं, जिनमें से सबसे ज्यादा अंकित किये जाने योग्य निम्नलिखित है–

- एक 10 kWp सौर फोटोवोल्टिक एवं बायोमास गैसीफायर संकर शक्ति तंत्र टेरी (ऊर्जा एवं स्रोत संस्थान), दिल्ली में रिहायशी प्रशिक्षण सुविधाओं हेतु एवं दस प्रारूप PL-11 एकल शाम से सवेरे गलियों में प्रकाश के लिए लगाए गए हैं।
- ममता मशीनरी, हैदराबाद में इमारत समाकलित सौर फोटोवोल्टिक तंत्र संयंत्र
- मैत्रीमन्दिर, ओरोविले, पांडिचेरी में 36.3 kWp संकर
- फोटोवोल्टिक शक्ति संयंत्र फोटोवोल्टिक सेल प्रारूप बरामदों में प्रभाविता के लिए रुचिकर प्रभाव पैदा कर सकते हैं, जहाँ आप पास से गुजरते हैं तो प्रारूपों में गति अनुभव कर सकते हैं। खिड़की के समाकलित फोटोवोल्टिक प्रारूप, पारम्परिक होने के कारण महान अभिकल्प स्वतंत्रता प्रदान करते है। सौर फोटोवोल्टिक धातु छतों में सौर विशिष्टताएं, इमारतों की मौसम रोधी छत या दीवार का हिस्सा होती हैं। इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक तंत्रों के क्षेत्र में है शोध एवं विकास क्रियाएं तीन मुख्य क्षेत्रों के संघटक उत्पादों के विकास पर संकेन्द्रित हैं :

(क) समाकलित छत प्रमाप

(ख) छत की टाइल एवं तख्ते

(ग) उर्ध्व फलक एवं ढ़लवां चमक के लिए समाकलित प्रमाप

बहुत से इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक तंत्र छतों पर समाकलित किये गए हैं क्योंकि इनका सौर प्रदर्शन सबसे अधिक है अतः ये सबसे ज्यादा शक्ति प्रदान करते हैं। हाल ही में किए गए अनुसंधानों में उर्ध्व पर्दा दीवारों में फलक पदार्थों जैसे कि ग्रेनाइट और वास्तुशिल्प काँच को समालित फोटोवोल्टिक प्रमापों का प्रयोग कर प्रतिस्थापित किया जा रहा है। नये अर्धपारगम्य पतली झिल्ली प्रमाप, जो फोटोवोल्टिक को आकाशीय बिजली या खिड़की की तरह कार्य करने में सक्षम बना सकती है, भी विकसित किए जा रहे हैं। सौर फोटोवोल्टिक धातु छत में जिन कारकों पर ध्यान देने की आवश्यकता है वे हैं –

- फोटोवोल्टिक तकनीक की प्रकृति
- फोटोवोल्टिक प्रमाप का प्रकार
- बैटरी तकनीक का प्रकार
- आवेश नियामक एवं प्रतिलोमक के अभिलक्षण

भारत में इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक तंत्र तीन तरह के प्रमापों का प्रयोग करते हैं–

- सौर फोटोवोल्टिक प्रमाप
- सौर फोटोवोल्टिक धातु छत प्रमाप
- नमूने के प्रमाप

नमूने के प्रमाप की प्रमुख विशेषता है कि इसमें सौर सेल नहीं होता। सेल की बजाय, पृष्ठ भाग पर सौर सेल की प्रतिछाया स्क्रीन प्रिन्ट होती है ताकि वे वास्तविक सौर सेल जैसे दिखाई देते हैं। अन्य प्रयोग में आने वाले सभी पदार्थ

समान रहते हैं। समाकलन का जो भी तरीका हो, इमारत समाकलित फोटोवोल्टिक तंत्र प्रायः ग्रिड से जुड़े होते हैं। इससे तात्पर्य है कि सौर शक्ति, इमारत में विद्यमान मुख्य विद्युत आपूर्ति को पोषित करती है।

6.0 पर्यावरणीय पहलू

सौर फोटोवोल्टिक तंत्र सामान्यतया एवं इमारत के फोटोवोल्टिक तंत्र विशिष्टतया से होने वाले पर्यावरणीय लाभ एवं हानि प्रस्तावित हैं–

लाभ

- इसका कटिंग ऐज अभिकल्प एवं तकनीकी पारम्परिक इमारत के सामान की कीमत को कम करता है।
- संचालन मूलतः शोर मुक्त होता है।
- परिवहन योग्य ईंधन की आवश्यकता नहीं होती।
- कोई गतिवान हिस्सा समाहित नहीं होता। तंत्र को इसके 20 वर्ष के जीवनकाल में न्यूनतम मरम्मत की आवश्यकता होती है।
- कोई वायु प्रदूषण नहीं होता। उदाहरणतः सौर सेल का 1 kWp CO_2 का 1000 Kg विस्थापित करता है।
- उपयोग के बिन्दु पर विकेन्द्रीयकृत उत्पादन। इस प्रकार संवहन एवं वितरण मूल्य कम होता है।
- प्रमापीय अभिकल्प एवं अधिकृत रूप से संभावित इस प्रकार तीव्र पूँजी निवेश से बचाव होता है।

हानि

- संभरण हेतु सीसा अम्ल बैटरियों का प्रयोग चिन्तनीय बिन्दु है।
- फोटोवोल्टिक सेल में प्रयुक्त कैडमियम जैसी भारी धातुओं का पुनर्चक्रण भी एक गम्भीर पयार्वरणीय रूप से विचारणीय बिन्दु है।
- खराब सेल एवं बैटरी के भाग से कैडमियम, पारा एवं सीसा भी पर्यावरण में उत्सर्जित हो सकते हैं।

संदर्भ

1. विन्टर, सी जे., सिज़मन, एल. एल., ऐन्ड वान्ट–हल, 1991, सोलर पावर प्लान्ट्स, श्रीन्ज़र–वरलॉग पब्लिशर्स।
2. एन. डी. कौशिक, क्षितिज कौशिक, 2005, एनर्जी इकोलोजी ऐन्ड एन्वयारमेन्ट–ए टेक्नोलोजीकल एप्रोच; कैपिटल पब्लिशिंग कम्पनी, न्यू दिल्ली, चेप्टर–15 (पॉल्यूशन फ्री पावर जेनरेशन)।
3. एन. डी. कौशिक ऐन्ड अनिल के राय, 2007, एन इन्वेस्टीगेशन ऑफ मिसमैच लॉसेस इन सोलर फोटोवोल्टिक सेल नेटवर्क एनर्जी–एन इंटरनेशनल जरनल, वोल्यूम 32 (5) 755–759।

फैरोसीमेंट तकनीक से फिक्सड डोम बायोगैस संयंत्र निर्माण

डॉ. प्रेमचन्द्र शर्मा
पूर्व अध्यक्ष, मैटीरियल साईस, स्ट्रक्चरल इंजी. रिसर्च सेंटर
चीफ एडीटर, न्यू बिल्डिंग मैटी. एंड कंस्ट्रक्शन वर्ल्ड
चेयरमैन, इंडियन कंक्रीट इंस्टीट्यूट वेस्टर्न यू.पी. सेन्टर
गाजियाबाद

1.0 पृष्ठभूमि

गोबर गैस या जैव गैस खाना पकाने तथा प्रकाश करने के लिए एक सुगम तथा स्वच्छ साधन है। खाना पकाने के लिए जंगल काटने के कारण होने वाली पर्यावरण क्षति को कम करने में इसका योगदान हो सकता है। इसका महत्व समझते हुए भारत सरकार ने 70, 80 तथा 90 के दशकों में काफी प्रयास किया तथा उसके सुखद परिणाम भी मिले। गोबर, जो पशुधन से प्राप्त एक प्राकृतिक स्त्रोत है तथा मानव मल के उपयोग से चलने वाले अनेक प्रकार के बायोगैस संयंत्र अनेक आकारों में स्थापित किए गए। इनका उपयोग ग्रामीण क्षेत्रों में जिन्दगी जीने की शैली में सरलता (विशेष रूप से महिलाओं के लिए) लाने के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। संयंत्रों के अनेक मॉडल स्थापित किये गये जिनमें निम्नलिखित 3 मॉडल ज्यादा प्रचलित हुए।

- के.वी. आई.सी. (KVIC) मॉडल
- फिक्सड डोम प्लांट (जनता मॉडल)
- फिक्सड डोम प्लांट (दीन बंधु मॉडल)

सबसे ज्यादा संयंत्र के.वी.आई.सी. मॉडल के लगे चूंकि एक बड़े संगठन ने पूरे देश में अपने नेटवर्क का उपयोग कर इस प्रयास को ग्रामों में प्रचारित किया तथा निर्माण कराया। इस मॉडल का कमजोर पक्ष इसमें तैरने वाली स्टील की बायोगैस होल्डर थी जिसे बाद में फाइबर प्लास्टिक तथा फैरोसीमेंट (एस.ई.आर.सी., रुडकी) द्वारा प्रतिस्थापित करने का प्रयास किया गया जो काफी हद तक सफल भी रहा। फिक्सड डोम प्लांट का निर्माण भी भारी संख्या में हुआ। इसके स्थापित करने में ईटों तथा सीमेंट मसाले से निर्मित दीवारें तथा डोम का निर्माण किया जाता है जिसे अंदर तथा बाहर से पलस्तर किया जाता है। असंख्य जोड़ वाली निर्माण प्रक्रिया में कभी–कभी लीकेज की समस्या सामने आती थी जिसको रिप्लास्टर करके या प्रेशर गाउटिग (इपोक्सी/सीमेन्ट स्लरी) द्वारा ठीक किया जाता था। इस समस्या के अलावा अति दक्ष मिस्त्रियों की सहायता से ही डोम की सही आकृति एवं आकार प्राप्त हो सकता है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में, जहाँ जैव गैस संयत्रों का निर्माण होना था, दक्ष कारीगरों का मिलना कठिन रहता था।

70 के दशक में भारत सरकार के साइंस एवं टेक्नोलोजी विभाग (डी.एस.टी.) ने रुड़की स्थित स्ट्रक्चरल इंजी.रिसर्च सेंटर (सी.एस.आई.आर. की एक राष्ट्रीय प्रयोगशाला) को बायोगैस संयंत्रों (के.वी.आई.सी. मॉडल) के दो प्रधान अवयवों (1) डाइजेस्टर तथा (2) बायोगैस होल्डर को फैरोसीमेंट का उपयोग करके विकसित करने का जिम्मा सौंपा। इस प्रोजेक्ट के अंतर्गत 1 घनमीटर से 20 घनमीटर गैस उत्पादन क्षमता के बायोगैस डाइजेस्टर तथा गैस होल्डर विकसित किए गए। इन पर एस.ई.आर.सी. द्वारा प्रयोगशाला एवं फील्ड में 3 वर्ष तक परीक्षण करने के बाद तकनीक हस्तांतरित कर दी गई। प्रयोग के तौर पर बनाए गए बंगाल इंजी. ग्रुप रुड़की के मैस में लगाया गया 6 घन मीटर वाला प्लांट 10 वर्ष से भी ज्यादा कार्यरत रहा तथा बाद में गोबर की उपलब्धता कम होने के कारण वहाँ से स्थानांतरित किया गया। गैस थामने की क्षमता प्रदर्शित करने के पश्चात् फैरोसीमेंट लाइनिंग का उपयोग जनता बायोगैस प्लांट की दीवार तथा डोम से लीकेज रोकने के लिए प्रयोगात्मक रूप से किया गया तथा इसमें भारी सफलता मिली।

1987 से लगातार, दिल्ली स्थित एक स्वयं सेवी संस्था कोरट (कान्सोर्टियम आफ रूरल टैक्नोलोजी) के लिए कपार्ट (council for advancement of peoples action and rural technology) नई दिल्ली द्वारा वित्तपोषित प्रोजेक्ट के लिए एस.ई.आर.सी. (जो तब तक गाजियाबाद शिफ्ट हो गया था) फैरोसीमेंट तथा वर्षा जल संग्रहण तकनीक पर कुमाऊँ तथा गढ़वाल (उत्तरांचल) तथा हिमाचल प्रदेश के पहाड़ों से स्वयंसेवकों तथा इंजीनियरों के लिये ट्रेनिंग प्रोग्राम चला रहा था। इसी बीच गैर पारम्परिक ऊर्जा स्रोत विभाग (DNES) भारत सरकार की ओर से एस.ई.आर.सी. (SERC) को राष्ट्रीय स्तर पर बायोगैस संयंत्रों के निर्माण में इंजीनियर्स तथा टेक्नीशियन्स को दक्ष बनाने के कार्यक्रम चलाए गए जिसमें

सभी प्रकार के संयंत्र निर्माणों को शामिल किया गया। कोरट तथा DNES के प्रोग्रामों के दौरान (1987–89) में जनता तथा दीन बंधु फिक्स्ड डोम प्लांटस की लाइनिंग के साथ पूरी तरह से फैरोसीमेंट द्वारा इन्हें विकसित करने का निश्चय हुआ।

2.0 फैरोसीमेंट व उसकी उपयोगिता

फैरोसीमेंट सीमेंट आधारित एक ऐसी कम्पोजिट निर्माण प्रक्रिया या सामग्री है जिसमें सीमेंट तथा विशेष श्रेणी के रेत के मसाले को लोहे के पतले तारों से बुनी जालियों को पूरी मोटाई तथा क्षेत्रफल में समान रूप से फैलाकर प्रबलन कर पतले अवयवों में ढाला जाता है। इसकी दरार न पड़ने की विशेषता, अत्यधिक तनन सामर्थ्य, आसानी से ढलाई हो सकना, स्थानीय कारीगरों को आसानी से दक्ष किया जा सकना, उच्च इम्पैक्ट तथा स्पंदन (vibration) झेलने की ताकत, अच्छी फिनिशिंग, आसानी से मिल सकने वाली योग्य सामग्रियां तथा कम भार की संरचनाएं इसे विकासशील देशों के लिए आदर्श निर्माण सामग्री बनाती है। एस.ई.आर.सी. रुड़की (1965 से 1986 तक) तथा गाजियाबाद (1986–2000) के वैज्ञानिकों ने इस तकनीक तथा सामग्री पर मूल अनुसंधान तथा एप्लाइड अनुसंधान दोनों ही पक्षों पर कार्य करके देश की अनेक समस्याओं को सुलझाने के लिए अनेक उपयोगी वस्तुयें विकसित की जैसे अनाज रखने के कुठले, सेप्टिक टैंक (50000 लीटर तक), छतें अनेक प्रकार की, दीवारों के अवयव, पूरा प्रीकास्ट घर, मेनहोल ढक्कन, नालियां, दरवाजों के पल्ले तथा चौखटें, जलरोधी तथा जैकटिंग की विधियां। राष्ट्रीय अनुसंधान व विकास कार्पोरेशन (NRDC) के माध्यम से इनमें से अनेक तकनीक वाणिज्यिक रूप से उत्पादन के लिए उद्योगों द्वारा बनायी जा रही हैं।

3.0 प्रचलित दीनबन्धु बायोगैस प्लांट तथा अभिनव फेरो सीमेंट प्लांट का तुलनात्मक अध्ययन

कोरट को दीनबंधु मॉडल बनाने की महारत (ईंट तथा मसाले की चिनाई करके) हासिल थी। अतः पहले इसी मॉडल का 2 तथा 3 घन मीटर गैस उत्पादन क्षमता वाले संयंत्र विकसित करके उन्हें फील्ड में बनाने का कार्य शुरु किया गया। इन संयंत्रों की आकृति एवं माप मूल मैसनरी मॉडल जैसी ही इस्तेमाल की गई जिससे उसकी कार्यक्षमता पर असर न पड़े तथा कीमत का आंकलन व तुलना करने के लिए आंकड़े उपलब्ध रहें। चित्र 1 में दीन बन्धु मॉडल दर्शाया गया है। इसके नीचे का आधार कंक्रीट तथा ऊपर का आधार ईंट चिनाई का बनाया जाता है तथा अंदर की ओर 12 मि.मी. मोटा सीमेंट एवं रेत के मसाले का पलस्तर किया जाता है। शक्ल तथा आकार
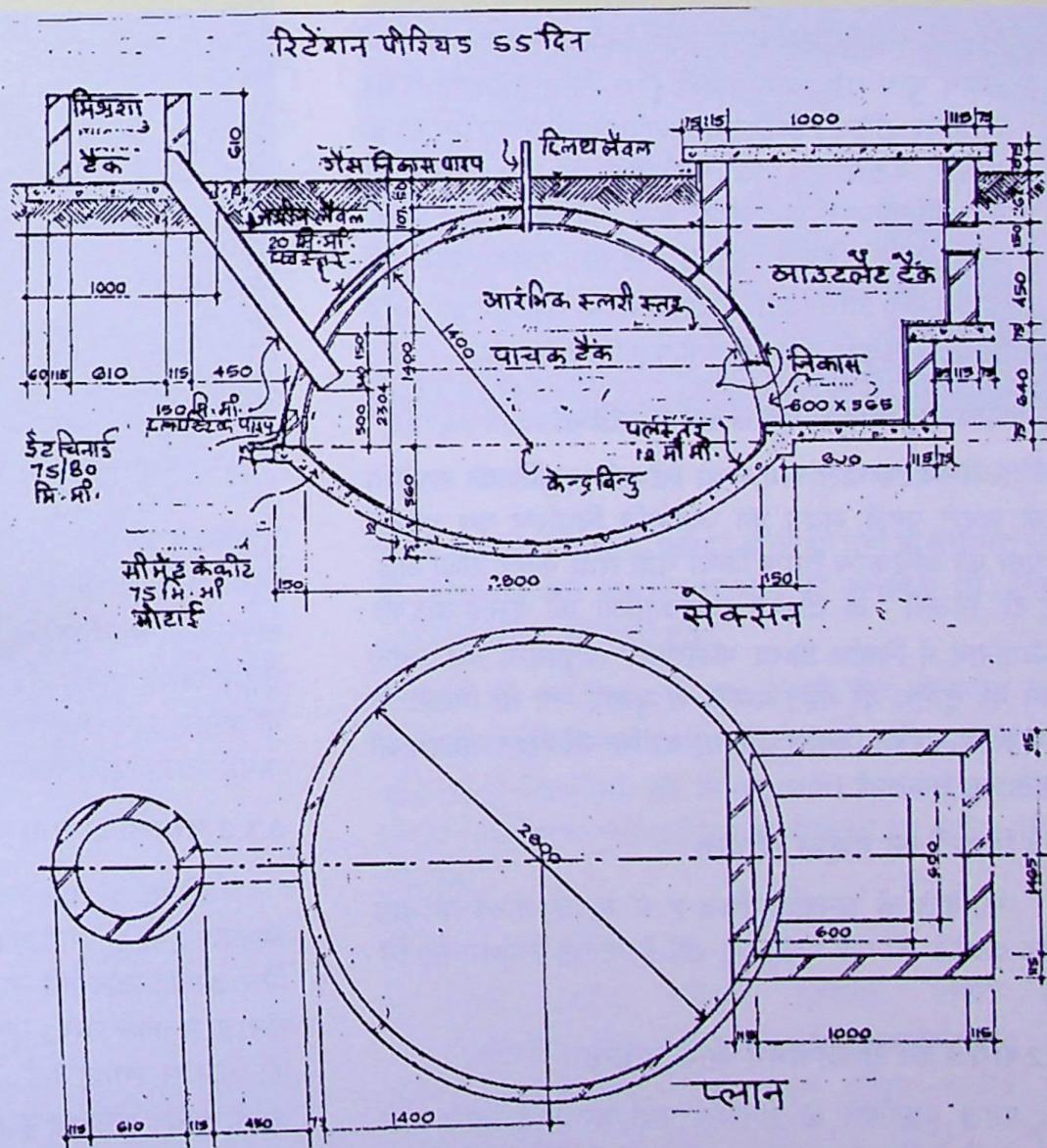
चित्र: 1 दीनबन्धु बायो-गैस संयत्र क्षमता 2.0 घन मीटर

दोनों को वही रखते हुए इस मॉडल की कास्टिंग फैरोसीमेंट में की गई जिसका उद्देश्य थाः

- ईट चिनाई निर्माण का ऐसा विकल्प खोजना जो कि मजबूत, भरोसेमंद तथा लीकप्रूफ बायोगैस प्लांट निर्माण में इस्तेमाल हो सके।
- ऐसी निर्माण विधि या सामग्री से उपयुक्त धारिता के गैस प्लांट बनाकर उन पर परीक्षण द्वारा डिजाइन व नये पदार्थ की मजबूती सिद्ध करना।
- ईट निर्माण जब पहाड़ों में व्यवहार में लाया जाता है तो सामग्री के यातायात खर्च के कारण गैस प्लांट की लागत डेढ़ गुनी हो जाती है। फैरोसीमेंट निर्माण में ये खर्च काफी कम हो जाती है अतः कीमत केवल 10 प्रतिशत तक बढ़ती है। इसी दावे को सिद्ध करने के लिए प्लांट निर्माण में आई कीमत का खर्च आंकलन करने के लिए स्थान चुना गया ग्राम पलडी (अब जिला बागपत में है) जहाँ पर इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नोलोजी दिल्ली के ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र की टीम पहले से ही एक परियोजना पर कार्य कर रही थी। इस प्रकार आई.आई.टी.दिल्ली, एस.ई.आर.सी. गाजियाबाद एवं कोरट की सम्मिलित परियोजना के रूप में इसे शुरु किया गया तथा वर्ष 1991 में पूरा किया गया।

3.1 दीन बंधु गैस संयंत्र–निर्माण प्रक्रिया

3 घनमीटर वाले संयंत्र को स्टैंडर्ड आकृति का उपयोग करके सबसे पहले संयंत्र की ज्यामिति निर्धारण कर इसकी संरचना का अभिकल्प तैयार किया गया तथा कोरट तथा आई.आई.टी. दिल्ली के दो–दो कार्यकर्ताओं को एस.ई.आर.सी. गाजियाबाद में निर्माण क्रिया, फैरोसीमेंट अनुप्रयोग तथा जाल बनाने पर ट्रेनिंग दी गई। पलडी से बुलाए गए दो मिस्त्री भी इसमें शामिल रहे। निर्माण प्रक्रिया को निम्नलिखित अवस्थाओं में बांटा जा सकता है।

3.1.1 मिट्टी का गड्ढा खोदना

ज्यामिति के अनुसार–चित्र 2 में खुदाई करने के बाद सीमेंट कंक्रीट की पर्त डाली जा रही है मोटाई लगभग 50 मि.मी.।

3.1.2 संयंत्र का रीन्फोर्समैंट जाल बनाना

पहले ज्यामिति के अनुसार फर्श पर मोड़े जाने वाले प्रबलन सरियों के स्कैच बनाए गए फिर उन्हीं के अनुसार सरिये मोड़े गए तथा स्कैलटल जाल बनाया गया। इसके लिए 8 मि.मी. तथा 6 मि.मी. का सरिया इस्तेमाल किया गया। सरियों को जोड़ कर पूरा लैप तथा ठीक प्रकार से बंधाई की गई।
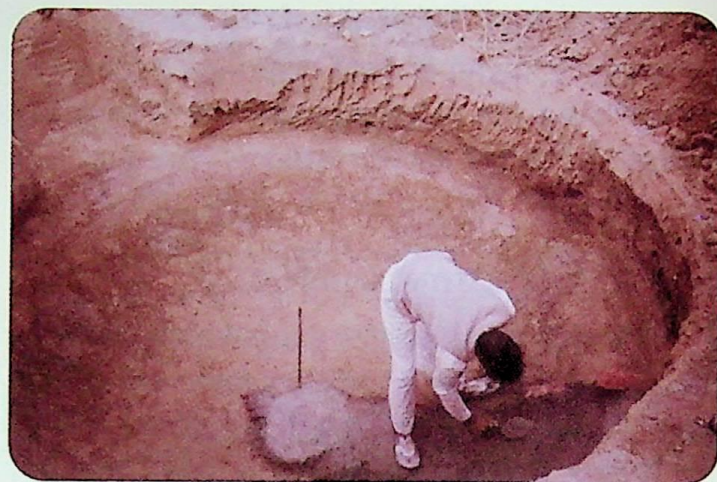
चित्र–2 दीनबन्धु गैस संयंत्र की खुदाई एवं कंक्रीट लेयर

चित्र–3 स्कैलटल केज तथा जाली लगा हुआ संयंत्र का ढांचा

तत्पश्चात 20 गेज जस्ती लोहे के तार की 12 मि.मी. सुराख (बुनी हुई) जाली की तीन तह (दो ऊपर तथा एक अंदर) लगाकर उन्हें स्कैलटल केज के साथ थोड़ी–थोड़ी दूरी पर बाँध देते हैं जस्ती तार द्वारा (चित्र 3) काम करने के लिए डाइजेस्टर के अन्दर जाने तथा बाहर निकलने के लिए स्लरी निकास की जगह जाली खुली रखते हैं।

3.1.3 मसाला लगाना या ढलाई

सीमेंट 1 भाग + सिल्ट फ्री (3% तक) रेत (मध्यम आकार) 2–2.5 भाग को मिलाकर सूखा मसाला मिलाया गया फिर इसका जलरोधी–हल्का प्लास्टिसाइजर मिश्रित पानी से मसाला बनाकर उसे 3 परतों में लगाया गया। पहली परत बाहर की ओर से लगाई गई (चित्र–4) तथा अंदर की ओर पतली जस्ती चादर लगाकर इस पर्त को सहारा दिया गया। दूसरी परत 12 घंटे बाद सीमेंट+ एस.बी.आर.+ पानी से बने घोल (बॉड कोट) लगाने के बाद लगाई गई। फिनिशिंग साथ–साथ ही की गई। जो गैस निकास पाइप आदि लगाने थे उनमें एंकर पिन वैल्ड करके पहले से ही जाल में बाँध दिया गया था।
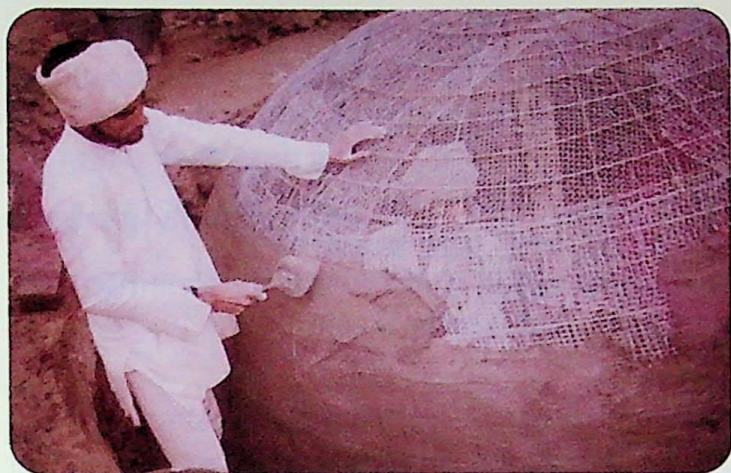
चित्र–4 केज पर बाहर की ओर से मसाले की पहली पर्त लगाई जा रही है

गैस संयंत्र का मुख्य डोम (digester) बन जाने के बाद फैरोसीमेंट से ही बाहरी निकास टैंक, व इसका ढक्कन तथा मिश्रण टैंक बनाए गए (चित्र–6 एवं 7)। पूरे संयंत्र का निर्माण 4 दिनों मे हो गया जबकि ईटों से बनाने में इसमें 7 दिन का समय लगता है। निर्मित संयंत्र के चारों तरफ मिट्टी का भराव तथा ऊपर की मिट्टी 7 वें दिन डाली गई तथा तराई 10 दिन तक की गई। इसके साथ पास में ही बनाये गये 3 शौचालयों से आने वाला मानव मल तथा गोबर का मिश्रित फीड इस्तेमाल किया
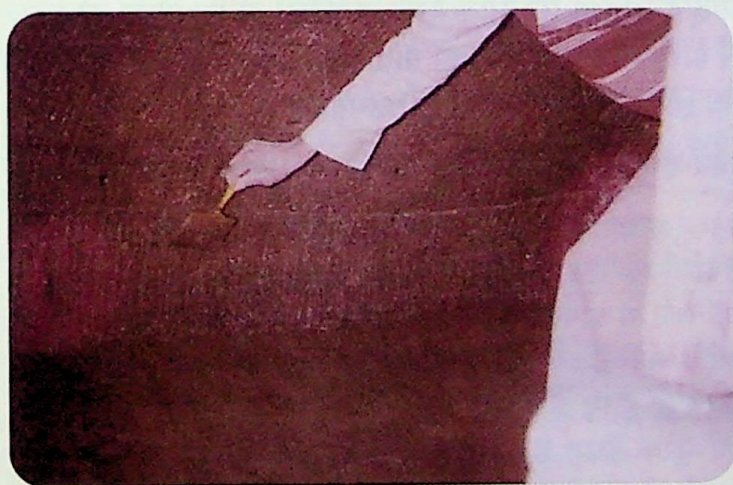
चित्र–5 अन्दर की ओर से मसाले की परत लगाई जा रही है

गया। संयंत्र का परीक्षण तथा मॉनीटरिंग आई.आई.टी. दिल्ली तथा एस.ई.आर.सी. की टीम द्वारा 1991 से 1994 तक किया गया तथा प्लांट ने पूरी क्षमता तक उत्पादन किया।

3.2 कीमत आकलन

1991 में कोरट द्वारा बनाए गए दीन बंधु गैस संयंत्र की क्षेत्रीय स्थिति में लागत 7000 से 7500/रु. तक आ रही थी। पलडी संयंत्र की लागत केवल 6500/–रु. आई, अर्थात् लगभग 10% कम। साथ साथ ही पहाड़ों में ईट वाले प्लांट

चित्र–6 बाहरी निकास कक्ष
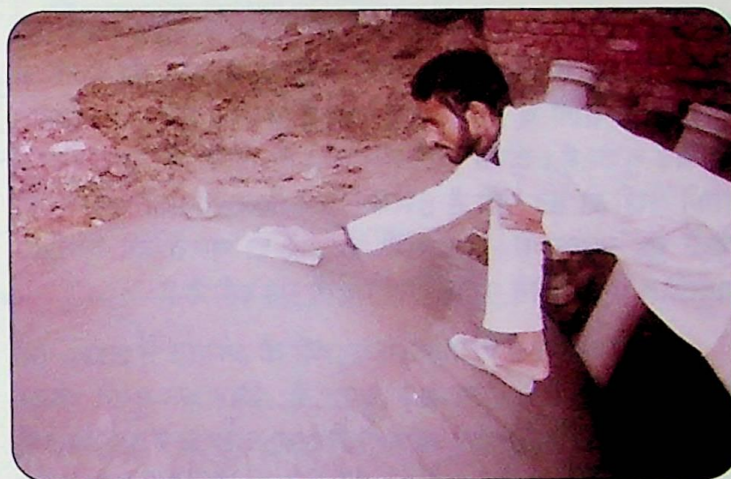
चित्र–7 गैस निकास पाइप तथा बाहरी सतह की फिनिशिंग

की लागत 15% से 20% ज्यादा आती थी वहाँ फैरोसीमेंट संयंत्र की लागत लगभग 5% ज्यादा आने की संभावना थी। निर्माण अवधि में 3 दिन की बचत हुई।

आभार– डॉ. रण सिंह आर्य तथा उनकी टीम, प्रो.संतोष सत्या, प्रो.पद्मा वासुदेवन तथा श्री वाई.के.शर्मा, सचिव कोरट तथा सभी पलडी निवासियों का आभार व्यक्त करना मेरा कर्तव्य है जिनके सहयोग से एक अभिनव टेक्नोलोजी का क्षेत्रीय परीक्षण पूरा हुआ।

संदर्भ

1. रिपोर्ट ऑफ नेशनल एक्सपर्ट कमेटी ऑन टैक्नोलोजीकल ऑप्शन्स फॉर इम्पलीमेंटेशन ऑफ रूरल सेनीटेशन प्रोग्राम इन इंडिया–राजीव गाँधी नेशनल ड्रिंकिंग वाटर मिशन भारत सरकार–दिसम्बर,1996; पृष्ठ 51–52, बायोगैस एनैक्सर VI।

प्रथम व द्वितीय पीढ़ी जैव ईंधन – एक परिदृश्य

ललित प्रसाद, प्रभात कुमार स्वाई, शोध छात्र
प्रो. एल.एम. दास, ऊर्जा अध्ययन केन्द्र
प्रो. एस.एन. नाईक, ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

प्रस्तावना

भारत की उभरती हुई अर्थव्यवस्था व बढ़ती हुई जनसंख्या ने आज भारत को विश्व में पेट्रोलियम पदार्थों के उपयोग में पांचवें स्थान पर ला दिया है। अन्य देशों की तुलना में भारत में पेट्रोलियम पदार्थों की मांग दिन पर दिन बढ़ती जा रही है। हमारे सीमित घरेलू कच्चे तेलों के भण्डार की वजह से आज कच्चे तेलों व पेट्रोलियम पदार्थों का आयात 72 प्रतिशत तक बढ़ चुका है। ऊर्जा की खपत व मांग आज परिवहन क्षेत्र में काफी तेजी से बढ़ रही है इसकी मुख्य वजह निजी वाहनों की बढ़ती हुई संख्या है। इन सभी कारणों से भारत की निर्भरता आयातित पेट्रोलियम पदार्थों पर बढ़ती जा रही है।

भारत का खर्च पेट्रोलियम पदार्थों के आयात में 2004–05 की तुलना में तीन गुना बढ़ चुका है, जिसकी मुख्य वजह वैश्विक बाजार में तेल की कीमतों में आए उछाल व इन पदार्थों का बढ़ता उपयोग है। यह भारत सरकार के लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है।

विश्व में घटते हुए पेट्रोलियम पदार्थों के स्रोत व बढ़ती हुई मांग के कारण आज पूरा विश्व अपरम्परागत स्रोत की खोज में लगा हुआ है, भारत में बढ़ती हुए परिवहन क्रियाकलापों की वजह से आज कार्बन का उत्सर्जन हर साल 3.2 प्रतिशत की दर से बढ़ रहा है, जो कि इसे पांच मुख्य कार्बन उत्सर्जन देशों में खड़ा करता है। भारत की परिवहन नीतियों में भारत स्टेज III [समकक्ष यूरो III] व भारत स्टेज IV [समकक्ष यूरो IV] को पूरे भारत में 1 अप्रैल, 2010 से लागू कर दिया गया है इनको प्रभावी तरीके से अमल में लाने के लिए शुद्ध गुणवत्ता वाले ईंधन की जरूरत है। अतः जैव–ईंधन की आवश्यकता आज की जरूरत है। आज यह वैज्ञानिक रूप से सिद्ध हो चुका है कि वैश्विक तापमान (ग्लोबल वार्मिग) के बढ़ने की वजह फॉसिल ईंधन का अन्धाधुन्ध उपयोग व मानव निर्मित ग्रीन हाउस गैसों का उत्सर्जन है। इनमें से N_2O, CO_2 और CH_4 मुख्य ग्रीन हाउस गैसे हैं। ग्रीन हाउस गैसों का मानव समाज पर पड़ने वाले असर के बारे में सबसे पहले यूनाईटड नेशन्स फ्रेमवर्क कन्वेंशन ऑन क्लाइमेट चेन्ज (1992) में चर्चा की गई। जिसके बाद क्योटो प्रोटोकॉल (1997) में इनके विसर्जन में होने वाले प्रभावों व इससे बचने व कम करने के उपायों के बारे में चर्चा की गई। 2002 में यूरोपियन यूनियन ने क्योटो प्रोटोकॉल में परिवर्तन कर वैज्ञानिक तरीके से ग्रीन हाउस गैसों को कम करने पर जोर दिया। परन्तु वर्तमान में इन पर अंकुश लगाना संभव नहीं हो पाया है। इसकी मुख्य वजह परिवहन क्षेत्रों में इंधन की बढ़ती खपत है।

विश्व में आज ऊर्जा का मुख्य स्रोत पेट्रोलियम पदार्थ है, जिसकी वर्तमान मांग 12 मिलियन टन प्रतिदिन है [84 मिलियन बैरल प्रतिदिन] यदि पेट्रोलियम पदार्थों की खपत की यही रफ्तार रही तो 2030 तक यह मांग 16 मिलियन टन प्रतिदिन [116 मिलियन बैरल प्रतिदिन] होगी। आज पूरे विश्व में परिवहन क्षेत्र में तेल की मांग 30% की दर से बढ़ रही है जो कि 2030 तक 60% बढ़ने की उम्मीद है।

जैव ईंधन– आत्मनिर्भरता व ऊर्जा सुरक्षा का स्रोत

संक्षेप में जैव ईंधन वे ईंधन हैं जो जैविक/कार्बनिक पदार्थों से तैयार किये जाते हैं, इनमें मुख्य रूप से कृषि व वानिकी से प्राप्त पेड़–पौधे व उनके अवशेष बीज, पत्तियाँ छाल आदि सम्मिलित हैं। बायोडीजल व बायोइथेनॉल आम जैव ईंधन है, इनमें से बायोडीजल डीजल का व बायोइथेनॉल पेट्रोल का पूरक ईंधन है। पिछले कुछ वर्षों से वैश्विक स्तर पर जैव ईंधनों के उपयोग में असाधारण रूप से वृद्धि हुई है।

यह तो निश्चित है कि इन अपरम्परागत ईंधनों के उपयोग से जहां आयातित फॉसिल ईंधन की निर्भरता कम होगी वहीं पर्यावरण के लिए घातक ग्रीन हाउस गैसों (GHG) के उत्सर्जन को कम करने के लक्ष्यों को प्राप्त करने में आसानी रहेगी। यद्यपि आज ये साबित हो चुका है कि बिना राजनीतिक और वैज्ञानिक इच्छाशक्ति व अथक प्रयासों से पैट्रोलियम पदार्थों पर बढ़ती हुई निर्भरता व ग्रीन हाउस गैसों के उत्सर्जन को कम नहीं किया जा सकता है।

आज हमारे समाज में जैव ईंधनों को अमल में लाने के लिए तीन मुख्य युक्तियों (Drivers) को प्रयोग में लाया जा रहा

हैं, जैसे बढ़ावा देना (Promotion), विकास व कार्यान्वयन (Implementation) सैद्धान्तिक तौर पर ये मुख्य रूप से ऊर्जा आत्मनिर्भरता, वातावरणीय बदलाव व ग्रामीण विकास की ओर एक मुख्य व प्रभावी कदम है।

जैव ईंधनों का वर्तमान स्वरूप

आज के बदलते हुए वातावरण में जैविक ऊर्जा ने नये अवसरों को जन्म दिया है। आज जैव ईंधनों के वातावरणीय लाभों से आम आदमी, किसान व सरकार ने इसे अपनाना स्वीकार कर लिया है। इसी संदर्भ में आज सरकार द्वारा ऊर्जा प्रदान करने वाले पौधों की खेती व रखरखाव को बढ़वा दिया जा रहा है। भारत सरकार ने 2003 में जैव–ईधन नीति बनाई व इसमें अखाद्य तेल प्रदान करने वाले पौधों का वृक्षारोपण बंजर
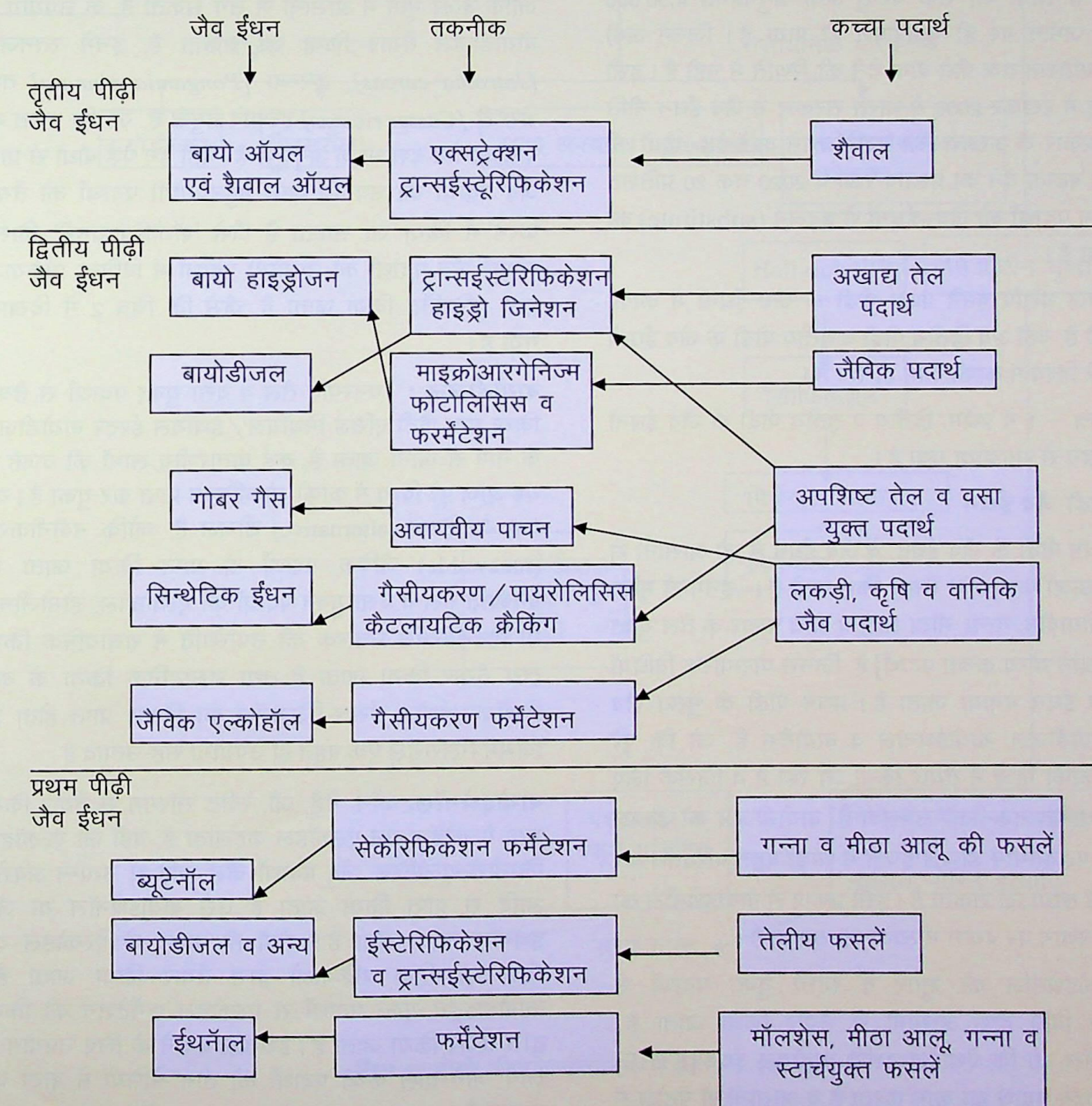
चित्रः 1 जैविक कच्चे पदार्थ से प्रथम, द्वितीय व तृतीय पीढ़ी के जैव ईंधन बनाने की विभिन्न विधियाँ

भूमि में कराने की रूपरेखा तैयार की जिसमें मुख्य रूप से रतनजोत *(Jatropha curcas)* को उगाने का फैसला लिया गया। चूंकि यह अति विपरीत वातावरणीय परिस्थितियों में भी आसानी से वृद्धि कर सकता है। भारत सरकार ने 2012 तक 11.2–13.4 लाख हेक्टेयर जमीन पर रतनजोत की खेती करने का एक बहुआयामी लक्ष्य रखा है, बायोडीजल–डीजल मिश्रण (20% वायोडीजल + 80 % डीजल) को परिवहन क्षेत्र में उपयोग में लाया जा सके परन्तु अभी अनुमानित 4,50,000 हेक्टेयर जमीन पर ही वृक्षारोपण हो पाया है। जिनमें अभी 60–70 प्रतिशत तक पौधे बीज देने की स्थिति में नहीं है। इसी को ध्यान में रखकर 2008 में भारत सरकार ने जैव ईंधन नीति में सभी प्रकार के अखाद्य तेल प्रदान करने वाले पेड़–पौधों की खेती को बढ़ावा देने का प्रस्ताव रखा व 2020 तक 20 प्रतिशत पेट्रोलियम पदार्थों को जैव–ईंधनों से बदलने (substitute) का लक्ष्य रखा है।

आज यद्यपि हमने प्रथम पीढ़ी के जैव ईंधनों में काफी प्रगति की है, वहीं अब द्वितीय पीढ़ी व तृतीय पीढ़ी के जैव ईंधनों पर भी पूरे विश्व में काफी काम हो रहा है।

चित्र – 1 में प्रथम, द्वितीय व तृतीय पीढ़ी के जैव ईधनों को आरेखन से समझाया गया है।

प्रथम पीढ़ी जैव ईधन

प्रथम पीढ़ी के जैव ईधन, वे जैव ईधन हैं जो आसानी से उपलब्ध ऊर्जा फसलों से तैयार किए जाते हैं। इनमें से मुख्य रूप से सोयाबीन, गन्ना, मीठा आलू व अन्य प्रकार के तेल युक्त फसलें [खाने योग्य कच्चा पदार्थ] है, जिनसे पारम्परिक विधियों द्वारा जैव ईंधन बनाया जाता है। प्रथम पीढ़ी के मुख्य जैव ईंधन–बायोडीजल, बायोईथेनॉल व बायोगैस है, जो कि पूरे विश्व में काफी मात्रा में तैयार किया जा रहा है व जिसके लिए आज "स्थापित तकनीक" उपलब्ध है। बायोडीजल को डीजल के स्थान पर वर्तमान डीजल इंजन में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर उपयोग में लाया जा सकता है। इसी प्रकार से बायोइथेनॉल को पेट्रोल के स्थान पर प्रयोग में लाया जा सकता है।

बॉयोइथेनॉल को शुगर व स्टार्च युक्त पदार्थों से फर्मेन्टेशन विधि द्वारा आसानी से तैयार किया जाता है। बॉयोइथेनॉल जो कि ऍथाईल टर्शरी ब्यूटॉयल ईथर [ETBE] के लिए कच्चे पदार्थ का काम करता है व आसानी से पेट्रोल में सम्मिश्रित हो जाता है। इंजन सिस्टम में थोड़ा बहुत परिवर्तन कर बायोगैस व बॉयोमेथेन को भी पेट्रोल इंजन [स्पार्क इग्निशन इंजन] में उपयोग में ला सकते हैं। वर्तमान में बायोडीजल, बायोईथेनॉल व बायोगैस उन पदार्थों से तैयार किए जा रहे हैं, जिन्हें खाद्य के रूप में प्रयोग में लाया जाता है। आज विश्व में बढ़ते हुए खाद्य तेलों की मांग की वजह से इनकी दरों में काफी वृद्धि हो रही है, अत: कृषि योग्य फसलों व खाद्य तेलो से जैव ईंधनों का उत्पादन भारत में सम्भव नहीं है।

कुछ मुख्य फसलें व बहुवार्षिक पेड़ पौधों की खेती से जोकि बंजर भूमि में आसानी से उग सकती है, के उपयोग से बॉयोडीजल तैयार किया जा सकता है, इनमें रतनजोत *[Jatrotha curcas]*, करन्जा *[Pongamia pinnata]* तथा अरण्डी *[Castor ricinus]* इत्यादि प्रमुख हैं, जो कि भारत की वातावरणीय दशाओं के अनुकूल है। वही इन पेड़ पौधों से प्राप्त जैव पदार्थों का उपयोग अन्य बहुउपयोगी पदार्थों को तैयार करने में किया जा सकता है जैसे 'बॉयोरिफायनरी' जिसमें सम्पूर्ण जैव पदार्थों को उपयोगी पदार्थों में विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा परिवर्तित किया जाता है, जैसे कि चित्र 2 में दिखाया गया है।

बायोडीजल : वनस्पति तेल व वसा युक्त पदार्थों से तैयार किया गया फैटी एसिड मिथॉयल / ईथॉयल ईस्टर बायोडीजल के नाम से जाना जाता है, कई वातारणीय लाभों की वजह से यह आज पूरे विश्व में काफी लोकप्रियता प्राप्त कर चुका है। यह एक वैकल्पिक (alternative) डीजल है, जोकि नवीनीकरण (renewable) जैविक पदार्थों से प्राप्त किया जाता है। वनस्पति तेल व वसा युक्त पदार्थों की एल्कोहॉल, होमोजीनस या हिटरोजिनस उत्प्रेरक की उपस्थिति में रासायनिक क्रिया द्वारा तैयार किया जाता है तथा रासायनिक क्रिया के बाद मिथॉयल/ईथॉल ईस्टर-ग्लिसरॉल का मिश्रण प्राप्त होता है, जिसमें ग्लिसरॉल एक बहुत ही उपयोगी सह-उत्पाद है

बायोइथेनॉलः कॉर्न, गेहूँ, जौं, स्वीट सॉरगम से तैयार किया गया ऐल्कोहॅल ग्रेन एल्कॉहल कहलाता है, वहीं जो ऐल्कॉहल लिग्नोसेल्यूलोजिक जैव पदार्थों जैसे कृषि से उत्पन्न अवशेष आदि से प्राप्त किया जाता है उसे बायोइथेनॉल या जैव इथेनॉल कहा जाता है। दोनों ही प्रकार के ऐल्कोहल को जैव–रासायनिक प्रक्रियाओं द्वारा तैयार किया जाता है। कार्बोहाइड्रेट युक्त पदार्थों से ऐल्कोहल फर्मेंटेशन की क्रिया द्वारा तैयार किया जाता है। इथेनॉल बनाने के लिए उपयोग में लाये जाने वाले कच्चे पदार्थों को तीन श्रेणियों में बांटा जा सकता है:

(अ) शुगर युक्त फसलें : गन्ना, गेहूं, वीट रूट, फल, पाम
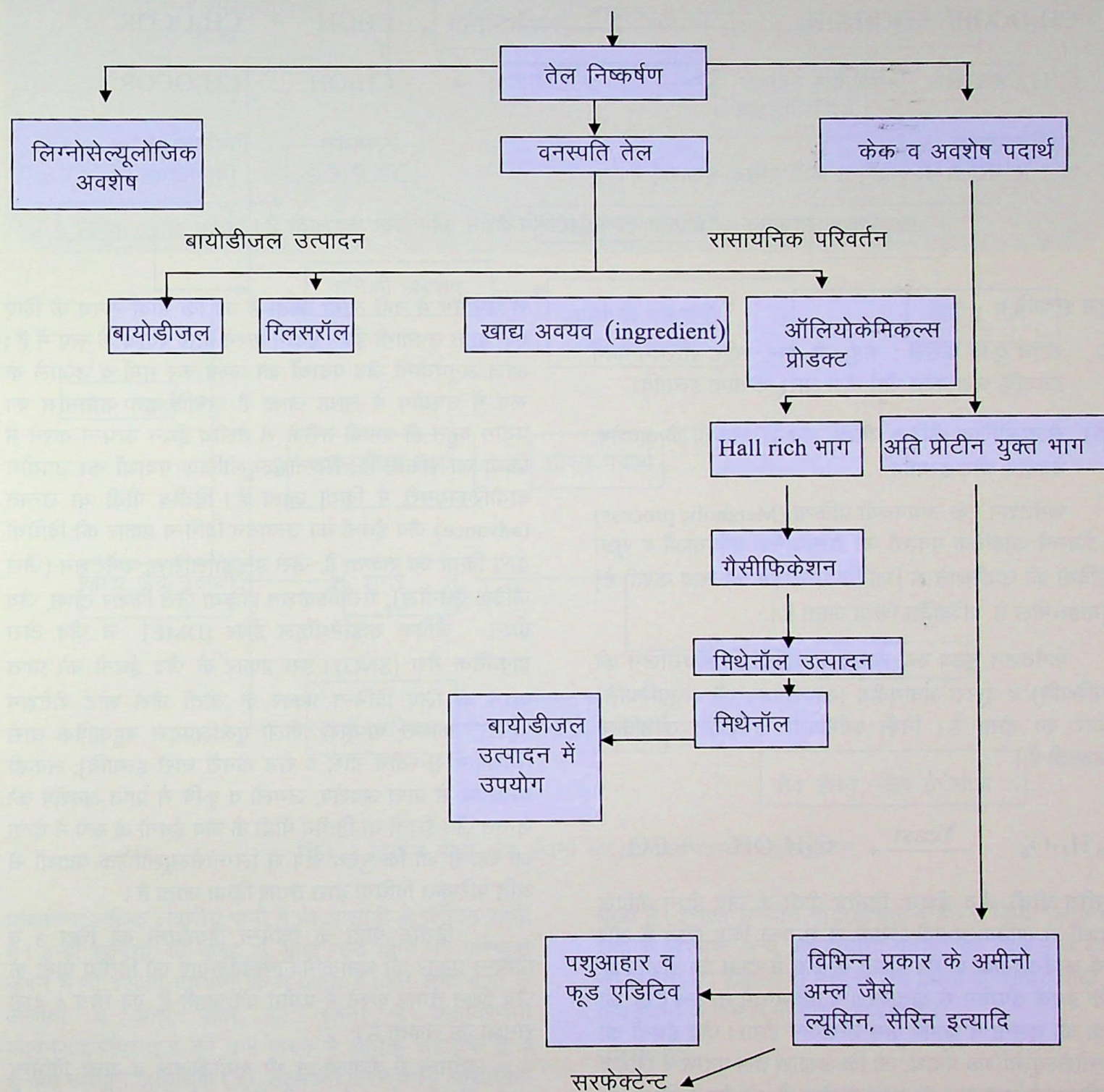
चित्रः 2 बॉयो डीजल उत्पादन में विभिन्न सह उत्पाद

$$
\begin{array}{l}
CH_3OCOR^1 \\
| \\
CH_2OCOR^2 + 3CH_3OH \\
| \\
C^1H_2OCOR^3 \quad \text{मिथेनॉल}
\end{array}
\;\underset{}{\overset{\text{उत्प्रेरक}}{\rightleftharpoons}}\;
\begin{array}{l}
CH_2OH \\
| \\
CHOH \\
| \\
CH_2OH
\end{array}
+
\begin{array}{l}
CH_3OCOR^1 \\
\\
CH_3OCOR^2 \\
\\
CH_3OCOR^3
\end{array}
$$

ट्राइग्लिसरॉयड   ग्लिसरॉल   मिथॉयल ईस्टर [बायोडीजल]

जहां R^1, R^2 व R^3 विभिन्न फैटी एसिड शृंखलाएं है।
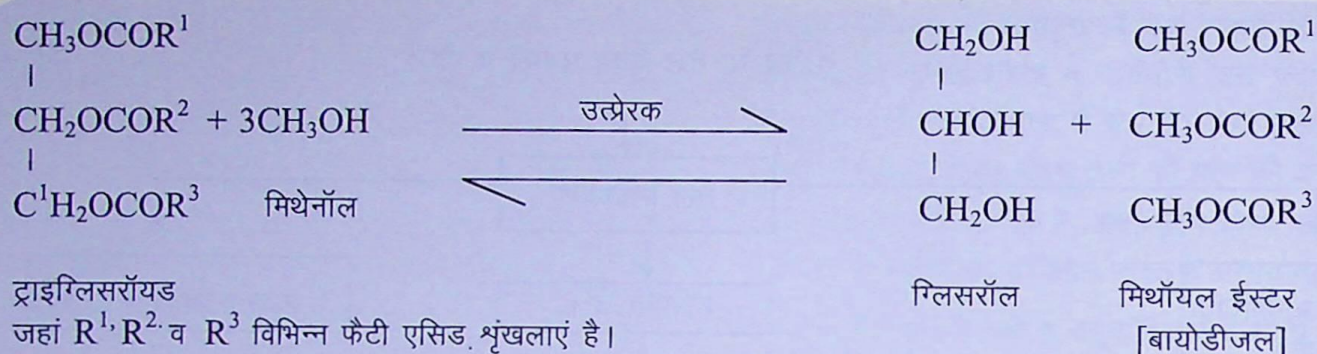
उपरोक्त रासायनिक अभिक्रिया ट्रान्सईस्टेरिफिकेशन अभिक्रिया कहलाती है।

जूस इत्यादि।

© स्टार्च युक्त फसलें : गेहूं, जौ, धान, स्वीट सॉरगम कार्न इत्यादि, जड़ युक्त पौधे जैसे आलू, कैसावा इत्यादि।

(स) सेल्यूलोजिक जैविक पदार्थः लकड़ी, लकड़ी के अवशेष, देवदार, चीड़ इत्यादि।

फर्मेंटेशन एक उपापचयी प्रक्रिया (Metabolic process) है, जिसमें कार्बनिक पदार्थों को रासायनिक प्रक्रियाओं व सूक्ष्म जीवियों की उपस्थिति से [जो कि एन्जाइम का स्राव करती है] बॉयाइथेनॉल में परिवर्तित किया जाता है।

फर्मेंटेशन मुख्य रूप से पहला वायवीय (ऑक्सीजन की उपस्थिति) व दूसरा अवायवीय (ऑक्सीजन की अनुपस्थिति) प्रकार का होता है। निम्न अभिक्रया फर्मेंटेशन अभिक्रिया कहलाती है।

$$C_6H_{12}O_6 \xrightarrow{\text{Yeast}} C_2H_5OH + CO_2$$
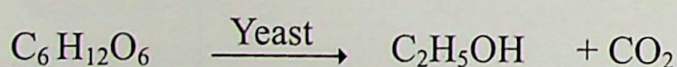
द्वितीय पीढ़ी जैव ईंधनः द्वितीय पीढ़ी के जैव ईंधन जैविक पदार्थों से अधिक प्रभावी तरीके से उत्पन्न किए जाते हैं और उन्हें कार्बन निष्क्रिय जैव ईंधनों के रूप में देखा जा सकता है, चूंकि इनके उपयोग से वातावरण में वर्तमान में उत्पन्न CO_2 की मात्रा की तुलना में काफी कम उत्सर्जन होगा। जैव ईंधनों को लिग्नोसेल्यूलोजिक पदार्थ, जो कि अखाद्य तेल पदार्थ व जैविक अवशिष्ट से बहुतायत में उत्पन्न होता है, से तैयार किया जा सकता है। वर्तमान में इन पदार्थों से जैव ईंधन बनाना काफी महंगा पड़ता है जिसकी वजह तकनीकी तौर पर आ रही दिक्कते हैं। अतः तकनीकी खामियों को दूर कर सही मायने में इनका प्रभाव देखा जा सकता है। आज धरती पर अनुपयोगी जैविक पदार्थ जैसे पेड़–पौधों से प्राप्त अखाद्य तेल युक्त पौधों के अवशेष, व कृषि से उत्पन्न जैविक पदार्थों को प्रभावी तरीके से उपयोग में नहीं लाया जाता है जो कि भावी समय के लिए एक बहुत उपयोगी ईंधन प्रदान करने वाले पदार्थ के रूप में हैं। आज अनुपयोगी जैव पदार्थों को जला कर गर्मी व उजाले के रूप में उपयोग में लाया जाता है जबकि इन बायोमॉस का प्रयोग बहुत ही प्रभावी तरीके से तेलीय ईंधन उत्पन्न करने में किया जा सकता है। लिग्नोसेल्यूलोजिक पदार्थों का उपयोग बायोरिफायनरी में किया जाता है। द्वितीय पीढ़ी या उन्नत (advance) जैव ईंधनों का उत्पादन विभिन्न प्रकार की विधियों द्वारा किया जा सकता है, जैसे हाइड्रोलिसिस, फर्मेंटेशन (जैसे जैविक ऐथेनॉल), गैसीफिकेशन प्रक्रिया जैसे फिशर टॉप्स, जैव ईंधन, जैविक डाइमिथॉइल ईथर [DME] व जैव ठोस प्राकृतिक गैस (SNG)। इस प्रकार के जैव ईंधनों को प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार के स्रोतों जैसे शार्ट रोटेशन फारेस्ट्री क्रॉपस, पाप्यूलर, वीलो यूकेलिपट्स, बहुवार्षिक घासे [मिसकेन्थस स्वीच ग्रासें व रीड केनरी घासें इत्यादि], लकड़ी व्यवसाय से प्राप्त अवशेष, जंगलों व कृषि से प्राप्त अवशेष को उन्नत जैव ईंधनों या द्वितीय पीढ़ी के जैव ईंधनों के रूप में देखा जा रहा है जो कि मुख्य रूप से लिग्नोसेल्यूलोजिक पदार्थों से अति परिष्कृत विधियों द्वारा तैयार किया जाता है।

द्वितीय पीढ़ी के विभिन्न जैवईंधनों को चित्र 3 व विभिन्न प्रकार की थर्मोकेमिकल्स प्रक्रियाएं जो द्वितीय पीढ़ी के जैव ईंधन तैयार करने में प्रयोग की जाती है, को चित्र 4 द्वारा समझा जा सकता है।

वर्तमान में शैवालों से भी बायोडीजल व अन्य विभिन्न प्रकार के जैव ईंधन तैयार किये जा रहे हैं, यद्यपि यह अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है। शैवाल जो कि सूक्ष्मजीवी पौधे हैं व ये भोज्य पदार्थों जैसे कार्बोहाइड्रेट व लिपिड का निर्माण, प्रकाश संश्लेषण की क्रिया द्वारा पानी, कार्बनडाईऑक्साइड व सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में करते हैं। शैवाल बहुत ही तेजी से उगने वाले सूक्ष्मजीवी पौधे हैं, व ये वातावरण की विषम परिस्थितियों में भी आसानी से उगते हैं। शैवालों की कुछ
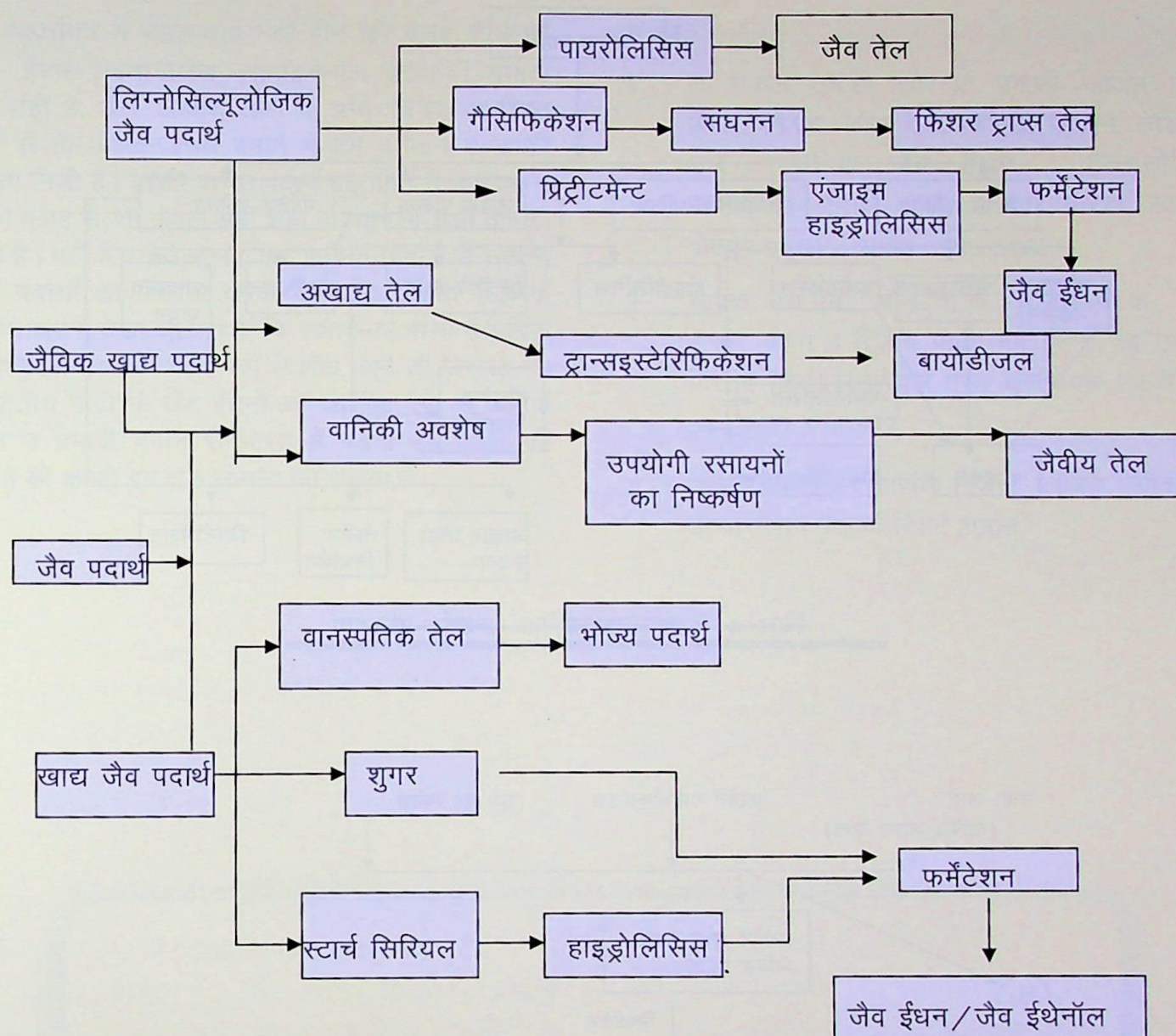
चित्रः 3 द्वितीय पीढ़ी जैव ईंधनों का जैविक पदार्थों से उत्पादन

प्रजातियां अधिक लवणीय पानी में भी आसानी से जीवित रहती हैं। इन्हीं खूबियों की वजह से आज गन्दे पानी को परिष्कृत करने में भी इसका उपयोग किया जाता है। इन सभी गुणों के अलावा ये अन्य पौधों की तुलना में वातावरणीय कार्बनडाइऑक्साइड को कम करने में अधिक सहायक हैं व इनका उपयोग अत्यधिक CO_2 उत्सर्जन करने वाली औद्योगिक इकाइयों के आसपास किया जा सकता है। आज पूरे विश्व में शैवालों की 40,000 से भी अधिक प्रजातियों की पहचान कर ली गई है।

शैवालों में विभिन्न प्रकार के फैटी एसिड शृंखलाऐं संश्लेषित होती है, जिनमें से मध्यम $[C_{10}\text{-}C_{14}]$, लम्बी $[C_{16}-C_{18}]$ व बहुत लम्बी $[>C_{20}]$ वाले फैटी एसिड शृंखलाएँ मुख्य हैं। इनका उपयोग बायोडीजल बनाने में किया जाता है। शैवालों से प्राप्त अन्य बहुउपयोगी पदार्थों को चित्र 5 में देखा जा सकता है। शैवालों से उत्पन्न जैव ईंधनों को तृतीय पीढ़ी के जैव ईंधनों के रूप में भी देखा जा रहा है।

उपसंहार

इस लेख में प्रथम, द्वितीय व तृतीय पीढ़ी के जैव ईंधनों के बारे में संक्षिप्त रूप से प्रकाश डाला गया है। आज बढ़ते हुए खाद्य पदार्थों के दामों की वजह पूरे विश्व में जैविक ईंधनों का उपयोग बढ़ते रहना है, क्योंकि विश्व के अधिकतम देश वातावरणीय लाभों की वजह से जैव ईंधन (मुख्य रूप से बॉयोडीजल व बॉयोइथेनॉल) का उत्पादन खाद्य तेलों आदि से तैयार कर रहे हैं। भारत में चूंकि खाद्य पदार्थों के अधिक दाम व
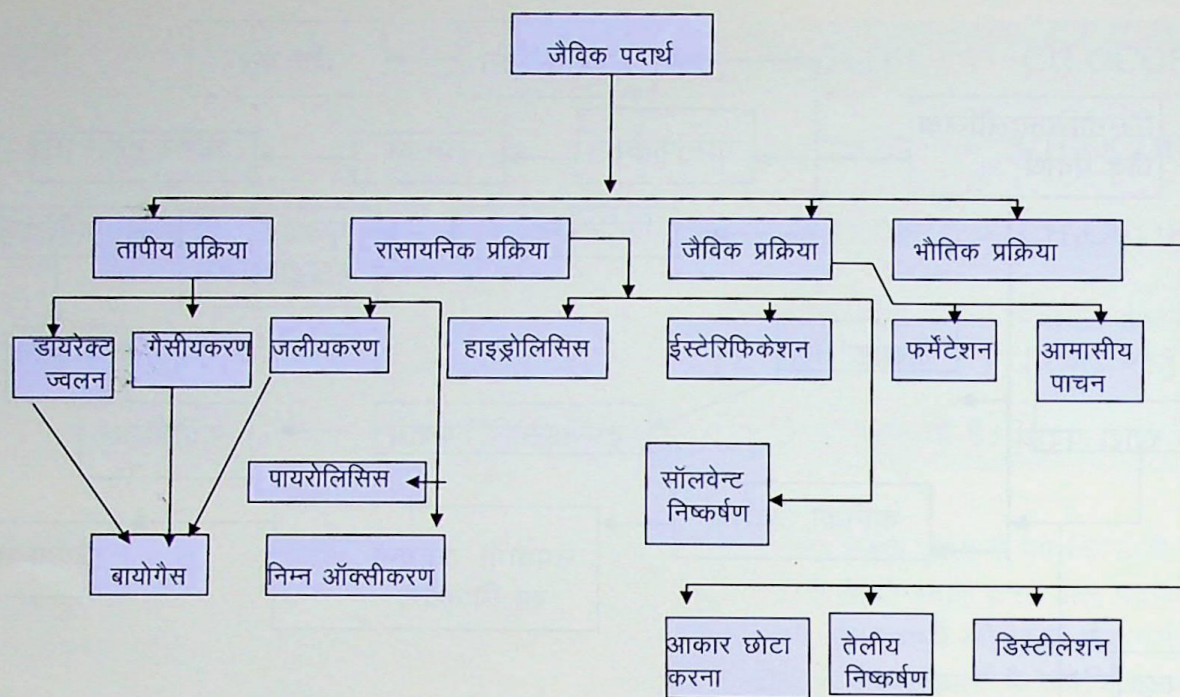
चित्र–4 : ताप रासायनिक कन्वर्शन प्रक्रियाएं
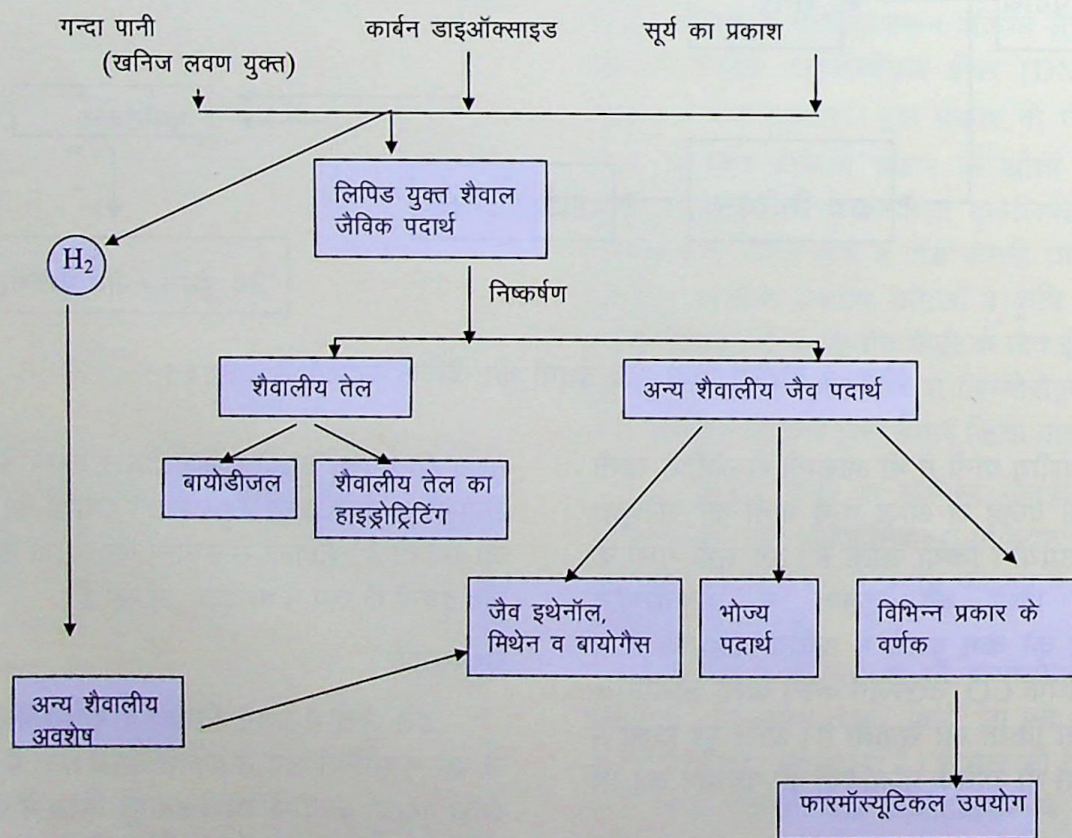
चित्र : 5 शैवालीय बायोडीजल व अन्य उपयोगी पदार्थ

इनकी बहुतायत में उपलब्धता नहीं होने की वजह से इनसे जैविक ईंधन [बायोडीजल, बायोइथेनॉल इत्यादि] बनाना उचित नहीं है, अतः अखाद्य तेलों व अन्य जैविक अपशिष्ट पदार्थो से ही जैविक ईंधन बनाने में हमें वर्तमान में काफी सफलता मिली है। यद्यपि कच्चा पदार्थ बहुतायत में उपलब्ध न होने की वजह से यह केवल अभी शोध व प्रयोगशालाओं तक ही सीमित है। वहीं लिग्नोसेल्यूलोजिक, कृषि व जंगलों से उत्पन्न जैविक पदार्थों का उपयोग करके जिन्हें कि द्वितीय पीढ़ी के ईंधनों के रूप में देखा जा रहा है, कि संभावनाएं भारत में अधिक है, यद्यपि इन पर अभी बृहद् रूप से शोध कार्य की जरूरत है। अतः द्वितीय पीढ़ी के जैव ईंधनों को आर्थिक रूप से अधिक सशक्त व प्रभावी बनाने से भारत में बढ़ती हुई ऊर्जा की जरूरतों को काफी हद तक संभाला जा सकता है।

संदर्भः

1. ल. रॉकेल, एच.डी. लोरन्जो, एम.सी. जॉअन, एच.सी. जैम्स, एम.एच. जोस, एल. डिऐगो; एम.एम. जोस व ए. आर. एन्ओनियो **जैव ईंधन : टैक्नॉलोजिकल** परस्पेक्टिव एनर्जी ऐन्ड इन्वायरनमेन्टल साइंसेज, वोल्यूम 9 (5): 2008 : 593-596.

2. नायक एस.एन., गौड़ वी.वी., रॉऊत पी.के., दलाई ए.के., प्रथम व द्वितीय पीढ़ी जैव ईंधनों का उत्पादनः विस्तृत रिव्यू। रिन्यूवेवल ऐण्ड सस्टेनेवल एनर्जी रिव्यू. 14; 2010: 578-597.

3. 'भारत जैव ईंधन' वार्षिक रिपोर्ट, ग्लोबल एग्रीकल्चरल इन्फार्मेशन नेटवर्क रिपोर्ट 2009.

तुलसीदास जी की भाषा सम्पूर्ण है, अमर है। इस भाषा में हम अपने विचार प्रकट न कर सकें तो दोष हमारा ही है।

– महात्मा गांधी (भाषणः भागलपुर में 17 अक्टूबर, 1917)

घरेलू मक्खी : समस्या एवं जैविक कीटनाशियों द्वारा निदान

पीयूष कुमार, सपना मिश्रा, शोध छात्र
डॉ. अनुश्री मलिक, एवं **प्रो. सन्तोष सत्या**
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

घरेलू मक्खी (Musca domestica L.) एक सर्वव्यापी कीट हैं जो मुख्यतः मानव निवास स्थान, पशुपालन केंद्र, मुर्गी पालन केन्द्र और सामान्यतः गन्दगी भरे स्थानो में पाई जाती हैं। घरेलू मक्खी हमारे खाद्य पदार्थो एवं पेय पदार्थो को न केवल प्रदूषित करती है अपितु एक अनुमान के अनुसार 100 से भी अधिक बीमारियों जैसे हैजा, तपेदिक, यक्ष्मा एवं आँत संबंधित रोगों इत्यादि को फैलाने में वाहक का कार्य करती हैं (Pospischil, 1994)। घरेलू मक्खी सड़े–गले पदार्थों, गन्दगी भरे स्थानों, सड़े हुए फल और सब्जियां व अपशिष्ट पदार्थों, सामान्यतः पशुओं का बिछौना, ईंट के फर्श की दरारों, जहाँ पर्याप्त मात्रा में नमी हो, वहां रहती और प्रजनन करती हैं। मुर्गी पालन केन्द्रों में जब घरेलू मक्खी ज्यादा सघनता में होती हैं तो यह न केवल कामगारों के कार्य में बाधा पहुंचाती है बल्कि अण्डों के उत्पादन को भी कम करती हैं।अमरीका में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार घरेलू मक्खियों द्वारा प्रतिवर्ष 60 मिलियन डालर की हानि होती है (USDA Report, 1976)। पशुपालन केन्द्रों में मक्खियाँ मुख्यतः चारा, चोकर एवं अपशिष्ट पदार्थों आदि की ओर आकर्षित होती है और पशुओं और कामगारों के कार्यों में व्यवधान उत्पन्न करती है। मक्खियाँ पशुओं के भरण–आचरण को प्रभावित कर उनके दुग्ध उत्पादन की क्षमता में गिरावट ला देती है। पशु–पालन जोकि ग्रामीण परिवेश का एक अभिन्न अंग है और जहाँ साफ–सफाई का इतना उत्तम प्रबंध करना संभव नहीं है, वहां मक्खियाँ एक गंभीर समस्या है। हालाँकि मक्खियों की समस्या केवल गाँव–घरों तक ही सीमित नही रही है, शहरों में बढ़ते औद्योगिकीकरण एवं झुग्गी बस्ती की वजह से जगह–जगह कूड़े और गन्दगी के ढेर बढ़ते जा रहे है जो कि मक्खियों के प्रजनन को बढ़ावा देते है। इन सब कारणों से मक्खियों की समस्या दिन प्रतिदिन अधिक गंभीर होती जा रही है।

2.0 मक्खियों का जीवन चक्र

घरेलू मक्खियों का जीवन चक्र मुख्यतः चार अवस्थाओं में बाँटा जा सकता है– व्यस्क, अंडे, कीटडिंब और कोषस्थ कीट। यह चित्र 1 में प्रदर्शित किया गया है।

चित्र 1 : मक्खियों का जीवन–चक्र
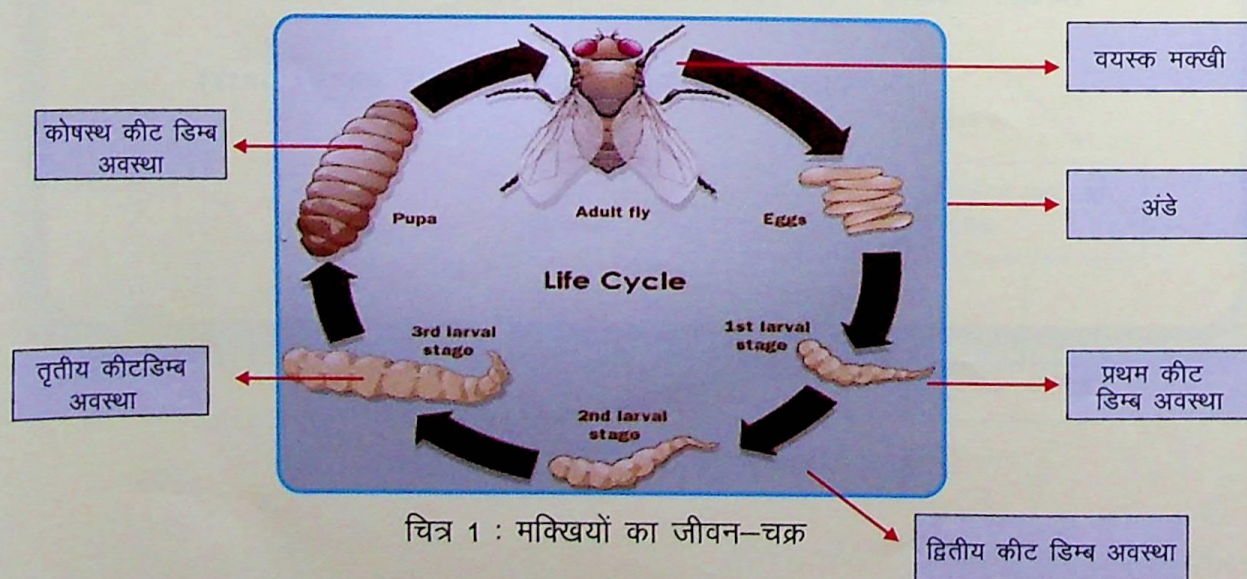
2.1 वयस्क (adult) मक्खी– एक वयस्क मक्खी 6–9 मिलीमीटर लम्बी होती है। इसका वक्ष धूसर रंग का होता है जिस पर चार गहरे रंग की अनुदैध्य (longitudinal) रेखाएं होती है। वयस्क मक्खी का उदर पीले रंग का होता है और सम्पूर्ण शरीर छोटे–छोटे रोमो से ढका रहता है। मादा वयस्क मक्खी, नर वयस्क मक्खी से बड़ी होती है और उसके दोनों आँखों के बीच का स्थान भी नर वयस्क मक्खी से अपेक्षाकृत बड़ा होता है। मक्खी के शरीर पर केवल एक जोड़ी पंख होते है, जबकि पिछली पंख की जोड़ी रूपांतरित होकर दुर्बल हो चुकी होती है। यह पिछली पंख की जोड़ी मक्खियों को उड़ने के समय स्थिरता प्रदान करती है।

2.2 अंडे (Egg)– एक वयस्क मक्खी अपने जीवन चक्र में 500–700 अंडे देती है। ये अंडे 75–150 के समूह में होते है। अंडे क्रीमी सफेद रंग के होते है और इनकी लम्बाई 1–2 मिली मीटर होती है।

2.3 कीटडिम्ब (Larvae)– मक्खियों के अंडे देने के 1–2 दिन के उपरांत ही अन्डों से कीटडिम्ब निकल आते हैं। कीटडिम्ब हल्के सफेद रंग के, 3–9 मिलीमीटर लम्बे और पतले होते है। इन कीटडिम्ब की टाँगे नहीं होती हैं इसलिए इन्हें मैगट (maggot) भी कहा जाता है। इनकी जीवन अवधि करीब 6–7 दिन तक होती है जिनमें यह विकास की तीन अवस्थाओं से गुजरते है। इन अवस्थाओं को प्रथम इन्स्टार (Ist instar), द्वितीय इन्स्टार (2nd instar) एवं तृतीय इन्स्टार (3rd instar) कहते है।

2.4 कोषस्थ कीट (Pupae)– तृतीय इन्स्टार की अवस्था पूरी करते ही कीटडिम्ब कोषस्थ कीट में परिवर्तित हो जाते है। कोषस्थ कीट में परिवर्तन के दौरान कीटडिम्ब शुष्क स्थान की ओर गमन करते है और निष्क्रिय होकर कोषस्थ कीट में परिवर्तित हो जाते है। कोषस्थ कीट हल्के लाल रंग का और 8 मिलीमीटर लंबा होता है। इनका जीवन चक्र 5–6 दिन का होता है जिसके बाद ये वयस्क मक्खी में परिवर्तित हो जाते है।

3.0 मक्खियों का नियंत्रण / प्रबंधन

मक्खियों का नियंत्रण मुख्यतः साफ सफाई और कीटनाशक प्रयोग पर निर्भर करता है। रासायनिक कीटनाशको में ओर्गानोक्लोरिन (organochlorine) और ओर्गानोफोस्फेट (organophosphate) मुख्यतः मक्खियों के नियंत्रण में प्रयोग किये जाते रहे है। परन्तु धीरे–धीरे मक्खियाँ इन कीटनाशकों के प्रति प्रतिरोध विकसित कर जाती हैं (Srinivasan et al, 2008)। इसके अतिरिक्त ऐसा देखा गया हैं कि कीटनाशकों का अत्यधिक प्रयोग न केवल कीटों की प्रजनन क्षमता को बढ़ावा देता है बल्कि मनुष्य एवं वातावरण के लिए भी विषकारी सिद्ध हुआ हैं। इसलिए पूरे संसार में ऐसे उपाय किये जा रहे है जिनमें इन कृत्रिम कीटनाशियों का पर्यावरण अनुकूल विकल्प ढूंढा जा सके। कीटों और रोगों के रोकथाम के लिए प्राकृतिक वनस्पति, जड़ी बूटी और उनके आवश्यक घटक तत्व सफल सिद्ध हो सकते हैं (Malik et al, 2007)। पिछले पचास वर्षों में हजारों पौधें अपने कीटनाशी गुण के लिए परखें जा चुकें हैं। इनमे यूकलेप्ट्स (eucalyptus), मेंथा (mentha), लेमन ग्रास (lemon grass), हल्दी (turmeric) इत्यादि प्रमुख हैं। इनमें से अधिकतर या तो मच्छरों के रोकथाम के लिए वर्णित हैं या फिर कृषि कीटों के लिए, मक्खियों के रोकथाम के सन्दर्भ में इनके प्रयोग का बहुत कम उल्लेख मिलता है। कुछ दस्तावेज जो पौधों के सक्रिय तत्वों द्वारा मक्खियों के नियंत्रण से संबंधित हैं, वो भी इसके सतही अनुप्रयोग (topical application) और सुगंधीकरण (fumigation) पर केन्द्रित हैं जोकि मक्खियों की व्यस्क (adult) अवस्था को ही लक्ष्य करती है। हालाँकि इन तत्वों के अतिरिक्त प्रभाव (secondary impact) जैसे – मक्खियों का विकर्षण (repellency), इन्हें गोशाला एवं व्यक्तिगत प्रयोग के लिए अनुकूल बनाती हैं, जहाँ मक्खियों का नियंत्रण केवल विशिष्ट जगह से विशिष्ट कालावधि के लिए जरूरी होता हैं।

मक्खियों के जैविक नियंत्रण से संबंधित कुछ प्रयोग आई. आई. टी. दिल्ली के ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र (अप्लाइड माइक्रोबायोलोजी लैब) में किये गए। इन प्रयोगों में सुगंधित तेलों (essential oil) के द्वारा मक्खियों के विभिन्न अवस्थाओं में नियंत्रित करने की कोशिश की गई। उपयोग में लाए गए सुगंधित तेल कांता केमिको., खारी बावली, नई दिल्ली से प्राप्त किए गए। 6 पौधे–मेंथा पीपरीता, मेंथा सीटरिता, यूकलेप्ट्स, लेमन ग्रास, हल्दी और खस घास के सुगंधित तेल उपयोग में लाए जाने तक 4°C तापमान पर फ्रिज में रख दिये गये।

4.0 प्रयोगात्मक कार्य

4.1 मक्खियों का प्रयोगशाला में पालन

मक्खियों के प्रयोगशाला स्थिति में पालन के लिए पहले आई. आई. टी. दिल्ली के कचरे फेंकने के स्थान से घुमाव जाली (Sweep net) के द्वारा मक्खियों को पकड़ा गया। मक्खियों के पालन के लिए दूध पाउडर, गेहूं का चोकर, शहद आदि का उनके भोज्य पदार्थ के रूप में उपयोग किया गया। इन पकड़ी हुई मक्खियों को rearing chamber मे पहले से तैयार भोज्य पदार्थो के साथ रखा गया। एक–दो दिन पश्चात् मक्खियों के

प्रजनन से उत्पन्न अण्डों को, ताजा तैयार किए गए भोज्य पदार्थ पर स्थानांतरित किया गया जिससे मक्खी पालन जीवाणुओं के संदूषण से मुक्त रह सके। 1–2 दिन पश्चात् इन अण्डों से कीटडिम्बों का उदगमन होता है । तत्पश्चात 5–6 दिन बाद कीटडिम्ब, कोषस्थ कीट में परिवर्तित हो जाते है । तब इन्हें एक पेट्री प्लेट में रख दिया जाता है। यहाँ पर यह वयस्क मक्खी में परिवर्तित हो जाती है। पालन प्रक्रिया के दौरान प्राप्त की गयी मक्खियों के विभिन्न अवस्थाओं को प्रयोग में लाया गया।

4.2. जैव परीक्षण प्रयोग

4.2.1 विकर्षण जैव परख (repellency bioassay)

विकर्षण परख खास तौर से बनाये गए विकर्षण कक्ष (repellency chamber) में किए गए जिनका भीतरी कक्ष 20×20×20 सेंटीमीटर जबकि बाहरी कक्ष 60×60×60 सेंटीमीटर था। बाहरी और भीतरी कक्ष एक दूसरे से 9×9 सेंटीमीटर के छिद्र से जुड़े हुए थे। बाहरी कक्ष में सुगंधित तेल युक्त छन्ना कागज (filter paper) एक पेट्री प्लेट (petri plate) मक्खियों सहित रख दी गई। यह प्रयोग इन तेलों की दो सांद्रता (concentration) के साथ किया गया।

बड़ा कक्ष

चित्र–2 विकर्षण कक्ष

छोटा कक्ष

4.2.2 कीटडिम्ब पर तेलों का परीक्षण (larvicidal bioassay)

मक्खियों के कीटडिम्ब पर सुगंधित तेलों का प्रयोग पेट्री प्लेट परख प्रणाली द्वारा किया गया। इस पद्धति में 20 कीटडिम्ब को सुगंधित तेल (1 मिलीलीटर) युक्त छन्ना कागज पर खाद्य पदार्थ के साथ पेट्री प्लेट पर रख दिया गया। तेल प्रयोग के बाद कीटडिम्ब के भूरे हो जाने या मुरझाने पर उसे मृत मान लिया गया।

4.2.3 कोषस्थ कीट पर तेलों का परीक्षण (pupicidal bioassay)

कोषस्थ कीट पर विभिन्न तेल के प्रभाव की परख के लिए पेट्री प्लेट में छन्ने कागज पर 200 माइक्रोलीटर सुगंधित तेल और 20 कोषस्थ कीट को रख दिया गया। सुगंधित तेल का कोषस्थ कीट पर प्रभाव को वयस्क मक्खियों के उद्भव में प्रतिशत कमी के तौर पर दर्शाया गया। प्रतिशत निषेध दर (inhibition rate) की गणना निम्नलिखित सूत्र के द्वारा की गई।

$$\% \ IR = \frac{Cn\text{-}Tn}{Cn} \times 100$$

जहाँ पर

Control (Cn) = नियंत्रित पेट्री प्लेट के कोषस्थ कीट से निकली नई मक्खियाँ

Treated (Tn) = सुगंधित तेल प्रयुक्त पेट्री प्लेट के कोषस्थ कीट से निकली नई

5.0 परिणाम एवं विवेचन

5.1 विकर्षण परीक्षण

सुगंधित तेल की विभिन्न मात्रा से विकर्षित हुए वयस्क मक्खियों के प्रतिशत चित्र 3 एवं 4 में दर्शाये गये है। लगभग सभी प्रयोग किये गए तेलों ने मक्खियों में विकर्षण दिखाया हालाँकि विकर्षण प्रतिशत तेल की मात्रा और सम्पर्क समय (contact duration) के साथ घटती–बढ़ती पायी गयी। सुगंधित तेलों की कम मात्रा के साथ किये गए प्रयोगों में तेलों की विकर्षण क्षमता के आधार पर उन्हें दो भागो में विभाजित किया जा सकता है ; (अ) अधिक विकर्षण क्षमता वाले तेल जैसे कि मेंथा पीपरीता, यूकेलेप्ट्स और लेमन ग्रास और (ब) कम विकर्षण क्षमता वाले तेल जैसे कि, मेंथा सीटरिता, हल्दी और खस घास। हालाँकि तेलों की अधिक मात्रा के साथ किये गए विकर्षण प्रयोगों में इस तरह का कोई विभाजन नहीं दिखा।

मेंथा पीपरीता दोनों ही सान्द्रता पर सबसे प्रभावी दिखा जबकि हल्दी का तेल सबसे कम विकर्षक साबित हुआ। कम मात्रा पर मेंथा पीपरीता का विकर्षण 70 प्रतिशत (चित्र–3) रहा जबकि अधिक मात्रा पर किये गए प्रयोग पर विकर्षण प्रतिशत बढ़कर 86 प्रतिशत हो गया (चित्र–4)। बाकी दूसरे सभी तेलों की विकर्षण प्रवृति लगभग समान रही यानि तेलों की मात्रा बढ़ने के साथ उनकी विकर्षण क्षमता बढ़ गई। तथापि मेंथा सीटरिता में तेल की मात्रा बढ़ने के साथ उसकी विकर्षण क्षमता में बहुत अधिक वृद्धि पाई गई। [40% (कम मात्रा पर) से 78% (अधिक मात्रा पर)]
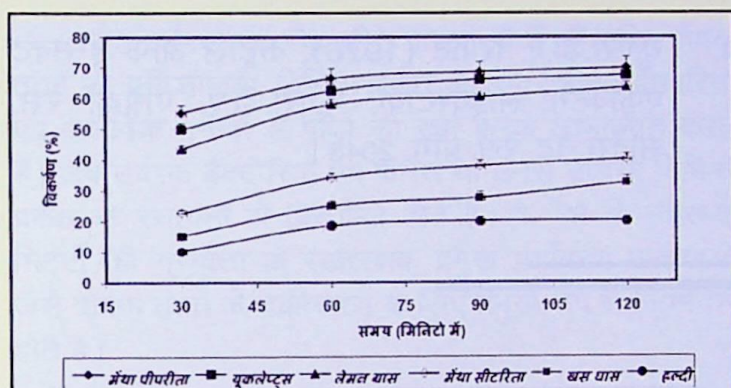
चित्र 3: समय अवधि के साथ सुगंधित तेलों (0.2 मि.ली.) की विकर्षण क्षमता
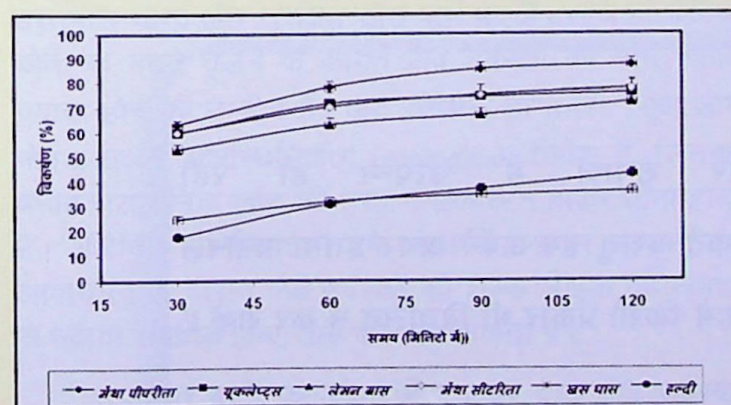
चित्र–4 समय अवधि के साथ सुगंधित तेलों (0.5 मि.ली.) का विकर्षण प्रतिशत

5.2. कीटडिम्ब पर सुगंधित तेलों का परीक्षण

हर एक तेल में कीटडिम्ब मारने की लगभग समान क्षमता देखते हुए 48 घंटे में कीटडिम्बों की पूर्ण मृत्यु अंकित की गई (चित्र 5)। मेंथा पीपरीता सबसे अधिक कारगर सिद्ध हुआ जिसने 24 घंटे में 94 प्रतिशत कीटडिम्ब मारे, इसके बाद यूकलेप्ट्स और मेंथा सीटरिता सबसे अधिक प्रभावकारी रहे, जिनकी 24 घंटे में कीटडिम्ब मारने की क्षमता क्रमशः 87% और 77% रही। लेमन ग्रास और हल्दी के तेल, क्रमशः 67% और 63% कीटडिम्ब मार कर अगले क्रम में रहे। नियंत्रित प्रयोग (control) में कोई भी कीटडिम्ब नहीं मरा।

चित्र–5 पेट्री प्लेट परख प्रणाली द्वारा कीटडिम्ब पर सुगंधित तेलों का परख

5.3 कोषस्थ कीट पर सुगंधित तेलों का परीक्षण

कोषस्थ कीट से वयस्क मक्खी न निकलने देने के लिए जो प्रयोग किये गए, उसमे मेंथा पीपरीता, यूकेलेप्ट्स और मेंथा सीटरिता समान रूप से प्रभावकारी सिद्ध हुए। इन सुगंधित तेलों के साथ किये गए प्रयोगों में सात दिनों के अवलोकन के पश्चात भी किसी में से एक भी मक्खी नही निकली, इसलिए इन सभी का प्रतिशत मृत्यु दर (mortality rate) 100% रहा। लेमन ग्रास और हल्दी क्रमशः 95% और 55% मृत्यु दर के साथ उतने प्रभावी नहीं रहे, खासकर हल्दी का तेल जिसका केवल 50% प्रभाव कोषस्थ कीटों के वयस्क परिवर्तन प्रक्रिया पर देखने को मिला।

निष्कर्ष

वर्तमान अध्ययन से यह बात साबित हुई है कि सुगंधित तेल मक्खियों के नियंत्रण के लिए रासायनिक कीटनाशकों के बहुत अच्छे विकल्प हो सकते है। जैसा कि किये गए अध्ययन के परिणामों से स्पष्ट होता है कि सुगंधित तेल मक्खियों के जीवन की हर एक अवस्था को प्रभावपूर्ण रूप से नियंत्रण करने में सक्षम है। यह समग्र और पर्यावरण के अनुकूल उपाय मक्खियों के नियंत्रण / प्रबंधन को न केवल एक नई दिशा देगा बल्कि मक्खियों के नियंत्रण से जुड़ी हुई कठिनाइयाँ और उनसे

जुड़े हुए अवरोध के नियंत्रण के तरीकों को भी एक विशिष्ट स्थान प्रदान करेगा।

संदर्भ

1. मलिक, ए. ; सिंह, एन. ; सत्या एस. ; 2007; हाउसफ्लाई (मुस्का डोमेस्टिक): ए रिव्यू ऑफ कन्ट्रोल स्ट्रेटजिज फॉर ए चेलंजिंग पेस्ट; जर्नल ऑफ एनवायरनमेन्टल साइन्स ऐन्ड हेल्थ (पार्ट बी) 42; 453–469।

2. पोस्पिस्चिल, आर; ऐन्ड हैंकी , एस. 1994; फ्लाई कन्ट्रोल इन पिग स्टैबल्स–न्यू स्ट्रेटजिज; प्रोसिडिंग्स ऑफ 13th कांग्रेस ऑफ दि इन्टरनेशनल पिग वेटिनरी सोसाइटी (एडिटिड प्राचाक पूमविसेस ऐन्ड प्रिंगश्री इंग्कानिन्म) बैंकाक, थायलैण्ड, 2630, 1994 : 462।

3. श्रीनिवासन, आर. जम्मुलिंगम; पी. गुनाशेखरन, के.; बोपाथीदोश, पी.एस., 2008; टोलरेन्स ऑफ हाउस फ्लाई, मस्का डोमस्टिका (डिप्टेरा मस्कीडेई) टू डाइक्लोरोवास (76%ई.सी.) एन इन्सेक्टिसाइड यूज्ड फॉर फ्लाई कंट्रोल इन सुनामी हिट कॉस्टल विलेजिस ऑफ सदरन इंडिया. एक्टा ट्रोपिका; 105;187–190।

4. यू.एस.डी.ए. रिपोर्ट (1976); कंट्रोल ऑफ इन्सेक्ट एफैक्टिंग लाइवस्टोक, यू.एस.डी.ए. एग्रिक. रेस. सर्विस नेट. रेस. प्रोग. 2048।

'हम संसार के घटना क्रम को और समाज में उत्पन्न हो रही उथल–पुथल को अपनी इच्छानुसार नहीं बदल सकते परन्तु हम अपने अंदर इतना मनोबल अवश्य उत्पन्न कर सकते हैं कि उनका कोई प्रभाव हमें किसी प्रकार भी विचलित न कर सके।'

-डॉ. राधाकृष्णन

जैव उर्वरकों एवं जैव कीटनाशकों की स्थायी कृषि में भूमिका:एक समीक्षा

अनिल प्रताप सिंह, शोध छात्र एवं **डॉ. सत्यवती शर्मा**
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

जैव उर्वरक एवं जैव कीट नाशक पौधों की वृद्धि, पोषक तत्वों की गतिशीलता, विभिन्न प्रकार की पादपजनित बीमारियों एवं अजैविक तनावों से पौधों की रक्षा करके लाभान्वित करते हैं। जैव उर्वरक बैक्टीरिया एवं फंगस या उनसे उत्पन्न विभिन्न प्रकार के रसायनों से विकसित होते हैं। वे पौधे के स्वास्थ्य, मिट्टी की गुणवत्ता के रखरखाव, प्रमुख पर्यावरण प्रक्रियाओं जैसे पोषक तत्वों के चक्रीकरण के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार होते हैं।

पर्यावरण के प्रति चिंता बढ़ने के साथ ही रासायनिक खाद पर आधारित खेती की जगह कार्बनिक (organic) एवं रासायनिक खादों का मिला–जुला इस्तेमाल किया जा रहा है। इस संदर्भ में जैव उर्वरक उत्पादकता बढ़ाने के सस्ते, पुनः इस्तेमाल योग्य और सुरक्षित स्रोत माने गए हैं। साथ ही जैविक खेती के बढ़ते चलन के कारण जैव उर्वर्कों की मांग काफी ज्यादा होने की उम्मीद हैं। यहां समझना होगा कि "सूक्ष्मजीव पोषक तत्व" पारिस्थितिकीय (ecological) निवेश है, जिनका प्रभाव रासायनिक खाद की तरह चमत्कारी न होकर धीमा होता है। अजैविक परिस्थितियों को ध्यान में रखकर भण्डार एवं आवागमन के दौरान जैव उर्वरकों की शेल्फ लाइफ को ज्यादा से ज्यादा संवर्धित किए जाने की आवश्यकता है।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखकर द्रव्य जैव उर्वरक, बागानी फसलों, औषधीय पौधों के लिए जैव उर्वरक आधारित समेकित पोषण प्रबंधन पैकेज बनाए जाने की आवश्यकता है । ट्रांसजेनोसिस (transgenosis) के जरिए विकसित किए गए जैव उर्वरकों का नियंत्रित परिस्थितियों में मूल्यांकन भी जरूरी है।

2.0 एकीकृत पोषक प्रबंधन (Integrated Nutrient Management)

एकीकृत पोषक प्रबंधन कीटों, रोगों, खरपतवार के प्रबंधन के साथ व्यावसायिक रूप से व्यवहार्य प्रचुर उत्पादन प्रौद्योगिकियों के विकास हेतु चलाया गया है। कीट व खरपतवार नष्ट करने के प्रभावकारी और सस्ते तरीके विकसित कर लिए गए हैं। विभिन्न फसलों को कवक और विषाणु के प्रकोप से बचाने के लिए कई फार्मूले बनाकर उनका परीक्षण किया जा रहा है। अक्टूबर 2004 में दसवीं पंचवर्षीय योजना की शेष अवधि के दौरान देश में जैविक खेती के उत्पादन, प्रोत्साहन और बाजार विकास के लिए 57.05 करोड़ रुपये के परिव्यय के साथ 'राष्ट्रीय जैविक खेती परियोजना' नामक नई योजना प्रारंभ की गई है। देश में इस समय 169 जैव उर्वरक इकाइयाँ हैं जिनकी वार्षिक क्षमता 28 हजार टन है। इस समय प्रमाणित सजीव खेती के अन्तर्गत 865,00 हेक्टेयर भूमि है। इस योजना के तहत कृषि अवशेष के प्रसंस्करण के द्वारा 708 टन कम्पोस्ट, 5806 टन जैव उर्वरक और 17,000 टन वर्मी कम्पोस्ट बनाने की क्षमता स्थापित की गई है। सरकार भूमि परीक्षण आधारित रसायन उर्वरकों, जैव उर्वरकों और स्थानीय स्तर पर उपलब्ध गोबर खाद कम्पोस्ट, नाडेप कंपोस्ट, वर्मी कम्पोस्ट, हरी खाद के संतुलित और उचित उपयोग को बढ़ावा दे रही है।

3.0 जैव उर्वरक (Biofertilizers)

वे सूक्ष्म जीव जो पौधों में पोषक तत्वों को बढ़ाते हैं उन्हें जैव उर्वरक कहते हैं। ये सूक्ष्मजीव वायुमण्डलीय नाइट्रोजन (N_2) का स्थिरीकरण करते हैं एवं मृदा में फास्फोरस की उपलब्धता को बढ़ाते हैं। जैव उर्वरक के रूप में प्रयुक्त होने वाले मुख्य सूक्ष्मजीव राइजोबियम *(Rhizobium)*, एजोटोबैक्टर *(Azotobacter)*, एजोस्पाईरिलम *(Azospirillum)* साइनोबैक्टीरिया *(Cynobacteria)*, एजोला *(Azolla)* इत्यादि हैं।

राइजोबियम ग्राम ऋणात्मक जीवाणु है, जो पौधों की जड़ों में गाँठे बनाकर वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थिरीकरण करता है। राइजोबियम 50–150 कि.ग्रा प्रति हेक्टेयर नाइट्रोजन प्रतिवर्ष संश्लेषित करता है। राइजोबियम के अतिरिक्त एजोटोबैक्टर, एजोस्पाइरिलम 30 कि.ग्रा. प्रति हेक्टर नाइट्रोजन प्रतिवर्ष भूमि में संश्लेषित करने में सक्षम है।

साइनोबैक्टीरिया समूह में नॉस्टाक *(Nostoc)*, एनाबिना *(Anabaena)*, प्लेक्टोनिमा *(Plectonema)*, गिलियोट्राइकिया *(Gloeotricha)*, शैवाल इत्यादि आते हैं। इनमें विशिष्ट प्रकार की संरचनाएं 'हेटरोसिस्ट' पायी जाती है जिनमें नाइट्रोजन का स्थिरीकरण होता है। नाइट्रोजन स्थिरीकरण में एजोला फर्न में रहने वाला सहजीवी एनाबिना एजोली *(Anabaena azollae)* भी धान की फसल के लिए काफी लोकप्रिय है।

सारणी 1 जैव उर्वरक एवं प्रयुक्त होने वाली फसलें

अ.	नाइट्रोजन जैव उर्वरक	फसले
	राइजोबियम	दालें, मूँगफली, सोयाबीन, चना
	एजोटोबैक्टर	कपास, शहतूत, गेंहूँ, ज्वार, बाजरा इत्यादि
	एजोस्पाईरिलम	गन्ना, मक्का, धान,चारा इत्यादि
	नील हरित शैवाल	धान
	एजोला	धान
ब.	**फास्फेट विलयनकारी उर्वरक**	**फसलें**
	फास्फेट विलयन का सूक्ष्मजीव कवकमूल, स्यूडोमोनास	सभी फसले

.0 जैविक नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Biological Nitrogen Fixation)

अनेक प्रकार के सूक्ष्म जीवों द्वारा संचालित यह प्रक्रिया दो विधियों से संपन्न होती है।

4.1 असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Non Symbiotic N_2 fixation)

सूक्ष्मजीवों द्वारा मुक्त रूप से नाइट्रोजन के स्थिरीकरण करने को असहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण कहा जाता है। इस प्रक्रिया में एजोटोबैक्टर,क्लॉस्ट्रीडीयम विशेष रूप से सक्रिय होते हैं। ऐजोटोबैक्टर एक ऑक्सी, गोलाकार जीवाणु है। इसकी प्रमुख प्रजातियों में एजोटोबैक्टर एजाइल एवं ए. क्रूकोकम इत्यादि उल्लेखनीय है। धान के खेतों में रोडोस्यूडोमोनास केप्सूलेटम नाइट्रोजन स्थिरीकरण की प्रक्रिया को संपन्न करता है। इसके अतिरिक्त क्रोमेशियम, रोडोस्पाइरीलम रूब्रम इत्यादि भी उल्लेखनीय प्रजातियाँ हैं। विभिन्न नील हरित–शैवालों में गण नोस्टोकेल्स के सदस्य जैसे नॉस्टाक, एनाबिना, ऑसिलोटोरिया, स्पाइरुलिना इत्यादि प्रमुख हैं। ये अधिकांश धान के खेतों में पाए जाते हैं।

4.2 सहजीवी नाइट्रोजन स्थिरीकरण (Symbiotic Nitrogen fixation)

इस प्रक्रिया के अंतर्गत कुल लेगुमीनोसी के सदस्यों अथवा लेग्यूम्स (Legumes) की जड़ों में, सूक्ष्मजीवों द्वारा सहचर्य या सहजीविता की अवस्था में नाइट्रोजन स्थिरीकरण का कार्य किया जाता है। इन लेग्यूम्स की जड़ों में एक विशेष जीवाणु प्रजाति राइजोबियम लेग्यूमीनोसोरम सहजीवी के रूप में पाया जाता है। इन लेग्यूम पौधों की पार्श्व जड़ों पर राइजोबियम जीवाणु द्वारा किए गए वेधन से मूल ग्रन्थियों या गुटिकाओ (root nodules) का निर्माण होता है। ये मूल ग्रंथियाँ ही पौधों में नाइट्रोजन स्थिरीकरण की वास्तविक स्थल (actual sites) होती है। लेग्यूम पौधों की मूल ग्रंथियों की आंतरिक संरचना के अध्ययन के दौरान यह पाया गया है कि इनकी कोशिकाओं में एक लाल रंग का वर्णक पाया जाता है जिसे लेगहीमोग्लोबिन कहा जाता है। वर्णक लेगहीमोग्लोबिन का कार्य जीवाणुओं की कोशिकाओं में पाये जाने वाले नाईट्रोजिनेस एन्जाइम को सक्रिय रखते हुए श्वसन क्रिया का अनुकूलतम स्तर बनाए रखने का होता है। इसके अतिरिक्त यह नाइट्रोजिनेस एन्जाइम को मुक्त ऑक्सीजन से सुरक्षित रखने का कार्य भी करता है। लेग्यूमीनोसी के अतिरिक्त कुछ अन्य पादप कुल के सदस्यों जैसे–केसयुराइना एल्नस, साइकस, पोडोकारपरन, मायरिया इत्यादि में भी मूल ग्रंथियों का निर्माण पाया जाता है।

4.3 सहजीवी नाइट्रोजन संश्लेषण

मूल ग्रंथियों में नाइट्रोजन संश्लेषण की प्रक्रिया जीवाणुसम (Bacteroids) में संपन्न होती है। नाइट्रोजन के एक अणु का स्थिरीकरण करने हेतु 12 ATP अणुओं की आवश्यकता होती है। नाइट्रोजिनेस एन्जाइम में Fe (आयरन) और Mo (मॉलिबिडनम) धातु तत्व होते हैं। आयरन N_2 अणु को नाइट्रोजिनेस एन्जाइम से जोड़ने का काम करता है। जबकि मॉलिबिडमन N_2 अणु के बन्धों (bond N≡N) की शक्ति को कम कर तोड़ने का काम करता है।

5.0 कवक मूल (Mycorrhiza)

कवक मूल एक पारस्परिक सहयोगी संबंध है जो पौधों की जड़ों
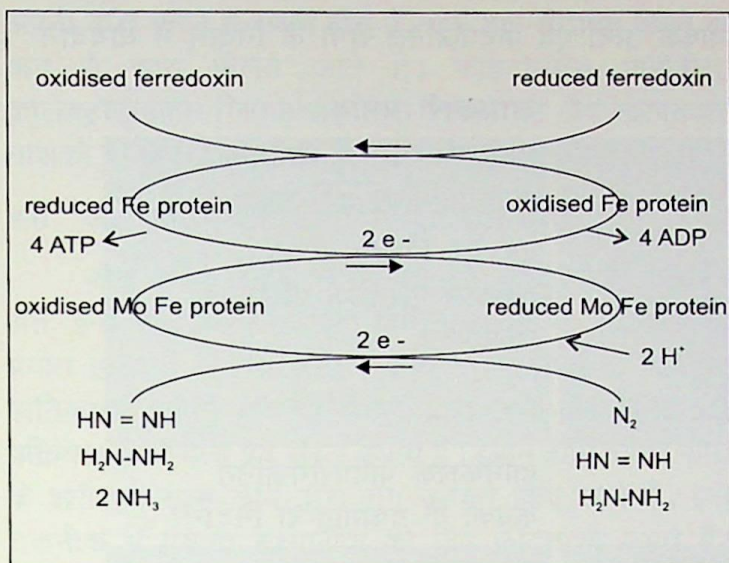
चित्र–1 जैविक नाइट्रोजन संश्लेषण
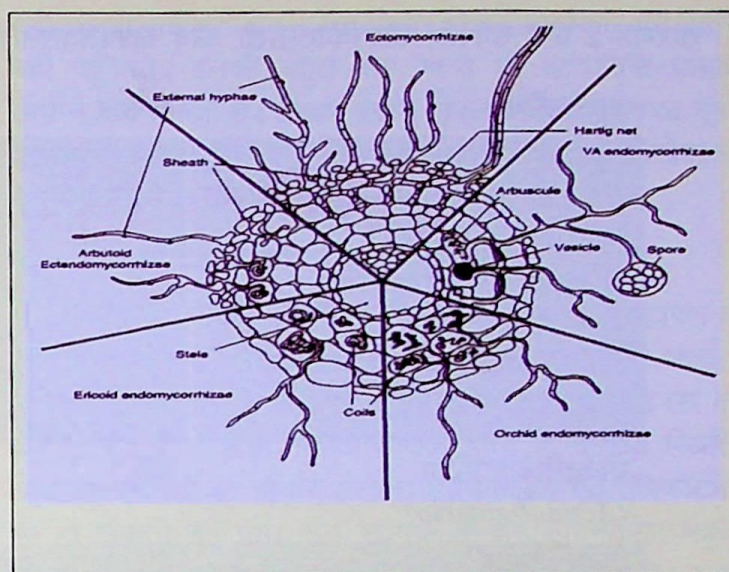
चित्र–2: विभिन्न प्रकार के कवक मूल

एवं बेसिडियोमाइसिटिस फंगस (कवक) के साथ विकसित होता है।
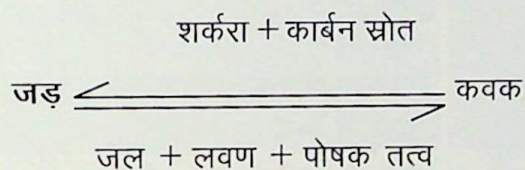
5.1 कवक मूल के प्रकार

(क) **बाह्य कवक मूल** (Ectomycorrhiza): ये मुख्यतः जंगलों के पेड़ों की जड़ों में पाये जाते हैं। इनमें एक खास संरचना आवरण पाया जाता है। जड़ों के अन्दर उपस्थित कारटेक्स कोशिकाओं के बीच उपस्थित खाली जगह में ये कवक तंतुओं का एक जाल बनाती है जिसे हार्टिग नेट कहते हैं। ये मेकरोस्को पिक फ्रूटिंग बाडीज बनाते हैं।

(ख) आन्तरिक कवक मूल (Endomycorrhiza): ये परजीवी होते हैं, इस प्रकार के कवक मूल में एक खास संरचना जिसे अरबसकुली (Arbusculae) कहते हैं, में मौजूद होती है जो जड़ और कवक के बीच पोषक तत्वों के स्थानांरतण का कार्य करती है। इनमें एक खास किस्म के प्राप्तकर्ता (host) की जरूरत नहीं होती, ये अधिकांशतः सभी पेड़ एवं पौधों की जड़ों में संपर्क स्थापित कर लेते हैं। ये जड़ों के छद्म हिस्से से पुटिकाएं निष्कासित करते हैं जो भोजन का संचय एवं कार्यिक जनन का काम करती हैं।

5.2 माइकोराइजा (कवक मूल) के लाभकारी प्रभाव

- जल अवशोषण एवं पोषक तत्वों के ग्रहण में पौधों को सहायता प्रदान करना।
- पोषक तत्वों का भूमि में चक्रीकरण करना।
- पादपरोग जनित बीमारियों से बचाव, कवक जनित रोगों से छुटकारा, हानिकारक सूक्ष्मजीवों के साथ पारस्परिक भेद, जल, वायु, पोषक तत्वों के लिए हानिकारक सूक्ष्मजीवों से संघर्ष।
- जड़ों की कोशिकाओं का लिग्न्वीफिकेशन, इसकी वजह से पौधों का रोग जनित बीमारियों से बचाव।
- पादपवृद्धि हार्मोन्स जैसे आक्जिन, जिबरलिन्स, साइटोकाइनिन, इत्यादि का स्रावण।
- अजैविक तनावों की परिस्थिति जैसे अत्याधिक अम्लीय, क्षारीय, सूखे, भारी धातुओं जैसे कोबाल्ट (Co), निकल (Ni), कैडमियम (Cd) से ग्रसित भूमि में पौधों की वृद्धि को बढ़ाना।
- भूमि के रखरखाव में योगदान व उर्वरा शक्ति को बढ़ाना।
- एन्टीफंगल काइटिनेस, आर्जिनाइन, फाइटोएजेग्जिन्स, ऑग्जेलिक अम्ल का स्रावण।

6.0 फास्फेट विलयनकारी सूक्ष्मजीव

कुछ सूक्ष्मजीव जैसे थायोबैसिलस, बैसिलस, स्यूडोमोनास, पैनिसिलियम आदि मृदा में उपस्थित अघुलनशील फास्फेट लवणों को घुलनशील लवणों में बदल देते हैं, फिर ये लवण फसलों को उपलब्ध हो जाते हैं। ये सूक्ष्मजीव सिडिरोफोर नामक कीलेट (chelate) अभिकर्मक

सारणी–2 जैव उर्वरक, जैव कीटनाशी, जैव खरपतवारनाशी का पोषक तत्वों एवं पादपजनित रोगों के निदान में योगदान

सूक्ष्मजीव	फसल	लाभकारी प्रभाव
प्यूडोमोनास फ्लोरिसेंस *(Pseudomonas fluorescens)* प्यूडोमोनास प्यूटिडा *(Pseudomonas putida)*	सेम, टमाटर	पौधों की वृद्धि में सहायक, फाइटोहार्मोन्स का स्रावण, फास्फेट विलयन, IAA (इन्डोल एसिटिक एसिड) उत्सर्जन।
ऐक्टिनोबैक्टीरिया *(Actinobacteria)*	गेंहूँ	हानिकारक पादपरोगजनित कवकों के दुष्प्रभाव से निदान
ऐजोटोबैक्टर *(Azotobacter)*	गेंहूँ, ज्वार, बाजरा, शहतूत, मशरूम	N_2 का स्थिरीकरण।
एजोस्पाइरिलम *(Azospirillun)*	गेंहूँ, बाजरा	उत्पादन में वृद्धि, पौधों के कुल फास्फोरस में वृद्धि, पौधों के N,P ग्रहण में वृद्धि।
बैसिलिस *(Bacillus)*	लेट्यूस, चुकन्दर, बाजरा, कैनोला	पौधे के पर्ण भाग में P,K की मात्रा में वृद्धि, मिट्टी की गुणवत्ता में वृद्धि, बीजों की मात्रा में वृद्धि।
कवक मूल (माइकोराइजा) (Mycorrhiza)	टमाटर, मक्का, सोयाबीन, नीबू, लेट्यूस, केला, अंगूर	पौधे के बायोमास में वृद्धि, प्रकाश संश्लेषण में वृद्धि, नीमैटोडस पर हानिकारक प्रभाव, P ग्रहण में वृद्धि, उत्पादन में वृद्धि।
ग्लायोक्लैडियम, *(Gliocladium)*	रबड़	पादपरोग जनित कवकों से बचाव।
ट्राइकोडरमा *(Trichoderma)*	टमाटर, चना, गेंहूँ, खरबूजा	काइटिनेस एन्जाइम का स्राव जैसमोनिक एसिड का स्राव पादपजनित रोगों के वाहकों का निदान, फ्यूसेरियम की वृद्धि को रोकना।
राइजोबियम *(Rhizobium)*, थायोबैसिलस *(Thiobacillus)*	दालें	उत्पादन में वृद्धि, पौधे के बायोमास में वृद्धि।

उत्पादित करते हैं जो पौधों के मूल क्षेत्र में उपस्थित लौह तत्वों को बांधे (chelation) रखता है। इससे लौह तत्व हानिकारक सूक्ष्मजीवों को उपलब्ध नहीं हो पाता है जिससे उनकी वृद्धि नहीं हो पाती है। कवक मूल जैसे ग्लोमस पौधों की जड़ों से सहजीवी संबंध बनाती हैं। ये कवक फास्फेट विलयनकारी होने के साथ–साथ वृद्धिकारक भी होते हैं। ये पौधों की मृदा रोगजनकों से भी सुरक्षा करते है।

7.0 जैव खरपतवार नाशी (बायोहरबीसाइड्स)

वे सूक्ष्मजीव जो खरपतवारों को नष्ट कर देते हैं, जैव खरपतवारनाशी कहलाते हैं। प्रायः इसके लिए कवकों का उपयोग किया जाता है। ये परिपोषी परिशिष्ट, बड़े पैमाने पर

अपनी वृद्धि करने में सक्षम होते हैं। एक बार संरोपित करने के बाद ये स्वयं फैलते जाते हैं। फाइटोप्थोरा पामीवोरा, कोलेक्ट्रोट्राइकम ग्लियोस्पाइरोइड्स कवकों का जैव खरपतवार नाशकों के रूप में बहुतायत में प्रयोग किया जाता है।

8.0 जैव कीटनाशी (बायोइन्सेक्टीसाइड्स):

कीट अनेक प्रकार से फसलों को नुकसान पहुँचाते हैं। अतः इन्हें नष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार के रसायनों का प्रयोग होता है जिससे निरंतर वातावरण प्रदूषित हो रहा है। हानिकारक कीटों को सूक्ष्मजीवों द्वारा नष्ट किए जाने की प्रक्रिया इकोफ्रेंडली एवं सरल उपाय है। इसमें हानिकारक कीट के शरीर में सूक्ष्म जीव द्वारा रोग उत्पन्न किए जाते हैं। इस तकनीक में प्रयुक्त सूक्ष्मजीवों को जैव कीटनाशी कहते हैं। सूक्ष्मजीव कीट के शरीर में संक्रमण उत्पन्न करके, परिवर्धन रोककर अथवा टॉक्सिन उत्पन्न कर कीट की सामान्य प्रक्रियाओं को रोक देते हैं। सूक्ष्मजीवों का प्रयोग विभिन्न बैक्टीरियल, माइकोप्लाज्मा, रिकेटिसिया, कवकों के जैविक नियंत्रण (बायोलॉजिकल कन्ट्रोल) में किया जाता है।

8.1 विभिन्न प्रकार के जैव कीटनाशक

(क) बैक्टीरियल जैव कीटनाशक

बैसिलस पोपिली, बै. मोरबस, बै. थूजीएन्सिस स्ट्रेप्टोकॉकस, स्यूडोमोनास, आदि। पुनर्योजी (recombinant) डी.एन.ए. तकनीक द्वारा बै. थ्रजीएन्सिस के क्रिस्टल प्रोटीन को विभिन्न पौधों में निवेशित करवाकर इनमें कोलियोप्टेरा, डिप्टेरा, लेपिडोप्टेरा वर्ग के कीटों के विरुद्ध प्रतिरोधकता विकसित की गई है।

(ख) कवक कीटनाशक

फाइकोमाइसिटीज, एस्कोमाइसिटीज, बेसिडियोमाइसिटी, ड्यूटरोमाइसिटीज समूह के अनेक कवक, कीटों की त्वचा को भेदकर इनके शरीर में प्रवेश कर टॉक्सिन उत्पादित करते हैं, जिससे कीट की मृत्यु हो जाती है। उदाहरणार्थः एस्पर्जिलस फ्लेवस से एफ्लो टॉक्सिन, बुवेरिया ब्रासियाना से बावेरिन उत्पादित होता है जिससे कीट की मृत्यु हो जाती है।

8.2 जैव कीटनाशकों की उपयोगिताएँ

जैव कीटनाशक विशिष्ट प्रकार के होते हैं अर्थात् ये विशेष प्रकार के हानिकारक कीटों को ही नष्ट करते हैं व लाभकारी कीटों को कोई नुकसान नहीं पहुँचाते हैं। जैव कीटनाशक, रासायनिक कीटनाशकों की तरह विषैले पदार्थ नहीं छोड़ते अतः ये जीव–जन्तुओं पर किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाते। इनकी बहुत कम मात्रा भी आवश्यक प्रभाव उत्पन्न कर सकती है। इनका प्रयोग सरल होता है। इनका चूर्ण बनाकर, जल में घोलकर छिड़काव करके, वायु में बिखेरकर उपयोग में लाया जा सकता है।

8.3 जैव कीटनाशकों की जटिल सीमाएं

उचित परिणाम प्राप्त करने के लिए अनुकूल वातावरण व सही संरोपण काल (Incubation period) का पूर्वानुमान अत्यंत आवश्यक है। उपयोग में लिए जाने वाले जीवाणु/वाइरस के बारे मे पूर्ण ज्ञान होना अतिआवश्यक होता है अन्यथा स्थिति अचानक अनियंत्रित होकर अत्यन्त हानिकारक एवं विस्फोटक भी हो सकती है। प्रायः इन सूक्ष्मजीवों का जीवनकाल बहुत छोटा होता है व इनका अवशेषी प्रभाव नगण्य होता है। अतः कुछ ही समय में कीटनाशकों का प्रभाव समाप्त हो जाता है।

9.0 सूक्ष्मजीवों का फार्मूलेशन

विभिन्न निष्क्रिय पदार्थों में द्रव्य सूक्ष्मजीवों के मिश्रण को तैयार किया जाता है जिससे इन्हें आसानी से संरक्षित किया जा सके। उन्हें पैक करने से भण्डारण एवं यातायात में आसानी होती है। विभिन्न प्रकार के पदार्थ जैसे पीट, लिग्नाइट, फार्म यार्ड खाद, चारकोल पाउडर, इत्यादि इस प्रयोग में लिए जाते हैं। विभिन्न पदार्थ जो वाहकों (carriers) का काम करते हैं उन्हें पहले पीसकर चूर्ण में तब्दील किया जाता है, फिर सुखा कर छाना जाता है, नमी 35 से 40 प्रतिशत रखने के बाद उन्हें विशेष ताप व दाब पर (autoclave) पर रखा जाता है। अंत में लाभकारी सूक्ष्मजीवों के मिश्रण को वाहकों में मिलाकर रख दिया जाता है।

सारणी–3 विभिन्न वाहक एवं उनके गुण

वाहक	जल संग्रहण क्षमता (प्रतिशत)	कार्बनिक तत्व (प्रतिशत)
चारकोल	90	77
फार्मयार्ड खाद	40–50	30
लिग्नाइट	92	28
पीट	52–120	21–56

10.0 निष्कर्ष

बढ़ती जनसंख्या, खाद्य उत्पादन की बढ़ती माँग, खाद्य सुरक्षा एवं आर्थिक विकास की बढ़ती चुनौतियों को पूरा करने में प्रचलित रासायनिक कृषि पद्धतियाँ असमर्थ साबित हो रही हैं। पर्यावरण प्रदूषण के दुष्प्रभाव से कृषि योग्य भूमि निरंतर बंजर होती जा रही है। मृदा अपरदन, भूमि में पोषक तत्वों की कमी,

पादप रोग, खरपतवार, कीट आदि फसल की पैदावार को गंभीर क्षति पहुँचाते हैं। कृषि योग्य भूमि में मुख्यतः नाइट्रोजन एवं फास्फोरस तत्वों की सीमित अथवा अल्प मात्रा को पूरा करने की भरपाई रासायनिक खादों से की जाती है। परन्तु ये रासायनिक पदार्थ जल्दी ही मिट्टी में संचित हो जाते हैं और घुलनशील आयनों में न बदल पाने की वजह से फसलों को नहीं प्राप्त हो पाते हैं। तेज बारिश में रासायनिक पदार्थ नदियों एवं जलाशयों में पहुंचकर उन्हें प्रदूषित कर देते हैं।

N,P,K, पोषक तत्व फसलों के विकास के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। खादों के दुष्प्रभाव को देखते हुए, जैव उर्वरक को रासायनिक खाद के विकल्प के रूप में देखा गया है। PGPR (प्लांट ग्रोथ प्रमोटिंग बैक्टीरिया) पौधों के जड़मूल में, जड़ों की सतह पर, जड़ों के भीतर रिक्त स्थानों में निवास करते हैं। जिनमें स्प्यूडोमोनास प्यूटिडा, स्प्यूडोमोनास फ्लोरिसेन्स अघुलनशील फास्फोरस खनिज को फास्फेट आयनों में प्रयुक्त कर पौधों की वृद्धि में सहायक होते हैं। ऐसा रिपोर्ट किया गया है कि एजोटोबैक्टर 30 प्रतिशत एवं बैसिलस 40 प्रतिशत तक पौधों की वृद्धि में सहायक हो सकते हैं/होते हैं। लाभकारी सूक्ष्मजीव न केवल पौधों की वृद्धि करते हैं, फसलों का उत्पादन बढ़ाते हैं अपितु मृदा अपरदन को रोकने, पोषक तत्वों की वृद्धि, मिट्टी की संरचना में सुधार लाते हैं। इसलिए हम यह कह सकते हैं कि सूक्ष्मजीव मिट्टी के प्राकृतिक पारिस्थिकी तंत्र (ecological system) के महत्वपूर्ण घटक हैं।

सूक्ष्मजीवों की असीम क्षमता एवं उनके लाभकारी प्रभावों के सफलतापूर्वक निष्पादन करने के लिए नये आनुवंशिक रूप से परिवर्तित/आनुवंशिक संशोधित, माइक्रोबियल इनोकुलेन्ट्स (सूक्ष्मजीव पोषक तत्व) का वाणिज्यिक उत्पादन किए जाने की आवश्यकता है। परंतु फिर भी जैव सुरक्षा की दृष्टि से इनके दूरगामी पर्यावरण व परिस्थिति के प्रभावों का गहन परीक्षण किया जाना जरूरी है।

संदर्भ

1. शर्मा, सत्यवती वासुदेवन, पदमा; प्रसाद, राजेन्द्र माइकोराइजाः ए पोंटिशियल फंगल बायोफर्टिलाइजर पुस्तिका, ग्रामीण विकास एव प्रौद्योगिकी केन्द्र, आई. आई.टी. दिल्ली पृ. 21।

2. त्रिवेदी, पी.सी.; शर्मा, निरंजन; धनखड़, आर.एस.; 2007 पादप कार्यिकी जैव रसायन एवं जैव प्रौद्योगिकी, कौस्तुभ प्रिंटर्स, जयपुर, पृ. 138।

3. भारत 2010, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, पृ. 1367।

4. शर्मा, सत्यवती; मिश्रा, सीमा; सिंह, अनिल प्रताप; वासुदेवन, पद्मा; 2009 स्ट्रेटजी फॉर आग्युमेंटिग सॉयल राइजोस्फेयरः माइकोराइजा पोटेन्शियल टेक्नॉलोजी, आई.ए.आर.आई., नई दिल्ली पृ. 88–104।

महंगाई तथा खाद्य सुरक्षा – सामाजिक व आर्थिक समीक्षा

प्रो. वी. उपाध्याय
मानविकी एवं समाज विज्ञान विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

दुनिया के बड़े मुल्कों के मध्यस्थ भारत में महंगाई दर आज सबसे अधिक है। 16 महीनों के अन्तराल के बाद थोक मूल्यों पर आधारित महंगाई दर अब 10 प्रतिशत के ऊपर चल रही है। 2009 के अन्तिम महीनों में खाद्य पदार्थों की महंगाई 20 प्रतिशत के ऊपर चल रही थी। 2010 के पहले 6 महीनों में यह 16 प्रतिशत के ऊपर बनी रही है। समाज के गरीब तबके इससे सबसे अधिक प्रभावित हैं, जिनकी खाद्य सुरक्षा भी खतरे में पड़ गई है। कीमतों की समस्या का यह भयावह रूप उदारीकरण के दौर में कई बार आया है। तीव्र महंगाई ने उदारीकरण, निजीकरण तथा नियमन घटाने संबंधी उनकी अवधारणाओं जिन्होंने कम एवं स्थायी कीमतों का आश्वासन दिया था, को ध्वस्त कर दिया है। अस्थिरता पैदा करने वाले आर्थिक प्रभावों के अलावा महंगाई की इस तीव्रता ने करोड़ों लोगों की निगाहों में सरकार की वैधता पर भी प्रश्नचिह्न लगा दिया है। इस लेख में हमने मौजूद दौर में महंगाई के तीव्रीकरण के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन किया है। साथ ही उदारीकरण से संबंधित बीस साल की इस समस्या से जुड़े अनुभवों का भी विश्लेषण किया गया है। तीव्र महंगाई का लोगों की क्रयशक्ति तथा खाद्य सुरक्षा से क्या संबंध हैं इन्हें भी उजागर करने की कोशिश की गई है।

2.0 महंगाई

2008 के मध्य से शुरु हुई वैश्विक आर्थिक महामंदी से पहले बढ़ती हुई महंगाई विश्व के अधिकतर हिस्सों में एक गंभीर समस्या बनी हुई थी। यह विश्व भर में वस्तुओं की कीमतों में उछाल का समय था। कच्चे तेल तथा खाद्य पदार्थ इसके सबसे अधिक प्रभावित क्षेत्र थे जहां कीमतें आसमान को छू रही थीं। पाँच साल की अल्पावधि में तेल की कीमतें 25 यू.एस. डालर से बढ़कर 147 यू.एस. डालर प्रति बैरल हो गई। अधिकतम खाद्य पदार्थों की कीमतें रिकार्ड स्तर तक बढ़ीं। चावल की कीमतें 383 यू.एस. डालर से बढ़कर करीब 1000 यू.एस. डालर प्रति टन हो गयी। वैश्विक मंदी के कारण कच्चे तेल तथा अन्य प्रमुख वस्तुओं की कीमतें तेजी से गिरी जिसके परिणामस्वरूप प्रायः सभी जगह महंगाई के स्तर में भी गिरावट आई।

महंगाई पर मंदी का असर भारत में भी देखा गया। अगस्त 2008 के शुरू में, थोक कीमत सूचकांक (WPI) पर आधारित महंगाई की वार्षिक दर 12.63 प्रतिशत थी जो पिछले 16 साल में सबसे अधिक थी। आर्थिक मंदी के कारण सितम्बर 2008 से फरवरी 2009 तक थोक कीमत सूचकांक में लगातार गिरावट दर्ज की गई जिसके कारण इस सूचकांक पर आधारित महंगाई दर में भी तीव्र गति से कमी आई। कुछ महीने शून्य से नीचे रहने के बाद सितम्बर 2009 में थोक कीमत सूचकांक पर आधारित महंगाई दर पुनः धनात्मक हो गई। पर ऋणात्मक स्तर से 10 प्रतिशत तक यह मात्र 6 महीनों में ही पहुंच गयी। थोक सूचकांक पर आधारित महंगाई दर फरवरी 2010 से 10 प्रतिशत के स्तर के आसपास मंडरा रही है।

थोक कीमत सूचकांक (यह 1993–1994 में 100 था) जिसका आधार वर्ष 1993–94 है, अप्रैल 2010 में 253.7 था। अप्रैल 2010 में एक रुपये की क्रय शक्ति 1990–91 में 29 पैसे के बराबर थी। दूसरे शब्दों में, इस अन्तराल में रुपए की क्रय शक्ति में 70 प्रतिशत गिरावट आ गई। औद्योगिक मजदूरों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक (CPI-IW) (नीचे दिया हुआ स्पष्टीकरण देखिए) के आधार पर तो रुपये की क्रयशक्ति में गिरावट और भी तेज हुई है। इस आधार पर अप्रैल 2010 में रुपये की क्रयशक्ति 1990–91 में 25 पैसे के बराबर मात्र रह गई।

थोक कीमत सूचकांक के अनुसार प्राथमिक वस्तुओं, जिनका सूचकांक में 22.02 प्रतिशत भार है, की अप्रैल, 2010 में महंगाई दर 13.88 प्रतिशत थी। उत्पादित वस्तुओं (जिनका भार 63.75 प्रतिशत है) की महंगाई दर 6.70 प्रतिशत थी तथा तेल, ऊर्जा, बिजली एवं स्नेहक (lubricants) समूह (जिनका

तालिका 1 रुपए की क्रयशक्ति पैसों में (आधार 1990–91=100 पैसे)

वर्ष / अवधि	मात्रा	
	WPI पर आधारित	CPI-IW पर आधरित
1990–91	100	100
1993–94	74	75
1997–1998	55	53
2000–2001	47	43
2006–2007	36	34
2009–201	330	26
अप्रैल 2010	29	25

भार 14.25 प्रतिशत है) की महंगाई दर 12.55 प्रतिशत थी। इन आंकड़ों से साफ प्रतीत होता है कि अनिवार्य वस्तुओं की महंगाई दर सबसे तेज रही है। इसका सीधा अर्थ यह निकलता है कि गरीब वर्ग महंगाई की बीमारी से सबसे अधिक पीड़ित है।

है, विविध सामाजिक वर्गों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक (CPI)। थोक कीमत सूचकांक के मुकाबले इन सूचकांकों में आवश्यक वस्तुओं को अधिक भार दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर थोक कीमत सूचकांक में 25.43 प्रतिशत की तुलना में औद्योगिक मजदूरों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक में खाद्य पदार्थों का भार 46.20 प्रतिशत है।

इस मौजूदा तीव्र महंगाई के दौर में, CPI पर आधारित महंगाई दरें WPI पर आधारित दर के मुकाबले 2008 से लगातार हर महीने में बहुत ज्यादा रही है। जैसा कि तालिका–2 में देखा जा सकता है, जून 2009 से अक्टूबर 2009 तक 5 महीनों में लगातार यह अन्तर 10 प्रतिशत अंकों से अधिक रहा है। इस तरह से इस महंगाई के मौजूदा दौर में WPI जनमानस पर कीमतों में वृद्धि के प्रभाव को मापने में पूर्णतया असफल साबित हुआ है।

जैसा कि यह तालिका दर्शाती है, CPI पर आधारित महंगाई दर इस मौजूदा महंगाई के दौर में बहुत ऊँची रही है। इसका कारण यह है कि खाद्य पदार्थों (अनाज, दाल, चीनी,

तालिका 2 : CPI-IW और WPI पर आधरित महंगाई दरें

महीना	WPI		CPI-IW	
	2008–09	2009–10	2008–09	2009–10
अप्रैल	–	1.3	–	8.7
मई	–	1.4	–	8.6
जून	–	–1.0	–	9.3
जुलाई	–	–0.5	–	11.9
अगस्त	–	–0.2	–	11.7
सितम्बर	–	0.5	–	11.6
अक्टूबर	–	1.5	–	11.5
नवम्बर	8.5	4.8	10.4	13.5
दिसम्बर	6.1	7.3	9.7	15.0
जनवरी	5.0	9.43	10.4	16.22
फरवरी	3.5	10.06	9.6	14.86
मार्च	1.2	9.90	8.0	14.86

सब्जी तथा फल) के दाम इस अन्तराल में बहुत तेजी से बढ़े हैं।

यहां यह ध्यान देने योग्य है कि प्रायः थोक कीमत सूचकांक आम आदमी के संदर्भ में कीमत वृद्धि की सही तस्वीर पेश नहीं करता क्योंकि वह चुनी हुई वस्तुओं (जिनमें अंतरवर्ती वस्तुएँ शामिल हैं) की थोक कीमतों पर आधारित होता है। थोक कीमत सूचकांक की गणना में सेवाओं को शामिल नहीं किया जाता है। खुदरा कीमतों में बदलाव का आम जीवन पर प्रभाव समझने का बेहतर जरिया

2008–09 तथा 2009–10 दोनों वर्षों में CPI-IW पर आधारित खाद्य पदार्थों की महंगाई दर 10 प्रतिशत के ऊपर बनी रही है। ग्रामीण मजदूरों के उपभोक्ता कीमत सूचकांक (CPI-RL) के आधार पर खाद्य पदार्थों की महंगाई दर भी इसी तरह की गति बनाये रही। अप्रैल 2008 में 5 प्रतिशत के स्तर से शुरु हो कर, WPI पर आधारित खाद्य पदार्थों की महंगाई दर

मई 2009 में 10 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गयी और तब से इसमें तीव्रीकरण होता गया है। दिसम्बर 2009 में WPI, CPI-RL और CPI-IW पर आधारित खाद्य पदार्थों की महंगाई दरें क्रमशः 19.77, 20.43 तथा 21.29 प्रतिशत थीं।

2009 में अंतिम तीन महीनों में वस्तु संबंधी आंकड़ों को देखने से अनिवार्य वस्तुओं से जुड़ी महंगाई दरों की गंभीरता का अंदाजा लगाया जा सकता है (देखें तालिका–3)। यहां यह दोहराना जरूरी नहीं है कि आवश्यक वस्तुओं की कीमतों में इजाफे का अत्यधिक असर गरीब जनता, खासतौर पर खेतिहर मजदूर पर पड़ रहा है। गति में थोड़ी कमी के वाबजूद खाद्य पदार्थों की महंगाई दर 2010 के शुरुआती महीनों में 16 प्रतिशत से ऊपर बनी रही। मई 2010 के प्रथम सप्ताह में इसका स्तर 16.49 प्रतिशत था जहां दालों तथा फलों की महंगाई दरें क्रमशः 33.65 तथा 17 प्रतिशत थीं।

भारत में खाद्य पदार्थों की ऊंची कीमतों के कई कारण हैं। इन पर इस लेख में आगे विचार किया गया है। लेकिन जहां तक इस मौजूदा दौर में खाद्य पदार्थों की कीमतों में उछाल का सवाल है, इसका महत्वपूर्ण तथा तात्कालिक कारण 2009–10 में आये सूखे से खरीफ की फसल में आयी उत्पादन में कमी है।

लेकिन अब महंगाई खाद्य क्षेत्र तक ही सीमित नहीं है, यह अब गैर खाद्य क्षेत्रों में भी फैल चुकी हैं। सरकार अब यह खुद स्वीकार करती है कि महंगाई के पीछे पहले आपूर्ति–संबंधी कारण महत्वपूर्ण थे पर अब यह काफी व्यापक हो गयी है। जैसा ऊपर किए गए विवेचन से पता चलता है कि WPI पर आधारित तेल, ऊर्जा, बिजली तथा स्नेहक समूह की महंगाई दर अप्रैल 2010 में 12.55 प्रतिशत थी। बजट में पेट्रोल तथा डीजल पर एक्साइज तथा कस्टम ड्यूटी का बढाना, राज्य सरकारों द्वारा पेट्रोलियम पदार्थों पर अतिरिक्त कर लगाना आदि इस क्षेत्र में कीमतें बढ़ने के पीछे महत्वपूर्ण कारण रहे हैं। हाल ही में केन्द्र सरकार द्वारा पेट्रोलियम पदार्थों (पेट्रोल, डीजल व गैस) के दाम बढाने तथा पेट्रोल को नियंत्रणमुक्त करने का आगे आने वाले समय में इस क्षेत्र में कीमतों पर असर पड़ना निश्चित है। अन्तरराष्ट्रीय बाजार में लोहा, स्टील व अन्य धातुओं की बढ़ती कीमतों का असर इन पदार्थों की भारतीय बाजार में कीमतों पर भी पड़ रहा है।

अगर आर्थिक सुधारों से जुड़े दो दशकों को देखा जाये तो यह नितांत स्पष्ट होता है कि इस सारे समय को तीव्र महंगाई की समस्या से ग्रसित कहा जा सकता है। 1990–91 से 2008–2009 तक स्थिर कीमतों पर सकल राष्ट्रीय उत्पाद (at factor cost) 3.87 गुना बढ़ा, वहीं यह चालू कीमतों पर 10.26 गुना बढा। इन दो मापों के अंदर भारी अन्तर का कारण यह है कि इस दौरान कीमतों में 164 प्रतिशत बढोतरी हुई। CPI-IW पर आधारित महंगाई की औसतन वार्षिक दर इस दौरान 6.82 प्रतिशत रही है।

तालिका 3 : आवश्यक वस्तुओं की महंगाई दरें

वस्तु	महीना, 2009	महंगाई दर (प्रतिशत में)
चावल	अक्टूबर	14.29
गेहूं	नवम्बर	12.66
दाल	दिसम्बर	41.58
सब्जियां	दिसम्बर	39.22
आलू	दिसम्बर	123.85
प्याज	अक्टूबर	33.10
फल	नवम्बर	10.64
दूध	दिसम्बर	13.36
अंडे, मीट व मछली	नवम्बर	29.75
चीनी	दिसम्बर	53.98

1991 के बाद के समय में हमारी अर्थव्यवस्था में मृद्रीकरण (monetization) की विशेष प्रगति हुई है। यह M_3 और सकल घरेलू उत्पाद (चालू कीमतों पर) के बढ़ते अनुपात से साफ जाहिर होता है। 1990–91 से 2008–09 तक के समय में मुद्रा की आपूर्ति में 18 प्रतिशत प्रति साल की दर से बढ़ोतरी हुई है जिससे कीमतों पर बढ़ने की तरफ दबाव निरंतर बना रहा है।

नब्बे के दशक के शुरुआती साल तीव्र महंगाई दर से खासतौर पर प्रभावी रहे हैं। 1990–91 तथा 1998–99 के बीच

उपभोक्ता कीमतें 115 प्रतिशत बढ़ी तथा CPI-IW पर आधारित खाद्य पदार्थों की कीमतें और भी तेजी से 124 प्रतिशत से बढ़ीं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद के समय में इतने लम्बे समय के लिए उतनी तीव्र महंगाई का दौर पहले कभी नहीं देखा गया। WPI पर आधारित महंगाई दर भी 1995–96 तक काफी ऊँची बनी रही।

1999–2000 से 2005–06 के बीच महंगाई प्रायः कम रही। 2000–01 से 2002–03 तक कम महंगाई दर का सीधा संबंध इस दौरान आर्थिक उन्नति की धीमी गति से रहा। पर जब 2003–04 से तेज आर्थिक विकास की प्रक्रिया चालू हुई तो 2006–07 से अर्थव्यवस्था में महंगाई का दबाव भी उत्पन्न होने लगा। पर 2006–07 के बाद के समय की एक खास विशेषता यह रही है कि जहां एक ओर WPI पर आधारित महंगाई दर अर्थव्यवस्था में उतार–चढ़ाव के साथ ऊंची नीची होती रही है वहीं दूसरी ओर उपभोक्ता तथा खाद्य वस्तुओं की महंगाई दरों ने लगातार एक ऊंचा स्तर बनाया हुआ है। यह समय वही है जिसमें UPA की सरकार का शासन रहा है। इसे मात्र एक संयोग नहीं कहा जा सकता। किसी न किसी तरह से इतने लम्बे समय तक खाद्य पदार्थों की तीव्र महंगाई दर के लिए सरकार की आर्थिक नीतियाँ दोषी रही हैं।

3.0 खाद्य सुरक्षा

सरकार की लम्बे समय से चली आ रही बाजार समर्थक नीतियों के कारण देशी व विदेशी निजी ताकतों ने खाद्य अर्थव्यवस्था के प्रबंधन में बहुत बड़ा स्थान पा लिया है। खाद्यान्नों के व्यापार से जुड़ी हुई देशी–विदेशी कम्पनियां, बिचौलिये, सटोरिये तथा जमाखोर अब इस स्थिति में पहुंच गए है कि खाद्यान्नों की कीमतों तथा लोगों को खाद्यान्नों की उपलब्धता संबंधी महत्वपूर्ण निर्णय अब इनके द्वारा लिए जा रहे हैं। सरकार की गेंहूँ तथा चावल के न्यूनतम समर्थन मूल्य संबंधी नीतियों का भी खाद्य पदार्थों की कीमतों को लगातार ऊपर बढ़ाने में योगदान है। लेकिन खाद्य पदार्थों तथा अन्य कृषि वस्तुओं में तीव्र महंगाई का सबसे प्रमुख कारण माँग तथा आपूर्ति का संतुलन बिगड़ना है। जनसंख्या बढ़ने से तथा तेजी से आय में वृद्धि से खाद्य पदार्थों तथा अन्य कृषि वस्तुओं की माँग तीव्र गति से बढ़ रही है जबकि इन आवश्यक वस्तुओं की आपूर्ति में मांग की गति के अनुसार वृद्धि नहीं हो रही है। जिसके कारण इनकी कीमतें तेजी से बढ़ रही हैं।

भारत के सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का हिस्सा लगातार गिरता जा रहा है। पिछले साल के मुकाबले, 2009–10 में गेहूँ की अच्छी फसल के बावजूद खाद्यान्न उत्पादन में 7 प्रतिशत कमी आयी है। यह इसलिए हुआ है कि खरीफ सीजन में चावल व अन्य खाद्यान्नों की फसलों की सूखे की मार से काफी हानि हुई। 2008–09 में 234 मिलियन टन के मुकाबले 2009–10 में कुल खाद्यान्न उत्पादन 218 मिलियन टन ही रहा। 2009–10 को एक असामान्य कृषि वर्ष मानकर अगर कृषि क्षेत्र की 2008–09 की स्थिति पर ध्यान दिया जाए तो यह तथ्य सामने आता है कि सकल घरेलू उत्पाद में कृषि क्षेत्र का हिस्सा मात्र 13.2 प्रतिशत था। वैश्वीकरण से जुड़े 1990–91 से 2008–09 के समय में कृषि उत्पादन की विकास दर 1.3 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। इस दौरान जनसंख्या में वृद्धि की दर 1.8 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। इस तरह से, प्रति व्यक्ति कृषि उत्पादन में वास्तव में गिरावट दर्ज की गई है। इस दौरान अगर तुलना करें तो औद्योगिक उत्पादन में विकास दर 6.3 प्रतिशत प्रति वर्ष रही है।

इस दौरान खाद्यान्न उत्पादन की विकास दर 1.56 प्रतिशत प्रतिवर्ष रही है। क्योंकि यह जनसंख्या वृद्धि की दर से कम है, समय के साथ प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उत्पादन कम होता गया है। 2001–08 के दौरान भारत में खाद्यान्नों का औसत उपभोग 444 ग्राम प्रति व्यक्ति प्रतिदिन का था जो 1960 के कठिन दशक के दौरान (जो PL 480 के अन्तर्गत बड़े स्तर पर गेहूँ के आयात के लिए प्रसिद्ध है) औसत उपभोग स्तर से भी कम था।

प्रायः यह तर्क दिया जाता है कि एक औद्योगिक विकास की ओर उन्मुख देश में कृषि क्षेत्र के हिस्से में गिरावट एक स्वाभाविक प्रक्रिया है और अगर किसी देश में खाद्यान्नों का उत्पादन वहां की जनता की माँग को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है तो इनका आयात किया जा सकता है। पर यह तर्क हमारे जैसे देश के लिए पूर्णरूप से असंगत है। जहां अभी हाल में जारी संयुक्त राष्ट्र विश्व खाद्य कार्यक्रम की रिपोर्ट, जिसे एम. एस. स्वामीनाथन अनुसंधान फाउन्डेशन के साथ संयुक्त रूप से तैयार किया गया, के अनुसार भारत में 23 करोड़ गरीब ग्रामीण हैं जो अल्पपोषित हैं तथा विश्व में भूखे लोगों की संख्या के 50% लोग भारत में रहते हैं। भारत में मरने वाले आधे बच्चों की मौत के लिए कुपोषण उत्तरदायी है। एम.एस. स्वामीनाथन के अनुसार, "खाद्यान्नों के आयात के समर्थन में प्रायः दिए जाने वाला प्रस्ताव इस बात को नजरअंदाज करता है कि कृषि हमारे देश में मात्र खाद्यान्न उत्पादन की मशीन नहीं है। यह हमारी 60% जनता के लिए जीविका की सुरक्षा सिस्टम का मुख्य स्तंभ है। हमारे देश की मौजूदा परिस्थितियों में खाद्यान्नों के आयात का मतलब है कृषि कार्य में लगे हुए पुरुषों और महिलाओं के लिए बेरोजगारी व विपत्ति का आयात"। (दि टाइम्स ऑफ इन्डिया, अक्टूबर 2, 2009)।

अगर एक दीर्घकालीन दृष्टि से देखा जाये तो खाद्यान्न क्षेत्र में आपूर्ति व माँग के बीच असंतुलन एक ऐसी गंभीर

समस्या है जिसका समाधान आसान नहीं होगा। बावजूद इस तथ्य के कि भारत में खाद्यान्न के निर्यात के लायक अतिरेक (सरप्लस) नहीं है, भारत अगर 1991 से लेकर अब तक (1993 व 1994 को छोड़कर) शुद्ध निर्यातक का रोल अदा कर रहा है, तो वह इसलिए है कि अत्यंत गरीबी के कारण लाखों की तादाद में लोग पर्याप्त मात्रा में खाने की चीजें खरीद नहीं पाते । 2008 में भारत ने 14.4 मिलियन टन अनाज का निर्यात किया। इतना निर्यात अभी तक किसी एक साल में पहले नहीं किया गया था। पर यह स्थिति बहुत ज्यादा दिनों तक नहीं चल सकती।

चावल की उपज (Yield) में धीमी प्रगति तथा जनसंख्या व आय की वृद्धि के कारण बढ़ती मांग के मिले–जुले प्रभाव से भारत के 2020 तक एक शुद्ध (नेट) आयातक बनने की आशंका है। ऐसी स्थिति में जहां विश्वस्तर पर चावल का निर्यात योग्य अतिरेक (सरप्लस) कोई खास नहीं है, भारत को चावल आयात करने में कैसी मुश्किलों का सामना करना पड़ेगा इसका अंदाजा लगाना काफी सरल है।

दालों के मामले में तो स्थिति और भी गंभीर है। पिछले दो दशकों में दालों का उत्पादन करीब एक स्तर पर रुका हुआ है। दालों की प्रतिव्यक्ति उपलब्धता लगातार गिर रही है। यह जहां 1955 में 71 ग्राम प्रतिदिन थी अब 2007 में वह 35 ग्राम रह गयी है। भारत में अधिकतर लोग शाकाहारी हैं इसलिए दालें ही उनके लिए प्रोटीन का मुख्य स्रोत हैं। भारत हर वर्ष 20–30 लाख टन दालें आयात करता है पर यह माँग और आपूर्ति के अन्तर को (जो लगातार बढता जा रहा है) पूरा करने के लिए काफी नहीं है।

खाद्य पदार्थों की कीमतों में तेजी से वृद्धि में भारत में बढ़ती हुई आय की असमानता की भी भूमिका है। उदारीकरण के पिछले दो दशकों में देश में जिस तरह की आर्थिक उन्नति हुई है उससे असमानता अत्यधिक बढ़ी है। उन्नति का अधिकतर फायदा अमीर वर्ग को ही हुआ है। देश की अधिकतर आबादी को, जो या तो सरकारी गरीबी रेखा के नीचे हैं या थोड़ा ऊपर है इस अमीर वर्ग के फायदे वाली उन्नति से कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ है। ऐसे साधनों तथा वस्तुओं पर जिनकी आपूर्ति आसानी से नहीं बढ़ाई जा सकती अमीर वर्ग ऊंची बोली लगाकर कब्जा कर लेता है और इस तरह गरीब वर्ग उन साधनों तथा वस्तुओं से जो उनके जीवन निर्वाह के लिए अति आवश्यक हो सकती हैं, वंचित रह जाता है। यह तर्क खाद्य पदार्थों पर जिनकी उत्पादन वृद्धि की गति धीमी है पर भी लागू होता है। ऐसी स्थिति में जहां खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि की गति उतनी नहीं है, कि बढ़ती माँग को पूरा किया जा सके तो तीव्र महंगाई इन वस्तुओं का अमीर वर्ग के पक्ष में बंटवारा सुनिश्चित करने का एक सशक्त साधन बन गयी है।

गरीब लोगों को आवश्यक वस्तुओं की बढती कीमतों के कुप्रभाव से बचाने तथा उनके पौष्टिक स्तर को एक सीमा से नीचे गिरने से रोकने का कार्य हमारी सार्वजनिक वितरण प्रणाली (PDS) को सौंपा गया है। लेकिन PDS गरीब लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में पूर्ण रूप से असमर्थ है। योजना कमीशन द्वारा 2005 में कराए गए अध्ययन से पता चलता है कि उस अनाज का जिस पर सहायता (सब्सिडी) दी जाती है, 57 प्रतिशत भाग लक्षित समूहों तक नहीं पहुंच पाता और उसका 36 प्रतिशत भाग तो आपूर्ति प्रक्रिया के दौरान ही गायब कर लिया जाता है। PDS की कार्य अकुशलता के कारण सरकार द्वारा खर्च किए गए 3.65 रुपयों में से मात्र एक रुपया ही गरीबों तक पहुंचता है।

1995–96 और 2000–01 के मध्य सरकार ने खाद्यान्न खरीद की कीमतें तथा राशन की कीमतें कई बार तेजी से बढायी। इसके प्रभाव से PDS की जो नियंत्रित दामों पर अनाज उपलब्ध कराने की उपयोगिता थी वह काफी कम हुई। जून 1997 में सरकार ने लक्षित सार्वजनिक प्रणाली (TPDS) शुरू की जिसके तहत गरीबी रेखा से ऊपर वाले (APL) तथा गरीबी रेखा से नीचे वाले (BPL) परिवारों के लिए अलग–अलग राशन कीमतें घोषित की गयीं। TPDS के लागू होने के बाद APL तथा BPL दोनों कीमतों में कई बार संशोधन किया जा चुका है।

खाद्य सहायता घटाने के उद्देश्य से 2000–01 के केन्द्रीय बजट में BPL तथा APL परिवारों के लिए गेंहूँ की राशन कीमतें काफी तेजी से बढायी गयी। इस तरह से PDS गरीबों को खुले बाजार की बढ़ती कीमतों से संरक्षण देने के बजाय कीमतों में वृद्धि करने का साधन बन गया। परिणामस्वरूप, 1996–97 में PDS से खाद्यान्न की निकासी जहां 19.66 मिलियन टन थी वह घट कर 2001–02 में 13.84 मिलियन टन रह गयी। वहीं दूसरी तरफ खाद्यान्न की खरीद 1996–97 में 20.38 मिलियन टन से बढ़कर 2001–02 में 41.91 मिलियन टन हो गयी।

2002 में भारतीय खाद्य निगम (FCI) के अनाज के भंडार अनियंत्रणीय हो गये। आर्थिक लागत के आधे दामों पर भारी मात्रा में खुले बाजार में खाद्यान्न बेचने के बावजूद अनाज भंडार जुलाई 2002 में 63 मिलियन टन था। देश को अप्रत्याशित परेशानियों का सामना करने के लिए जुलाई के माह में 24.3 मिलियन टन से ज्यादा भंडार की जरूरत नहीं पड़ती। इससे ज्यादा भण्डार बनाये रखने में बहुत खर्चा आता है। जहां एक तरफ तो इतने लोग कुपोषण और अर्धभुखमरी के

शिकार हैं, वहां दूसरी ओर FCI के गोदाम अनाज से भरे थे। इसका प्रमुख कारण लोगों की क्रयशक्ति में कमी आना था। इस तरह से FCI के भरे गोदाम मात्र एक धोखा थे।

कृषि क्षेत्र में व्यापार उदार करने के लक्ष्य से राष्ट्रीय प्रजातांत्रिक मोर्चे (NDA) की सरकार ने अप्रैल, 2001 में संख्यात्मक प्रतिबंध हटा दिए। परिणामस्वरूप जुलाई 2003 तक भारत ने भारी मात्रा में गेहूँ व चावल का निर्यात किया। यह ऐसी स्थिति में किया गया जहां देश में बड़ी संख्या में लोग भुखमरी के शिकार थे। देश से 2002–03 व 2003–04 में क्रमशः 12.4 व 10.1 मिलियन टन खाद्यान्न का निर्यात किया गया। सरकार विदेशी नागरिकों को खाद्यान्न (गेहूँ तथा चावल) उन्हीं दामों पर (FCI की आधी आर्थिक लागत पर) बेच रही थी जिन पर वह BPL परिवारों को बेच रही थी। सरकार ने BPL परिवारों के लिए राशन दामों में कमी करने से इस वजह से इन्कार कर दिया था कि उससे सब्सिडी का भार बढ़ेगा। लेकिन उसी समय वह खाद्यान्नों के निर्यातों पर भारी सब्सिडी प्रदान कर रही थी। इस तरह भारत के नागरिकों द्वारा दिए करों पर आधारित खाद्य सहायता का फायदा विदेशी नागरिक उठा रहे थे न कि भारत के गरीब परिवार जिन्हें सहायता दी जानी थी।

2002–03 से 2006–07 तक सरकार ने न्यूनतम समर्थन मूल्यों में ज्यादा बढोत्तरी नहीं की। इसके पीछे खाद्यान्नों के उत्पादन में गेहूँ व चावल की फसलों की अत्यधिक प्रधानता से जुड़ी समस्याओं को हल करने का था। इस नीति के कारण केन्द्रीय खाद्य भंडार के स्तरों में तेजी से गिरावट आयी।

गेहूँ के न्यूनतम समर्थन मूल्य 2006–07 में 750 रु. प्रति क्विंटल से बढ़ाकर 2007–08 में 1000 रु. प्रति क्विंटल कर दिए गए तथा इसे 2009–10 में 1100 रु. प्रति क्विंटल कर दिया गया। इसी तरह चावल के न्यूनतम समर्थन मूल्य 2006–07 में 580 रु. से 2009–10 में 950 रु. प्रति क्विंटल कर दिया गया। खाद्य महंगाई को उँचे स्तर पर बनाए रखने में न्यूनतम समर्थन मूल्यों में इस तरह की बढ़ोतरी की अहम भूमिका रही है और इसके कारण केन्द्रीय भंडार में अवांछनीय एवं अनियंत्रित वृद्धि हुई है। जनवरी 2010 में अनाज के भंडार का स्तर 47 मिलियन टन था जबकि बफर स्टॉक प्रतिमानों के अनुसार 20 मिलियन टन ही पर्याप्त था। इस साल रबी के उपज से नई खरीद को शामिल करने पर देश में अनाज भंडार की हालत जुलाई 2002 की तरह बन रही है जब अनाज भंडार का स्तर 60 मिलियन टन से अधिक था।

सरकार द्वारा इस स्तर पर अनाज इकट्ठा करना एक तरह से जमाखोरी ही है। बाजार से अनाज हटाने से खुले बाजार में खाद्यान्न की कीमतें पहुंच के बाहर हो जाती हैं जिससे बाजार पर निर्भर आम आदमी की खाद्य असुरक्षा बढ़ती है। सरकार का बाजार समर्थक वैचारिक सोच उसे इस अनाज के बड़े भंडार का खुले बाजार में मूल्यों पर लगाम लगाने तथा देश के लाखों कुपोषित एवं भूखे नागरिकों की खाद्य सुरक्षा बढ़ाने के लिए उपयोग करने से रोकता है।

केन्द्र सरकार ने खाद्य सुरक्षा अधिनियम लाने का वायदा किया था परंतु इसकी कई धाराओं पर एकमतता नहीं बनने के कारण इसे अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दिया है। इस प्रस्तावित अधिनियम के दायरे में कितने गरीब परिवार आते हैं इस पर राज्य व केन्द्र सरकारों में सहमति नहीं बन पाई। साथ ही इस बात पर भी संदेह था कि क्या सरकार पर्याप्त मात्रा में इतना अनाज जुटा पायेगी कि राशन दुकानों द्वारा हर गरीब परिवार को हर महीने 35 किलो अनाज दिया जा सके।

योजना कमीशन के अनुमानों के अनुसार 2004–05 में देश में गरीबी अनुपात 27.5 प्रतिशत था। लेकिन इन सरकारी अनुमानों की कई वजहों से कड़ी आलोचना की गई है। गरीबी के आकलन की विधि की समीक्षा करने के लिए सुरेश तेन्दुलकर की अध्यक्षता में गठित कमेटी के अनुमानों के अनुसार देश में गरीबी अनुपात 37.2 प्रतिशत था। ग्रामीण विकास मंत्रालय द्वारा BPL परिवारों के आकलन की विधि सुझाने के लिए गठित कमेटी ने कैलोरी इनटेक मानदण्ड आधार पर यह सिफारिश की कि पूरी आबादी के कम से कम 50 प्रतिशत को BPL का दर्जा दिया जाना चाहिए। हालांकि 2400 कैलोरी प्रतिमान से तो यह संख्या 80 प्रतिशत पड़ती है (देखें आर्थिक सर्वे 2009–10 एवं ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना 2007–2012)।

यहां यह ध्यान रखने योग्य है कि सरकारी अनुमानों में गरीबी रेखा के जो मापदंड उपयोग में लाये जाते हैं वह सत्तर के दशक के शुरुआती सालों की देश में आर्थिक स्थिति के संदर्भ में बनाए गए थे। उस समय देश के अधिकतर लोगों के जीवन यापन का स्तर काफी नीचे था। पर उसके बाद से तेज पूंजीवादी विकास के कारण, खासतौर पर आर्थिक सुधारों से जुड़े पिछले दो दशकों में, सामान्य आर्थिक स्थिति में भारी परिवर्तन आया है। पहले सामुदायिक स्वामित्व द्वारा लोगों को जिस सहजता से प्राकृतिक संसाधन उपलब्ध थे वह स्थिति अब बाजारी ताकतों के बढ़ते प्रभाव, जमीन के उपयोग में बदलते पैटर्न, शहरीकरण तथा जनसंख्या के बढते दबाव के कारण तेजी से लुप्त हो रही है।

भारत में स्वास्थ्य सेवा सिस्टम दुनिया के सबसे अधिक निजीकृत सिस्टमों में से एक है। स्वास्थ्य पर सरकारी खर्च

बहुत कम होने के कारण स्वास्थ्य सेवाओं पर आया अधिकतम खर्चा लोग (इसमें गरीब लोग भी शामिल हैं) अपनी जेब से देते हैं। उसके कारण गरीब लोग दरिद्रता के चक्र से बाहर नहीं निकल पाते। स्वास्थ्य सेवाओं की तरह, शिक्षा के क्षेत्र में भी तेजी से निजीकरण हो रहा है। सरकारी गरीबी रेखा इस पूर्णधारणा पर आधारित है कि मूल स्वास्थ्य व शिक्षा सुविधाएँ सरकार द्वारा उपलब्ध करायी जाएंगी। पर यह पूर्वधारणा आज की परिस्थितियों में बिल्कुल लागू नहीं होती।

इन सभी कारणों से, सरकारी गरीबी रेखा जो ग्रामीण इलाकों में 356 रु. प्रतिमाह प्रति व्यक्ति एवं शहरी इलाकों में 539 रु. प्रतिमाह प्रति व्यक्ति के बेहूदा स्तर पर तय की गयी है, मौजूदा परिस्थितियों में गरीबी की स्थिति के मापदंड के रूप में पूरी तरह असफल रही है। इसका उपयोग पूरी तरह से बंद कर देना चाहिए। ज्यादा से ज्यादा इसका उपयोग देश में भुखमरी के हालातों को मापने के लिए किया जा सकता है।

खाद्य सुरक्षा प्रदान करना फिजूलखर्ची नहीं कहा जा सकता। कमजोर वर्गों के लिए यह सहायता बहुत आवश्यक है क्योंकि यह उनकी कमजोर स्थिति में मददगार होती है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि हमारी जनसंख्या का बहुत बड़ा भाग गरीबी से पीड़ित है, एक जनता–समर्थक नीतिगत ढाँचा यह माँग करता है कि खाद्य सब्सिडी जारी रखी जाए। चूंकि हमारे समाज का गरीब तबका बाजारोन्मुखी नीतियों के झटकों को सहन करने की स्थिति में नहीं है, गरीबों को सुरक्षा प्रदान करने वाले एक व्यापक ढाँचे के गठन की आवश्यकता है। बहुत सी आर्थिक, राजनैतिक एवं प्रशासनिक कमजोरियों के बाबजूद PDS आज भी अति प्रासंगिक प्रणाली है जिसे और सशक्त बनाने की जरूरत है।

उपसंहार

जैसा हमारी ऊपर की समीक्षा बताती है, सरकार महंगाई पर नियंत्रण एवं जरूरतमंद लोगों को खाद्य सुरक्षा प्रदान करने में पूर्णतया असफल साबित हुई है। इन मामलों में भारत का अनुभव उन और देशों से अलग नहीं है जहां बाजारी ताकतों का दबदबा है। 1991 के बाद के आर्थिक उदारीकरण के समय में हमारे देश में महंगाई का दबाव, कभी कम कभी ज्यादा, लगातार बना रहा है। अभी हाल में सरकार ने महंगाई नियंत्रण के जो मौद्रिक नीति (monetary policy) संबंधी कदम उठाए हैं वे इस महंगाई के चक्र पर काबू पाने के लिए काफी कमजोर हैं। जब तक सरकार महंगाई उत्पन्न करने के स्रोतों पर काबू नही करती तथा महंगाई से फायदा उठाने वाली ताकतों से सख्ती से नहीं जूझती तब तक महंगाई खासतौर पर खाद्य महंगाई की समस्या का दीर्घकालीन हल निकालना संभव नहीं है और तब तक आम आदमी की मुसीबतें बनी रहेगी और साथ ही सरकार की अमीर–समर्थक व आर्थिक उदारीकरण की नीतियों की मान्यता तथा वैधता खत्म होने की प्रक्रिया जारी रहेगी।

संदर्भ

1. भारत सरकार, वित्त मंत्रालय, आर्थिक सर्वे 2009–10।
2. भारत सरकार, योजना आयोग, ग्यारहवीं पंचवर्षीय योजना 2007–2012।

भाग–III

उन्नत भौतिक व रसायनिक पदार्थ
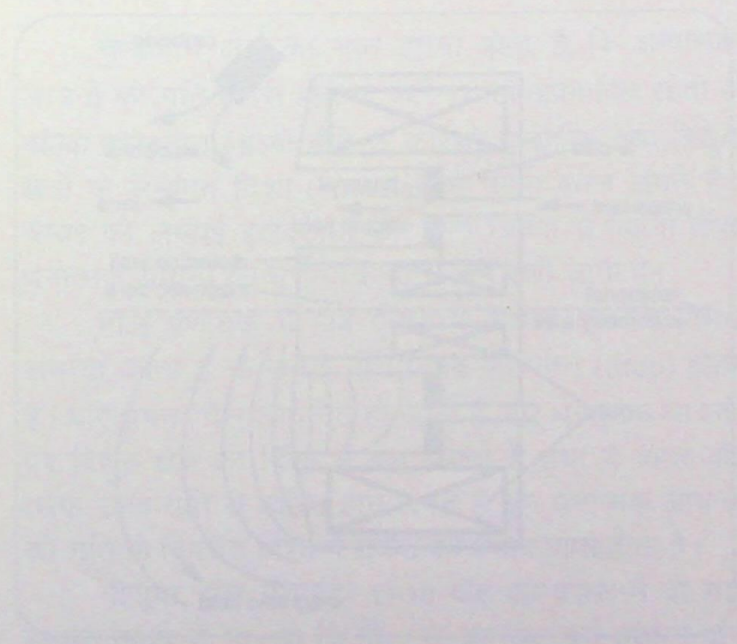
प्लाज्मा एवं अन्तरिक्ष यान में इसके अनुप्रयोग

सुखमन्दर सिंह, रविन्दर कुमार, शोध छात्र
डॉ. हितेन्द्र कुमार मलिक
भौतिकी विभाग,
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

प्लाज्माः पदार्थ की चतुर्थ अवस्था

जैसा कि आप पदार्थ की तीन अवस्थाओं से चिर–परिचित होंगे जो कि ठोस, द्रव और गैस हैं। ठोसीय अवस्था में परमाणु एक निश्चित ज्यामिति में पैकिंग किए हुए रहते हैं जो कि परमाण्विय बल द्वारा एक दूसरे से बंधे रहते हैं। उच्च तापीय ऊर्जा प्राप्त करने से ठोसीय पदार्थ द्रव अवस्था से परिवर्तित हो जाता है जिसका कोई निश्चित आकार नहीं होता है। द्रव को और ऊर्जा देने पर वह गैसीय अवस्था में बदल जाता है। गैसीय अवस्था में परमाणु एक दूसरे से स्वतंत्र रहते हैं तथा किसी भी अवस्था में गति कर सकते हैं। यदि किसी गैस को अतिरिक्त ऊर्जा प्रदान की जाए तो परमाणु के बाहरी कक्ष के इलेक्ट्रॉन अलग हो जाते हैं तथा परमाणु घनात्मक आवेशित अवस्था में परिवर्तित हो जाता है। इसे पदार्थ की चतुर्थ अवस्था भी कहा जाता है। भौतिकी और रसायन शास्त्र में प्लाज्मा आंशिक रूप से आयनीकृत एक गैस है जिसमें इलेक्ट्रोनों का एक निश्चित अनुपात किसी परमाणु या अणु के साथ बंधे होने के बजाय स्वतंत्र होता है। प्लाज्मा में धनावेश और ऋणावेश की गमन करने की क्षमता प्लाज्मा को विद्युत चालक बनाती है। जिसके परिणामस्वरूप यह दृढ़ता से विद्युत चुम्बकीय क्षेत्रों से प्रतिक्रिया करता है।

प्लाज्मा के गुण ठोस, द्रव या गैस के गुणों से काफी विपरीत हैं और इसलिए इसे पदार्थ की एक भिन्न अवस्था माना जाता है। गैस की तरह प्लाज्मा का कोई निश्चित आकार या निश्चित आयतन नहीं होता है जब तक इसे किसी पात्र में बंद न कर दिया जाए। प्लाज्मा का घनत्व $10^{7}\ m^{-3}$ से $10^{32}\ m^{-3}$ कण / घन मी. में हो सकता है तथा तापमान 10^{8} K हो सकता है।

प्लाज्मा के अनुप्रयोग

1. चूंकि प्लाज्मा का तापमान काफी उच्च होता है इसलिए इसे नाभिकीय संलयन अभिक्रिया में उपयोग करने लगे हैं।
2. प्लाज्मा का उपयोग प्लाज्मा टी.वी. बनाने में किया जाने लगा है जो कि प्रचलित कैथोड किरण दूरदर्शी का विकल्प है। इसमें चित्र और रंग दूसरे टी.वी. की तुलना में बेहतर दिखते हैं।
3. प्लाज्मा का उपयोग अन्तरिक्ष यान के ईंधन के रूप में होने लगा है।

प्लाज्मा आधारित अन्तरिक्ष यान

पृथ्वी के दूसरे ग्रह पर जाने के लिए राकेट के वेग में परिवर्तन 8 कि.मी. / से. होना चाहिए। रासायनिक राकेट की रेचन (Exhaust) गति को एक सीमा से अधिक नहीं बढ़ाया जा सकता, क्योकि राकेट की गति बढ़ाने के लिए उसी अनुपात में उसके ईंधन की मात्रा को बढ़ाना पड़ता है, जिससे राकेट का भार एक सीमा से अधिक हो जाता है। रासायनिक (Chemical) राकेट की रेचन गति लगभग 2 कि.मी. / से. होती है तथा यह अधिकतम 3.5 कि.मी. / से. तक पहुँच सकती है। इस तरह की समस्या को दूर करने के लिए वैज्ञानिकों ने प्लाज्मा पर आधारित राकेट (अन्तरिक्ष यान) का अनुसंधान किया जिसकी रेचन गति 8.30 कि.मी / से. होती है।
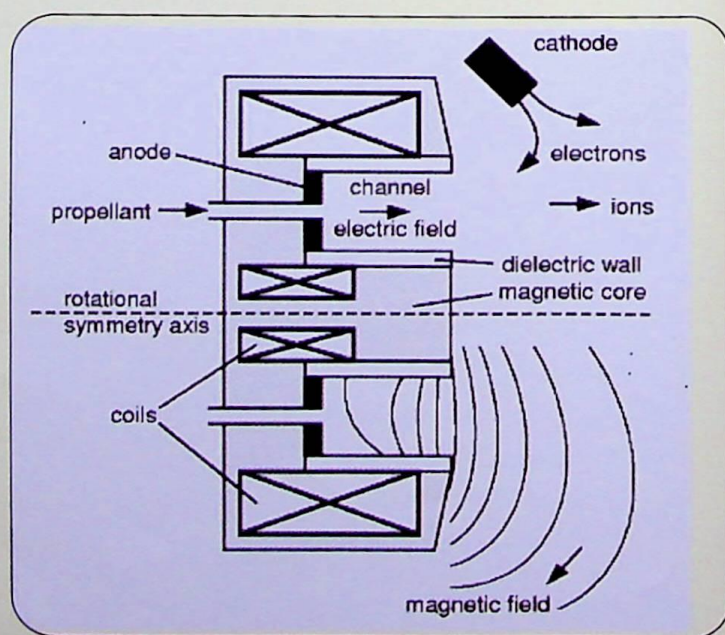
चित्र–1

चूंकि प्लाज्मा द्वारा उत्पन्न प्रणोद का मान रासायनिक रॉकेट द्वारा उत्पन्न राकेट के मान से काफी अधिक होता है, कम ईधन की मात्रा से भी रॉकेट को अन्तरिक्ष में प्रक्षेपित किया जा सकता है।

हॉल प्रणोदक (Hall Thruster) का आविष्कार सन् 1950 में हुआ था तथा बाद में 1990 में रूस के वैज्ञानिकों ने इसे पूर्णतया विकसित किया। पिछले 30 वर्षों में रूस के वैज्ञानिकों ने 100 से अधिक हॉल प्रणोदक अंतरिक्ष में प्रक्षेपित किए हैं।

एक परम्परागत हॉल प्रणोदक दो ग्रिडों ऐनोड व कैथोड से बना होता है। इसके अतिरिक्त बेलनीय (Annular) चैम्बर में प्लाज्मा गैस उत्पन्न की जाती है। यह प्लाज्मा मुख्य रूप से अक्रियाशील गैसों जीनोन (Xe) आर्गन (Ar) तथा क्रिप्टॉन (Kr) से उत्पन्न की जाती है।

जीनोन उच्च आणविक भार, उच्च परमाणु संख्या तथा निम्न आयनिक विभव के कारण अधिक उपयोगी साबित हुई है। यही नहीं यह आसानी से आयनित भी हो जाती है तथा इसके द्वारा उत्पन्न प्रणोद की मात्रा भी अधिक होती है।

हाल प्रणोदक की त्रिज्यीय (Radial) दिशा में चुम्बकीय क्षेत्र लगाया जाता है तथा चुम्बकीय क्षेत्र के लम्बवत दिशा में विद्युत क्षेत्र लगाया जाता है। (चित्र सं. 1) चुम्बकीय क्षेत्र का मान लगभग 100–200 गाऊस तथा विद्युत विभवान्तर का मान 200–300 वोल्ट होता है।

चूंकि प्लाज्मा में धनात्मक तथा ऋणात्मक आयन होते हैं, जिनकी गति विद्युत व चुम्बकीय क्षेत्र में अत्यधिक प्रभावित होती है, इन आयनों को चुम्बकीय व विद्युत क्षेत्र से त्वरित कर यंत्र के बाहर से प्रणोद उत्पन्न किया जाता है।

चुम्बकीय क्षेत्र का मान इतना होता है कि धनात्मक आयनों की गति (भारी होने के कारण) तो अप्रभावित रहती है बल्कि इलेक्ट्रोन (हल्के होने के कारण) चुम्बकीय तथा विद्युत क्षेत्रों के लम्बवत दिशा (Annular) में घूर्णन करने लगते हैं। चैम्बर की लम्बाई इलेक्ट्रोनों की घूर्णन त्रिज्या से ज्यादा तथा धनात्मक आयनों की घूर्णन त्रिज्या से कम रखी जाती है।

हॉल प्रणोदक में जब ऐनोड व कैथोड के बीच विभव लगाया जाता है तो उनके बीच विभव का पतन (drop) होता है। परिणामत: गैस आयनित हो जाती है और धनात्मक आयनों पर विद्युत क्षेत्र की दिशा में बल लगता है तथा ये बाहर की तरफ उच्च गति से त्वरित होने लगते हैं, इन धनात्मक आयनों की गति के विपरीत दिशा में राकेट को प्रणोद प्राप्त होता है।

मौजूदा हॉल प्रणोदक 1–10 वॉट की परास में दी गई इनपुट ऊर्जा से 10–30 कि.मी./से. का जेट वेग उत्पन्न कर सकते हैं।

हॉल प्रणोदक की क्षमता 50–60% की परास में होती है। चूंकि धनात्मक आयनों के कारण यंत्र का बाहरी तरफ का चैम्बर धनावेशित हो जाता है इसको उदासीन करने के लिए एक अतिरिक्त इलेक्ट्रोड लगा रहता है जो कि निरन्तर इलेक्ट्रोनों की बौछार से धनावेश को उदासीन करता रहता है। इसके कारण आवेश संचित होने की समस्या उत्पन्न नहीं होती है और इससे आने वाली धनात्मक आयनों पर धनावेश का प्रभाव मुक्त रहता है।

विद्युत व चुम्बकीय क्षेत्र के लम्बवत इलेक्ट्रोनों के घूर्णन के कारण जो धारा बहती है उसे हॉल धारा (Hall current) कहते हैं जिसके कारण इस यंत्र को हॉल प्रणोदक के नाम से जाना जाता है।

आयनों को त्वरित करने तथा प्लाज्मा को उत्पन्न करने के लिए अन्तरिक्ष यान को विद्युत ऊर्जा सोलर पैनल से प्राप्त होती है। अत्यधिक दूरी तक जाने वाले अन्तरिक्ष यान के लिए सौर ऊर्जा कम पड़ती है इसलिए उन यानों को ऊर्जा नाभिकीय अभिक्रिया से प्रदान की जाती है।

चूंकि रासायनिक ईधन से चलने वाले अंतरिक्ष यान को ऊर्जा उसके ईधन के रासायनिक बंधों के टूटने से प्राप्त होती है, इसलिए इनके संवेग (Specific Impulse) की सीमा लगभग 450 सेंकण्ड होती है जबकि हॉल प्रणोदक का विशिष्ट आवेश अत्यधिक होता है। उदाहरण के तौर पर दी गई इनपुट ऊर्जा 100 V पर यह 1000 सेकेण्ड होता है। 1 कि.मी./से. की रेचन गति 100 सेकेण्ड के संवेग के बराबर होती है तथा यह संवेग दी गई वोल्टेज पर निर्भर करता है। हॉल प्रणोदक ज्यामितीय तथा चैम्बर की प्रकृति के आधार पर दो प्रकार के होते हैं।

1. स्टेशनरी प्लाज्मा प्रणोदक (Stationary Plasma Thruster)
2. ऐनोड परत का प्रणोदक (Thruster with Anode Layer)

स्टेशनरी प्लाज्मा में चैनल की लम्बाई उसके डिस्चार्ज चैम्बर के व्यास से अधिक होती है तथा चैम्बर की दीवारें डाइइलेक्ट्रिक पदार्थ की बनी होती हैं जो कि चुम्बकीय ध्रुवों को प्लाज्मा से लगने वाले जंग से बचाता है। डाइइलेक्ट्रिक पदार्थ साधारणतयः बोरोन नाइट्राइड (BN_3) लेता है। दूसरी ओर ऐनोड वाले प्रणोदक के त्वरण चैनल की लम्बाई, चैनल की चौड़ाई से कम रखी जाती है। यद्यपि दोनों प्रकार के प्रणोदकों का संचालन कार्य तथा सिद्धान्त लगभग समान है, परन्तु चैम्बर की दीवारों के पदार्थ के भिन्न होने से इसकी भौतिकी में थोड़ा परिवर्तन आ जाता है।

डाईइलेक्ट्रिक पदार्थ वाले प्रणोदक की दीवारें उच्च ऊर्जा वाले इलेक्ट्रोनों को अवशोषित कर निम्न ऊर्जा वाले द्वितीयक इलेक्ट्रोनों को उत्सर्जित करती है जिससे चैम्बर के अन्दर इलेक्ट्रॉन की गतिज ऊर्जा कम हो जाती है। परिणामतः डिस्चार्ज इलेक्ट्रोन की ऊर्जा को नियंत्रित कर एक स्मूथ (Smooth) तथा सतत् ऐनोड व कैथोड के बीच परिवर्तनीय प्लाज्मा विभव को प्राप्त कर सकते हैं। जबकि ऐनोड परत वाले प्रणोदक की दीवारें चालकीय धातु की बनी होती हैं जिनके द्वितीयक इलेक्ट्रोनों की लब्धि (yield) बहुत कम होती है। अतिरिक्त रूप में इन दीवारों का विभव, कैथोड के विभव के बराबर रखा जाता है जो घूर्णित इलेक्ट्रोनों को चैम्बर की दीवारों के साथ संघट होने से रोकता है।

किसी को दी गई 100–1000V डिस्चार्ज वोल्टेज से उच्च धारा तथा उच्च प्रणोद घनत्व प्राप्त किया जा सकता है जोकि परम्परागत आयन प्रणोदक की अपेक्षा कहीं अधिक है।

इस तरह की दक्षता व क्षमता के कारण हॉल प्रणोदक अन्तरिक्ष यान के लिए बहुत उपयोगी साबित हुआ है। हॉल प्रणोदक से उपग्रह को भू स्थिर कक्षा (Geosynchronous Earth orbit, GEO) में रखने के लिए, उपग्रह को पृथ्वी की निम्न कक्षा (Low Earth orbits, LEO) से GEO में भेजने तथा अंतरिक्ष अनुप्रयोगों के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अलावा हॉल प्रणोदक को औद्योगिक उपयोगों जैसे धातु की प्लाज्मा प्रोसेसिंग (Processing) करने में भी काम में लाया जा सकता है। हालांकि हॉल प्रणोदक उच्च दक्षता तथा क्षमता के कारण काफी उपयोगी सिद्ध हुआ है, इसके आकाश में सफलतापूर्वक कार्य प्रणाली के लिए कुछ मुद्दों पर विचार–विमर्श करना जरूरी है,जैसे कि

1. चैम्बर की बाहरी सतह निकलने वाले प्ल्यूम (Plume) के सम्पर्क में रहती है। यह प्ल्यूम मुख्य रूप से इलेक्ट्रोनों तथा उच्च ऊर्जा वाले आयनों से मिलकर बनी होती है और इसकी प्ल्यूम का फैलाव भी अधिक होता है। परिणामतः ये प्लयूम अन्तरिक्ष यान की बाहरी सतह से अभिक्रिया करके उसको जंग लगने में सहायता करती है। कारणवश यान की दक्षता तथा जीवन काल को कम कर देती है।
2. हॉल प्रणोदक में असमान (Non-uniform) प्रकार का प्लाज्मा घनत्व तथा चुम्बकीय क्षेत्र लगा होता है। अतः चुम्बकीय क्षेत्र तथा प्लाज्मा घनत्व के प्रवणता (Gradient) के कारण अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है, जैसे कि रेले टेलर इनस्टेबिलिटी (Rayleigh Taylor Instability), लोअर हाइब्रिड अस्थिरता (Lower hybrid Instability) इत्यादि। इलेक्ट्रॉन तथा उदासीन परमाणु के बीच संघट आवृत्ति के कारण प्रतिरोधी अस्थिरता (Resistive Instability) उत्पन्न हो जाती है।

उपर्युक्त अस्थिरता को कम करने के लिए लगातार शोध जारी हैं जिससे कि प्लाज्मा घनत्व तथा चुम्बकीय क्षेत्र की निश्चित आकार एवं रुप उत्पन्न की जा सके। चुम्बकीय क्षेत्र की निश्चित प्रोफाइल एक समान प्लाज्मा विभव देगी जो कि प्रणोदक की क्षमता तथा दक्षता को बढ़ाने में सहायक होगी। हॉल प्रणोदक का भविष्य काफी उज्ज्वल है जैसे कि आजकल वैज्ञानिक इसका उपयोग देश की सुरक्षा के लिए करने लगे हैं। हॉल प्रणोदक से उच्च वेग वाली मिसाइल (Missile) भी बनाई जा सकती है।

प्लाज्मा में अस्थिरताएं (Instabilities)

ज्योति, शोध छात्रा एवं **डॉ. हितेन्द्र कुमार मलिक**
भौतिकी विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

प्लाज्मा आयनीकृत गैस तथा कुछ उदासीन कणों के समूह को दर्शाता है। यानि कि इसके मुख्य अवयव ऋणात्मक इलेक्ट्रान एवं धनात्मक आयन होते हैं। वैज्ञानिकों का मानना है कि ब्रह्माण्ड में 99 प्रतिशत पदार्थ प्लाज्मा के रुप देखा जा सकता है।

प्लाज्मा कई तरह की उत्तेजित तरंगों का समर्थन करता हैं जिन्हें हम अस्थिरताएं (Instabilities) कहते हैं। इन उत्तेजित तरंगों की स्थिति बाहरी व आंतरिक विक्षोभ (Purturbations) पर निर्भर करती है।

चुम्बकीय क्षेत्र की उपस्थिति में प्लाज्मा कई प्रकार की उत्तेजित तरंगों को पैदा कर सकता है। बाहरी विक्षोभों (Purturbations) पर निर्भर करते हुए अस्थिरताओं (Instabilities) को अलग–अलग प्रकार में विभाजित किया गया है। इनको मुख्य रूप से चार समूहों में वर्गीकृत किया गया है:

1. स्ट्रीमिंग अस्थिरता
2. रेले–टेलर अस्थिरता
3. सार्वभौमिक अस्थिरता
4. कैनेटिक्स अस्थिरता

स्ट्रीमिंग अस्थिरता

स्ट्रीमिंग अस्थिरता प्लाज्मा कणों (ऑयन एवं इलेक्ट्रान) के सापेक्ष बहाव की धाराओं की वजह से पैदा होती है जो कि आंतरिक कण धारा के साथ उनके सापेक्ष या कण बीम के प्रभाव से पैदा होता है। उदाहरण के तौर पर हम दो धारा अस्थिरता पैदा कर सकते हैं। अगर प्लाज्मा में घनत्व ढाल और एक बाहरी गैर–विद्युत लागू की जाए तो तरंगें अस्थिरता का रुप ले सकती है।

रेले – टेलर अस्थिरता

प्लाज्मा एक भारी द्रव की तरह कार्य करता है; उसको चुम्बकीय क्षेत्र की उपस्थिति में प्लाज्मा के कण घूर्णन गति करते हैं तथा चुम्बकीय क्षेत्र की रेखाओं से जुड़े होते हैं। चुम्बकीय क्षेत्र इस स्थिति में हल्के द्रव की भाँति कार्य करता है तथा दोनों द्रवों के इंटरफेस पर किसी तरंग में अस्थिरता बढ़ जाती है जिसे हम ''रेले–टेलर अस्थिरता'' कहते हैं। यह अस्थिरता गुरुत्वाकर्षण अस्थिरता भी कही जाती है जब चुम्बकीय क्षेत्र (भारी द्रव) पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण बल की वजह से पैदा होता है जो प्लाज्मा जैसे सघन घनत्व द्रव को समर्थन (support) करता है; जिसकी वजह से प्लाज्मा उत्तेजित तरंगों में अस्थिरता बढ़ जाती है।

सार्वभौमिक अस्थिरता

कुछ अस्थिरिता, प्लाज्मा में किसी चालित बल (गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र) के समर्थन के बिना ही हमेशा मौजूद होती है; जिन्हें हम सार्वभौमिक अस्थिरता कहते हैं। सार्वभौमिक अस्थिरता का कारण प्लाज्मा दबाव को माना जाता है जो कि हमेशा प्लाज्मा का विस्तार करने की कोशिश करता है। जिसकी वजह से विस्तार के रूप में ऊर्जा पैदा होती है। यह विस्तार ऊर्जा ही सार्वभौमिक अस्थिरता के लिए ड्राइविंग फोर्स का कार्य करती है।

कैनेटिक्स अस्थरिता

प्लाज्मा में एक और प्रकार की अस्थिरता पाई जाती है जिसे हम ''कैनेटिक्स अस्थिरता'' कहते हैं। यह अस्थिरता प्लाज्मा के वेग में विषमदैशिकता की वजह से पैदा होती है। सभी प्रकार की अस्थिरता कभी हानिकारक तो कभी लाभदायक मानी जाती हैं। उदाहरण के लिए दो धारा अस्थिरता को landau damping की विपरीत प्रक्रिया (Process) समझा जाता है जो कि तेज कणों की ऊर्जा निकालने के लिए इस्तेमाल की जा सकती है। लेकिन चुम्बक द्रवचुंबकीय जनरेटर में तेज गति की अस्थिरता को हानिकारक माना जाता है क्योंकि वे स्थिर प्लाज्मा के जीवन समय को कम कर सकती है। एक तन्त्र में अस्थिरता प्रायः कुछ विशेषताओं पर निर्भर करती है। सभी तन्त्र (System) जो कि स्थिर नहीं हैं उनको अस्थिर नहीं कहा जा सकता है।

एक प्रणाली या सिस्टम को अस्थिर तभी कहा जा सकता

है जब उसको प्रदर्शित करने वाले विशिष्ट समीकरणों के मूल का वास्तविक भाग शून्य से अधिक हो। यह किसी स्टेट मैट्रिक्स (जिसका वास्तविक भाग शून्य से अधिक हो) की किसी भी eigen values के बराबर होगा। संरचनात्मक इंजीनियरिंग में, एक ढांचे को अधिक भार लागू कर के अस्थिर बनाया जा सकता है।

प्लाज्मा अस्थिरता का एक क्षेत्र है जहाँ पर प्लाज्मा की विशेषताओं (जैसे तापमान, घनत्व, विद्युत क्षेत्र) में परिवर्तन के कारण बदलाव पैदा होता है इस प्रकार की अस्थिरताएं तरल और गैस में भी पाई जाती हैं।

"प्लाज्मा स्थिरता" प्लाज्मा भौतिकी का एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है। प्लाज्मा स्थिरता को अध्ययन करना तभी संभव है जब प्लाज्मा साम्यावस्था में हो अर्थात् उसके ऊपर लगने वाले हर प्रकार के बल संतुलित (Balanced) हों। सबसे पहले यहीं जांच की जाती है कि प्लाज्मा के किसी भाग को तीव्र (accelerate) करने के लिए कोई बल है या नहीं। यदि नहीं, तो यह देखा जाता है कि कोई छोटी विक्षोभ वृद्धि (perturbation grow) करेगी या फिर दोलन (oscillate) करेगी या फिर बाहर की ओर damp हो जाएगी। कई मामलों में प्लाज्मा की स्थिरता को एक द्रव्य की तरह माना जाता है और उसकी स्थिरता को मैग्नोहाइड्रोडायनेमिक से जाना जाता है।

MHD सिद्धान्त को प्लाज्मा का सबसे सरलतम् तिनिधित्व माना जाता है। अतः MHD स्थिरता को, स्थिर उपायों के लिए जो कि नाभिकीय संलयन, विशेष रूप से चुम्बकीय सम्मिश्रण ऊर्जा के लिए उपयोग किए जाते हैं, एक अनिवार्यता माना जाता है तथापि अन्य प्रकार की अस्थिरताएं जैसे कि वेग–मैग्नेटिक दर्पण में अस्थिरता भी संभव है।

लेकिन कुछ दुर्लभ मामले भी संभव हैं जैसे कि Field reversed, जोकि MHD द्वारा अस्थिर कहीं जाती है जो शायद गतिज प्रभाव के कारण टिप्पणियों में स्थिर मानी जाती है।

हम एक प्लाज्मा मॉडल बनाते हैं जिसके धनात्मक आयन ऋणात्मक इलैक्ट्रॉन्स और न्यूट्रल कण हैं जिसमें आयन्स व इलैक्ट्रॉन का न्यूट्रल कणों के साथ लगातार टकराव होता हैं। चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव जानने के लिए एक निश्चित दिशा में चुम्बकीय क्षेत्र लगाया जाता है जो कि इलेक्ट्रो चुम्बकीय तरंग (electromagnetic waves) के साथ कोण पर है। हमने इलेक्ट्रॉन का 3eV तापमान माना है जबकि आयंस को ठण्डा माना गया है। प्लाज्मा की प्रक्रिया को जानने के लिए हम निम्नलिखित समीकरण लिखते हैं :

1. $$\frac{\partial n_p}{\partial t} + \nabla \cdot \left(n_p \vec{v}\right) - \gamma_p = 0$$

2. $$m_p n_p \frac{\partial \vec{v}}{\partial t} + m_p n_p \left(\bar{v} \cdot \vec{\nabla}\right) \bar{v} + n_p Z_p e \vec{\nabla} \varphi - n_p Z_p e \vec{v} \times \vec{B} + m_p \gamma_p \vec{v} = 0$$

3. $$\frac{\partial n_e}{\partial t} + \vec{\nabla} \cdot \left(n_e \vec{u}\right) - \gamma_e = 0$$

4. $$m_e n_e \frac{\partial \vec{u}}{\partial t} + m_e n_e \left(\vec{u} \cdot \vec{\nabla}\right) \vec{u} - n_e e \vec{\nabla} \varphi + n_e e \vec{u} \times \vec{B} + \vec{\nabla} p_e + m_e \gamma_e \vec{u} = 0$$

5. $$\varepsilon_0 \nabla^2 \varphi = \left(n_e - Z_p n_p\right) e$$

यहां पर n_p, n_e, m_p, m_e, v_p, v_e, γ_p, γ_e धनात्मक आयनों व ऋणात्मक इलैक्ट्रानों की संख्या घनत्व, द्रव्यमान, वेग, (ionization constt) एवं आयनीकरण स्थिरांक है।

यहां पर electrostatic विभवान्तर (Φ) है और ε Universal Permittivity of space है।

Zp इलेक्ट्रॉन्स की संख्या है जो परमाणुओं की संयोजकता देता है, B बाहरी चुम्बकीय क्षेत्र है। यहां Ce इलेक्ट्रान्स का प्रभावी उर्जा अनुपात है और Cs ध्वनि संबंधी गति है ऊपर दी गई समीकरणों को हल करने के लिए हम एक मैथड जिसे 'सामान्य मोड विश्लेषण' कहा जाता है, उपयोग करेंगे।

हम सभी Physical quantities को uperturbed और Perturbed दो चीजों में विभाजित हुआ मानते हैं।

चुम्बकीय क्षेत्र लगाने से पहले और Ionization का स्रोत लगाने से पहले हम घनत्व (density) को n_{po} या n_{eo} मानते हैं जो समय के सापेक्ष स्थिर मानी जाती है। हमने दो या उससे अधिक order की सभी terms को उपेक्षित किया है

हम ऊपर दिए गए समीकरणों से आयनों व इलेक्ट्रॉन के Perturbed घनत्व का मान निकालते हैं जिन्हें हम Poisson's equation में रख देते हैं।

घनत्व का मान Poisson's समीकरण में लिखने के बाद हम एक और समीकरण तैयार करते हैं जो पहले order के potential यानि कि Φ_1 को zero order potential यानि कि

Φ_0 से जोड़ती है। लेकिन हम जानते हैं कि कोई Ist order quantity को हम सीधे zero order quantity के रूप में नहीं प्रकट कर सकते इसीलिए हम समीकरण के दायीं ओर के numerator और denominator को अलग–अलग शून्य के बराबर रख देते है जिससे कि हमें दो और समीकरण मिलते हैं जो कि W और k के बीच सम्बन्ध को दर्शाते हैं। इन दोनों समीकरणों को हल करने के बाद हमें कुछ रियल तथा कुछ complex मूल (Roots) मिलते हैं। चूंकि Complex Roots हमेशा जोड़े के साथ ही उत्पन्न होते हैं जो हमें हमेशा धनात्मक Imaginary भाग एक अस्थिरता की विकास दर देता है तथा ऋणात्मक Imaginary भाग सदैव एक damped तरंग को दर्शाता है।

उपरोक्त समीकरणों को संख्यानुसार हल करने के लिए हम घनत्व, वेग, इलेक्ट्रॉन तापमान व चुम्बकीय क्षेत्र को विशिष्ट मूल्य देते हैं जिनसे हमें अस्थिरता की विकास दर मिलती है इन समीकरणों से हमें दो तरह की अस्थरिता मिलती हैं। जिन्हें तेज गति से चलने वाली तथा दूसरी को धीमी गति से चलने वाली अस्थिरता कहा जाता है। हमने दोनों श्रेणियों की अस्थरिताओं को दो प्रकार की Plasma oscillation wavelength $\lambda=10\lambda_{De}$ and $\lambda=100\ \lambda_{De}$ का साक्षेप अध्ययन किया है।

हमने दोनों अस्थरिता कों Normalized विकास दर दोनों oscillation wavelength के साक्षेप अलग–अलग चुम्बकीय क्षेत्र, propagation Angle व ionization constant के प्रभाव के तहत् अध्ययन किया है। दोनों अस्थरिता के विकास दर का आचरण नीचे दिए गए चित्रों में देखा जा सकता है

इस प्रकार हमने दो धारा अस्थिरता का अध्ययन किया है जिसमें हमने एक विशिष्ट मामले को सामने लाते हुए एक धारा को दूसरी धारा से तेज गति वाला माना है तथा उनके घनत्व को बराबर माना है। इसी प्रकार से हम अलग–अलग
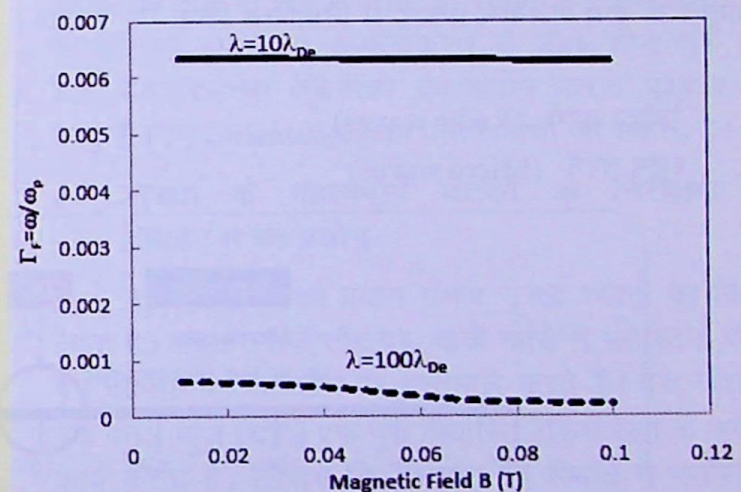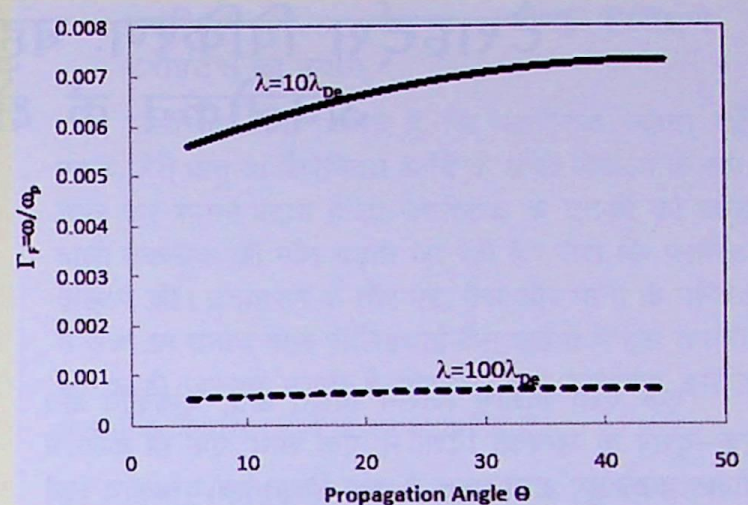
परिस्थितियों में अलग–अलग प्रकार की अस्थरिता या अस्थिरताओं काअध्ययन कर सकते हैं।

टेराहर्ट्स विकिरण: बहुलक उद्योग एवं सुरक्षा अवलोकन के क्षेत्र में अनुप्रयोग

अनिल कुमार मलिक, शोध छात्र एवं
डॉ. हितेन्द्र कुमार मलिक
भौतिकी विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

एक ऐसा विक्षोभ जिसमें विद्युत क्षेत्र, चुम्बकीय क्षेत्र एक–दूसरे के लम्बवत दिशा में, एक साथ, एक ही कला में दोलन करते हुए आगे बढ़ते हैं तथा विद्युत एवं चुम्बकीय क्षेत्रों के दोलनों की दिशा, विक्षोभ रूपी ऊर्जा के संचरण की दिशा के लम्बवत होती है, को विद्युत चुम्बकीय तरंगे कहते हैं। विद्युत चुम्बकीय तरंगों के संचरण के लिए किसी माध्यम की आवश्यकता नहीं होती है। इन तरंगों को उनके बढ़ते हुए आवृति के क्रम में निम्न प्रकार से विभाजित किया जा सकता है।

1. रेडिया तरंगें (Radio waves)
2. सूक्ष्म तरंगें (Micro waves)

3. टैरा हर्ट्स तरंगें (Terahertz waves)
4. अवरक्त तरंगें (Infrared waves)
5. प्रकाशकीय तरंगें (Visible waves)
6. पराबैंगनी तरंगें (Ultraviolet waves)
7. एक्स–किरणें (X-Rays)
8. गामा–किरणें (Gama (γ) rays)

फोटॉन विद्युत चुम्बकीय तरंगों की परस्पर क्रिया की एक मूलभूत ईकाई है। विद्युत चुम्बकीय तरंगों में ऊर्जा एव संवेग दोनों ही सन्निहित होते हैं। अतः इनका आदान प्रदान किसी भी पदार्थ के साथ किया जा सकता है। टेराहर्ट्स जिसकी आवृति परास (Range) $0.1x10^{12}$ हर्ट्स से $10.0x10^{12}$ हर्ट्स, ने शोधकर्त्ताओं को अपनी तरफ खासा आकर्षित किया है। टेराहर्ट्स विद्युत चुम्बकीय स्पैक्ट्रम का बडा ही महत्वपूर्ण भाग होते हुए भी इसके स्रोतों जैसे सिन्क्रोट्रॉन (Synchrotron), बैकवारड वेव दोलित्र (BWO), मुक्त इलेक्ट्रॉन लेसर (FEL) इत्यादि के व्यवसायिक विकास पर पिछली सदी में बहुत ही कम ध्यान दिया गया। टेराहर्ट्स विद्युत–चुम्बकीय स्पैक्ट्रम में सूक्ष्म तरंगों तथा अवरक्त तरंगों के बीच का भाग है जो इलैक्ट्रॉनिक तथा प्रकाशीकी के बीच के अन्तर को पूरा करता है। लगभग 17 वर्ष पहले Ti-सफाईर लेजर की उत्पत्ति से टेराहर्ट्स स्रोतों के विकास में काफी तेजी आई है। हाल ही में टेराहर्ट्स तकनीक में हुए सुधार, इसके तेजी से बाजार में आने की शुरुआत की तरफ इशारा करते हैं। टेराहर्ट्स स्रोतों को मुख्यतः निम्न तीन भागों में विभाजित किया जाता है।

1. बेमेल ऊष्मीय स्रोत (Incoherent thermal sources)
2. संकीर्ण तरंग संसक्त टेराहर्ट्स स्रोत (Narrow wave coherent THz sources)
3. विस्तृत बैंड स्पंद स्रोत (Broad Band pulse sources)

संकीर्ण तरंग संसक्त टेरा–हर्ट्स विकिरण, उच्च संकल्प स्पैक्ट्रोस्कोपी अनुप्रयोगों के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण है। VCO, DRDO और सूक्ष्म तरंग दोलित्र (Oscillator) से इलैक्ट्रॉनिक

रेडियो आवृत्तियों का उच्च आवृत्ति रूपान्तरण करके तथा प्रकाशकीय मिलान (Photomixing) करके प्रकाशकीय आवृतियों को टेराहर्ट्स आवृत्तियों में रूपान्तरित करके भी टेरा–हर्ट्स विकिरण उत्पन्न किए जाते हैं।

टेराहर्ट्स विकिरणों के अनुप्रयोग

1. बहुलक उद्योग में टेराहर्ट्स का प्रयोग

सबसे उत्तम तकनीक ग्रेड के प्लास्टिक में भी ठीक अनुकूल कणों से युक्त बहुलक का आधार लगा होता है, जोकि कस्टम विभाग को उसमें प्रयोग किए गए पदार्थ की गुणवत्ता एवं कार्य दक्षता का पता लगाने में मदद करता है। यद्यपि पदार्थ की कार्य दक्षता का पता लगाना इतना आसान कार्य नहीं है परन्तु तकनीक के विकास से इसका पता लगाने में काफी मदद मिल रही है जोकि चित्रों से देखा जा सकता है।
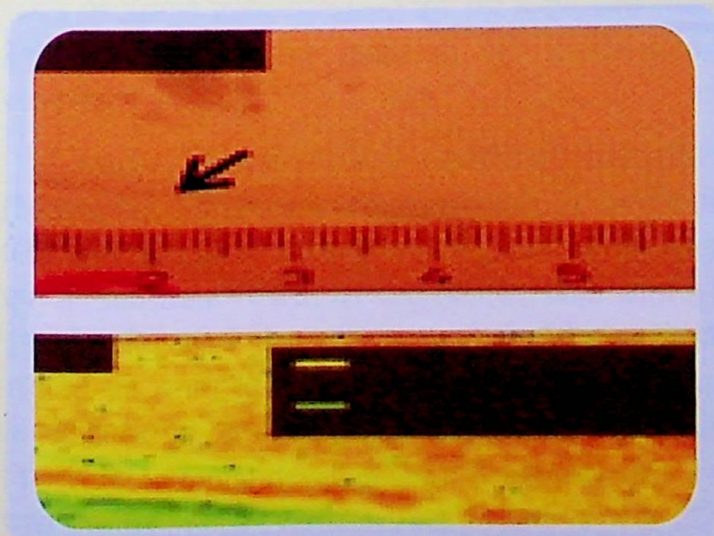
2. प्लास्टिक वेल्ड जॉइन्ट (जोड) निरीक्षण में टेराहर्ट्स का प्रयोग

जैसा कि सभी जानते हैं कि प्लास्टिक ज्यादा महँगे पदार्थ जैसे धातु या सिरेमिक्स आदि के अच्छे विकल्प के रूप में उभर कर सामने आया है तो प्लास्टिक के घटकों को जोड़ने वाली तकनीक की माँग बढ़ती जा रही है। जैसे कि प्लास्टिक वैल्डिंग की। उदाहरण के तौर पर, गैस और पानी के परिवहन में उच्चतम घनत्व वाले पॉलिइथाईलीन पाईपों में इस तकनीक की काफी जरूरत पड़ती है जिसके लिए टेराहर्ट्स इमेजिंग तकनीकि विकसित होने के काफी करीब है।

3 तन्तु (फाइबर) सुदृढ़ प्लास्टिक कंपोजिट्स में टेराहर्ट्स का प्रयोग

यह भी बहुलक पदार्थों की एक श्रेणी में आने वाला पदार्थ है जिसमें टेराहर्ट्स तकनीक नॉन डेस्ट्रक्टिव (बिना तोड़फोड़ वाली) तकनीक के रूप में प्रयोग हो सकती है। क्योंकि घटकों के यान्त्रिक गुण, तन्तु उन्मुखीकरण से सीधे–सीधे जुड़े हुए होते है। टेराहर्ट्स तकनीकी का प्रयोग करके फाइबर के उन्मुखीकरण (orientation) का पता लगाया जा सकता है।

4. सुरक्षा के महत्वपूर्ण घटकों के निरीक्षण में टेराहर्ट्स का प्रयोग

कुछ बहुलकों का प्रयोग गंभीर सुरक्षा स्थानों पर किया जाता है। उदाहरण के तौर पर, यात्री कारो में प्लास्टिक एयर बैग टोपियो का आमतौर पर इस्तेमाल करते है। इस केश में एक पतल कुंज (ग्रोव) एक पूर्ण निर्धारित ब्रेकिंग रेखा के रूप में कार्य करता है। जिससे कि दुर्घटना की स्थिति मे प्लास्टिक एयर बैग (हवा के थैले) के ऊपर लगी हुई टोपियाँ स्वतः ही टूट जाती हैं। इस टोपी की कार्य दक्षता पूर्व निर्धारित ब्रेकिंग रेखा के कुंज (ग्रोव) की सही गहराई पर निर्भर करती है। निकट भविष्य में टेराहर्ट्स इमेजिंग तकनीक का प्रयोग ग्रोव की मोटाई तथा गहराई का सही माप करने में किए जाने की काफी प्रबल सम्भावना जताई जा रही है।

5. खाद्य पदार्थों की गुणवत्ता नियंत्रण में टेराहर्ट्स तकनीक का प्रयोग

बहुलक उद्योग के अतिरिक्त भी टेराहर्ट्स का उच्च कोटि का उपयोग खाद्य पदांर्थों की गुणवत्ता की जाँच करने के लिए सामने आया है। हालांकि धातु की मलिनता (contamination) की जाँच करना पहले से ज्ञात विधियों से भी सम्भव था परन्तु टेराहर्ट्स तकनीक की मदद से अधात्वीय जैसे मिट्टी, प्लास्टिक, तन्तु इत्यादि पदार्थों की मिलावट की जाँच करना भी सम्भव होने की काफी सम्भावना है। क्योंकि

परम्परागत एक्स–किरणें सिस्टम की मिलाए गए पदार्थ तथा खाद्य पदार्थों के बीच डाइलैक्ट्रिक भिन्नता बहुत कम होती है इसलिए मिलावट का पता करना बहुत ही मुश्किल हो जाता है। सौभाग्यवश टेराहर्ट्स टाइम डोमेन स्पैक्ट्रोस्कोपी तथा अच्छे डाटा प्रोसेसिंग एलगोरिथ्म की मदद से खाद्य पदार्थ तथा उसमें की गई मिलावट का पता करना काफी आसान है। निम्न चित्रों में चोकलेट में गिलास (लाल रंग) की मिलावट का टेराहर्ट्स इमेंजिंग के द्वारा पता चलता है।
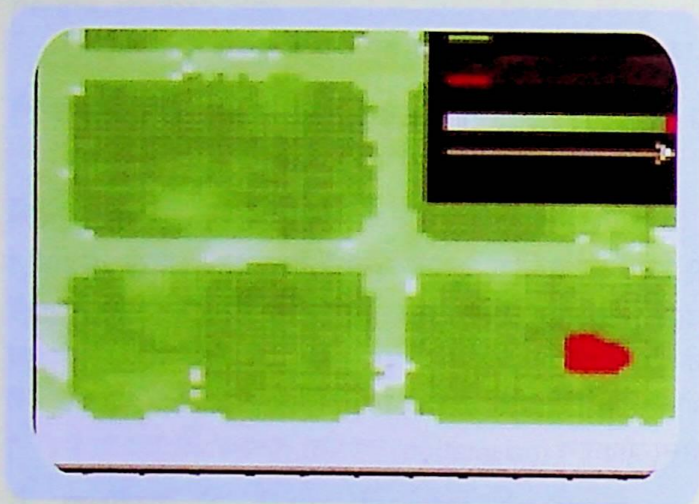
6. सुरक्षा अवलोकन के क्षेत्र में टेराहर्ट्स तकनीक का प्रयोग

पिछले कुछ सालों में टेराहर्ट्स इमेजिंग की छुपे हुए साधारण हथियारों, विस्फोटकों तथा रासायनिक एवं जैविक हथियारों का पता लगाने में खासी दक्षता की वजह से लोगों की दिलचस्पी काफी बढ़ी है। लोगों के टेराहर्ट्स तकनीक के इस क्षेत्र में प्रयोग करने की दिलचस्पी के तीन मुख्य कारण निम्नलिखित हैं:

i) टेराहर्ट्स विकिरण की तत्काल अधात्विक तथा गैर ध्रुवीय माध्यमों से होकर गुजरने की क्षमता की वजह से इनकी मदद से पैकेजिंग, नालीदार गत्तों, कपड़े, जूते तथा किताब रखने वाले थैले आदि में रखे खतरनाक पदार्थों का पता लगाया जा सकता है।

ii) सुरक्षा व्यवस्था के लिहाज से कुछ पदार्थों जैसे, विस्फोटक, रासायनिक तथा जैविक हथियारों को टेराहर्ट्स स्पैक्ट्रा की मदद से फिंगर प्रिन्ट (अँगुली के निशान) द्वारा इन हथियारों का पता लगाने में मदद मिल सकती है।

iii) टैराहर्ट्स विकिरणों की भेदन क्षमता कम होने की वजह से ये स्कैन किए जाने वाले व्यक्ति तथा इसके प्रयोग करने वाले व्यक्ति (operator) के स्वास्थ्य पर एक्स–किरणें के विपरीत तरह या तो न के बराबर असर डालती हैं या फिर बिल्कुल नहीं डालती हैं। उदाहरण के तौर पर थ्रूवीजन कम्पनी ने यू.के. (U.K.) में एक अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डे पर टेराहर्ट्स तकनीक को स्कैनिंग (अवलोकन) में ट्रायल बेस पर प्रयोग किया है।

मोनोलिथिक माइक्रोवेव इंटीग्रेटेड सर्किट (एम.एम.आई.सी.) तकनीक

संजय कुमार तोमर, शोध छात्र एवं
डॉ. हितेन्द्र कुमार मलिक
भौतिकी विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान
हौज खास, नई दिल्ली

आज विज्ञान जगत् अपनी सफलता की ऊँचाईयों को छू रहा है, और उससे भी बेहतर कर पाने की इच्छा और प्रबल होती जा रही है। कहीं दूर से आये संदेश को संबंधित व्यक्ति तक पहुंचाने के लिये जद्दो-जहद, उस चिट्ठी के आने का बेसब्री से कई दिनों का इंतज़ार आज न देख पाने पर लगता है कि मैं दूसरी दुनिया में आ गया हूँ। वह दुनियाँ जिसमें आपकी कोमल हथेली में सारा संसार सिमटा सा लगता है। बटन के दबाने पर ही हजारों मील दूरी बैठे दो जुदा दिल ऐसे बात करते हैं मानो आमने सामने बैठे हों बस एक अदृश्य सी दीवार उनके बीच हो। ये सब हो जाना हमसे दो पीढ़ी पहले वालों को शायद करिश्मा ही लगे, परन्तु मैं भी कहीं न कहीं किसी न किसी रूप में इस अभूतपूर्व प्रवासित तकनीक से सम्बन्ध रखता हूँ। अब सच है कि ये कोई करिश्मा नहीं बल्कि अनवरत अनुसंधान और विकास का परिणाम है। आज से इस अति उच्च तकनीकी क्षेत्र में युक्तियों को सूक्ष्म से सूक्ष्मतर और तीव्र से अतितीव्र गति पर संचालित करने पर जोर दिया जा रहा है। इसी का परिणाम है मुट्ठी में सिमटी हुई हस्त (Hand Held Devices)।

युक्तियों को छोटे से और छोटा तथा और बेहतर बनाने में "एक पद अति सूक्ष्म तरंग प्रणाली वाली संयुक्तियाँ (MMIC)" तकनीक का महत्वपूर्ण योगदान है। आज यह तकनीक इतनी विकसित हो चुकी है कि आपकी अंगुली के नाखून के जैसे छोटे स्थान पर सम्पूर्ण प्रक्रम (System) बन सकता है। जहाँ संचार अति उच्च आवृतियों पर करना हो वहाँ इसकी भूमिका सराहनीय है।

MMIC अर्थात मोनोलिथिक माइक्रोवेव इंटीग्रेटेड सर्किट (Monolithic Microwave Integrated Circuit) तकनीक में अति सूक्ष्म तरंग पर चलित बहुत सारी संयुक्तियों को एक साथ एक ही Substrate पर परत दर परत विकसित किया जाता है। इसे और सीधे तरीके से अगर समझा जाये तो जैसे पहले किसी संयुक्ति को बनाने के लिये अलग-अलग भाग को एक-एक करके आपस में जोड़ा जाता था, उसी प्रक्रिया को क्षैतिज विकास (Horizontal development) के स्थान पर परत दर परत उर्ध्वाधर विकास (Vertical develop) किया जाता है, अर्थात् हर भाग विभिन्न परतों का बना होता है। एक ओर परत का विकास (Growth) करने पर सभी भागों का कुछ-कुछ हिस्सा बन जाता है। इस क्षण शायद मैं क्षैतिज और उर्ध्वाधर विकास में अन्तर समझाने में समर्थ रहा हूँ।

अतः अगर मैं MMIC तकनीकी को परत दर परत विकास वाली तकनीक कहूँ तो उचित ही होगा। इस विशिष्ट गुण की वज़ह से एक कमी इस तकनीक में यह है कि एक बार संपूर्ण संयुक्ति बन जाने के पश्चात् उसे बदला नहीं जा सकता अर्थात् यदि किसी भाग का परिमाण बदलना चाहे तो संभव नहीं है। परन्तु दूसरी तरफ यह तकनीक काफी सस्ती और उत्पादन के लिए उपयुक्त है।

MMIC तकनीक मूलतः एक चक्रीय प्रक्रिया है जिसका हर पद अपने पिछले पदों की अच्छी गुणवत्ता पर निर्भर करता है। इस चक्र का प्रारम्भ कहाँ से करूँ ये बड़ा मुश्किल होगा क्योंकि यहाँ स्थिति कुछ इस तरह से है कि "पहले मुर्गी आयी या अंडा" फिर भी इसके मूलतः पाँच भाग हैं। (अ) युक्ति / वियोजित भाग (Device/Discrete component) (ब) मॉडल (स) डिजाइन (द) फैब्रिकेशन (य) नाप / माप।

सह सम्पूर्ण चक्र लगभग सैकड़ों पदों में पुनर्विभाजित है। प्रत्येक पद अपनी विशिष्ट भूमिका रखता है। पूर्व पदों की गलती आगे के सारे चक्र को गड़बड कर देती है। अतः इस तकनीक का विकास सभी चरणों के सम्मिलित और सही प्रयास का परिणाम होता है। अच्छा माप / नाप, अच्छे मॉडल की सफलता की कुँजी है। अच्छा मॉडल अच्छी डिजाइन के लिए अति आवश्यक है। अच्छा फैब्रिकेशन अच्छी युक्ति और संयुक्तियों के विकास के लिये जरूरी है।

MMIC की सम्पूर्ण पदावली का सम्पूर्ण वर्णन करना यहाँ सम्भव नहीं है। अतः मैं डिजाइन चक्र को संक्षिप्त रूप में समझाने का प्रयास करूँगा।

1. **युक्ति वियोजित भागः**– यह MMIC तकनीकी की प्ररम्भिक इकाई है। ये सक्रिय व निष्क्रिय दो प्रकार के हो

सकते हैं। सक्रिय युक्तियाँ मुख्यतः इलेक्ट्रॉनिकी नियंत्रण, सिग्नल प्रवर्धन इत्यादि उद्देश्यों में प्रयुक्त होती है। निष्क्रिय युक्तियाँ एक पोर्ट से दूसरे पोर्ट के मध्य इंपीडेन्स को मिलाने के लिये प्रयुक्त होती हैं, ताकि अधिकतम सिग्नल आगे अग्रसर हो सके। जो "अधिकतम शक्ति परिवर्तित" प्रमेय के सिद्धांत पर आधारित है।

सक्रिय युक्तिः– MESFET. HEMT. SWITCH

निष्क्रिय युक्ति :- प्रतिरोध, प्रेरकत्व, संधारित्र, प्रसारण / संयोजक रेखा

चित्र 1. MMIC Vs TRADITIONAL GROWTH
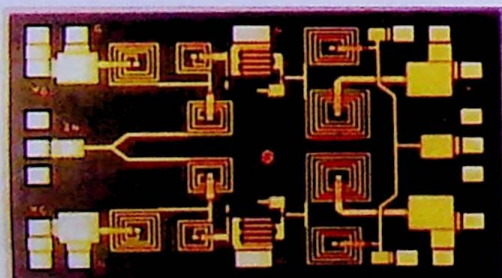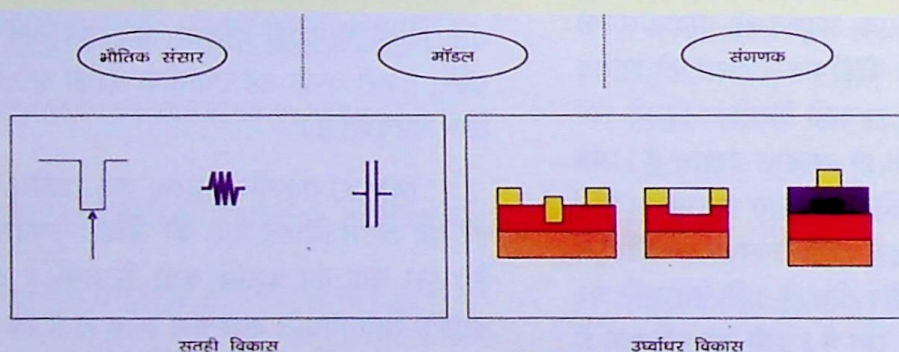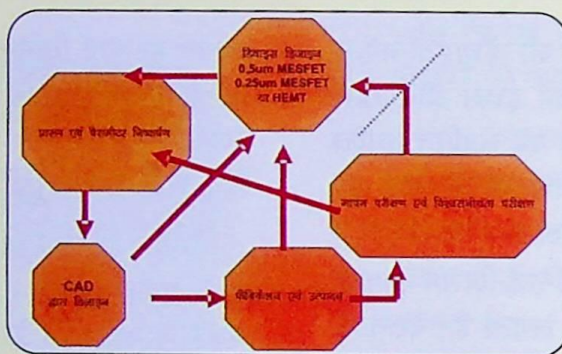
चित्र 2. एम.एम.आई.सी. प्रतिरूप
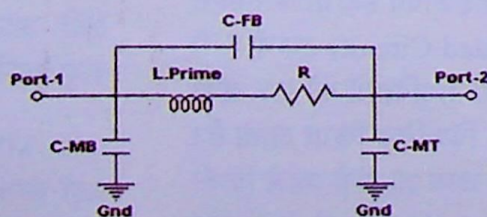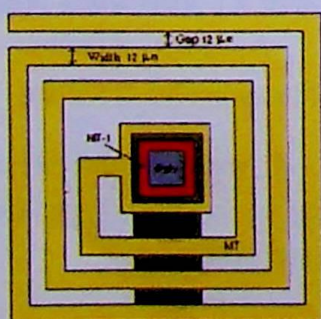
चित्र 3 तुल्यांकी प्रतिरूप परिपथ

2. **मॉडल**–MMIC तकनीक काक यह चरण समझने में थोड़ा जटिल है। फिर भी मैं इसे समझाने का प्रयास करूँगा। हम जानते हैं कि आज अतिउच्च तकनीक के समय में संयुक्ति डिजाइन साधारण ब्रेड बोर्ड से अति उच्च गति के गणना करने वाले संगणक (Computer) से की जाने लगी है। अतः मॉडल इन दोनों के बीच की अन्तर कड़ी है।

अर्थात् मॉडल, भौतिक संसार की मूलक युक्तियों (सक्रिय–निष्क्रिय) की इलेक्ट्रॉनिकी गुणवत्ता को उस रूप में बदलना है जो संगणक के लिये उपयोगी होती है।

3. **डिजाइनः**– इस चरण में सक्रिय व निष्क्रिय युक्तियों को अलग–अलग सुनियोजित ढंग से क्रमानुसार लगाकर किसी विशेष लक्ष्य को प्राप्त किया जाता है। इसके प्रमुख पदों में युक्ति की संचालन आवृत्ति व उसके आकार के अनुसार लक्ष्य को ध्यान में रखकर चयन किया जाता है। अगले चरण में इनपुट व आउटपुट के इंपीडेंस को 50 ओम के प्रतिरोध से मिलाया जाता है। किसी एक बिन्दु की आवृत्ति पर यह करना आसान होता है, पर बड़े आवृत्ति विसरण के लिए संपूर्णतया 50 ओम के प्रतिरोध पर मिलाना सम्भव नहीं है। इसे एक निर्धारित लक्ष्य के भीतर उसे प्राप्त किया जाता है। फैब्रिकेशन के दौरान कुछ बदलाव के हो जाने की संभावना को ध्यान में रखकर लक्ष्यों को एक विंडो में प्राप्त करने की कोशिश की जाती है। इसको "संवेदनात्मक विश्लेषण" कहा जाता है, जो अच्छे डिजाइन का आधार है।

MMIC तकनीक को इस विषय वस्तु के शीर्षक के अनुसार संक्षिप्त में पूर्णतया परिभाषित करना सम्भव नहीं है। इसलिए हमने यहाँ महासागर के दो तीन बूंदों को आप तक पहुंचाने की कोशिश की है। पूर्व महान वैज्ञानिकों के अमुक अनुसंधान को अपनी लेखनी से कुछ पन्नों में कैद कर पाना सम्भव नहीं है। वैसे हमें विश्वास है कि आप इस सूचना से लाभान्वित अवश्य हुए होंगे।

भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के डिक्टेटर थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहा है उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया – बन गया है तो सीधे–सीधे, नहीं तो दरेरा देकर। भाषा कुछ कबीर के सामने लाचार–सी नजर आती है।

– हजारी प्रसाद द्विवेदी

आयनिक द्रवः एक अद्वितीय पदार्थ

रेवा राय, शोध छात्रा एवं
डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय
रसायन विज्ञान विभाग
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

यह सार्वभौम सत्य है कि विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने सामुदायिक व राष्ट्र विकास के नये–नये आयाम खोल कर इक्कीसवीं सदी में प्रवेश किया है। पिछली सदी के पहले की अवधि में विज्ञान व प्रौद्योगिकी का विकास मानव जीवन को सरल व सुखी बनाने के ख्याल से किया जाता था, लेकिन बाद में इसे नजर अन्दाज करके अवाँछनीय तरीके से कुछ शोध क्षेत्रों को विकसित किया गया। इसके दुष्परिणाम पर्यावरण व सामाजिक विषमताओं आदि के रूप में प्रकट हुए। सौभाग्यवश, नई सदी की भोर में विश्वस्तर पर यह गहरा अहसास हुआ कि विज्ञान व प्रौद्योगिकी के भावी विकास की प्रक्रिया में, इनके दीर्घकालिक पर्यावरणीय व पारिस्थितिकीय प्रभाव को तथ्यों के साथ समझकर ही शोध कार्य करना चाहिए। इस संदर्भ में, अनेक सशक्त शर्तों में, हरे रसायन (green chemicals), 'प्राथमिक निवारण' और 'पर्यावरणीय कृपालु रसायन' प्रमुख हैं। इस प्रकार एक व्यापक विचार का उदय हुआ कि पर्यावरण के लिए घातक रासायनिक प्रक्रियाओं की जगह पर्या–हितैषी विकल्प पर शोध कार्य अत्यन्त आवश्यक है।

रसायन उद्योगों और अनुसंधान क्षेत्र की सबसे बड़ी स्थायी समस्या है– भारी मात्रा मे विषैले, खतरनाक, ज्वलनशील और पर्यावरणीय अस्नेही रसायनों का लगातार निष्कासन। हाल ही में प्रकाश में आई मांट्रियाल प्रोटोकॉल विधान जिसने कुछ सामान्य रसायन को ओजोन की परत पर कुप्रभाव डालने के कारण अंकुश लगाने या उपयोग सीमित करने का विचार किया है, इस समस्या के समाधान को और अधिक तात्कालिक बना दिया है।

हाल ही में खोजे गए कक्ष तापमानीय आयनिक द्रव (वायु और नमी स्थिर रूप में), जिनका वायुदाब नगण्य होता है, नई शताब्दी मे कई चयनित रसायनों में से एक अच्छी गुणवत्ता वाले रसायन हो सकते हैं। इन्हें कई महत्वपूर्ण औद्योगिक रसायनिक प्रक्रियाओं में एक पर्यावरण कृपालु रसायन के रूप में विषैले और खतरनाक रसायनों के साथ प्रतिस्थापित किया जा सकता है।

आयनिक द्रव अपनी व्यापक घुलनशीलता, मिश्रणीयता, अत्यधिक आशाजनक असुवाष्य तथा अन्य भौतिक रासायनिक स्वभाव के कारण एक अद्वितीय पदार्थ होने की क्षमता को दर्शाता है। आयनिक द्रव एक लवण है जो कक्ष तापमान पर द्रव अवस्था में पाया जाता है और जिसकी व्यापक द्रव श्रेणी $-96^{\circ}C$ से $+ 200^{\circ}C$ से भी ऊपर तक होती है। आयनिक द्रव की रासायनिक संरचना से उत्पन्न होने वाली सुविधाओं में से एक यह है कि धनायन तथा ऋणायन के परिवर्तन से विभिन्न गुणों जैसे श्यानता, गलनांक, जल मिश्रणीयता, और घनत्व परिवर्तित कर सकते हैं।
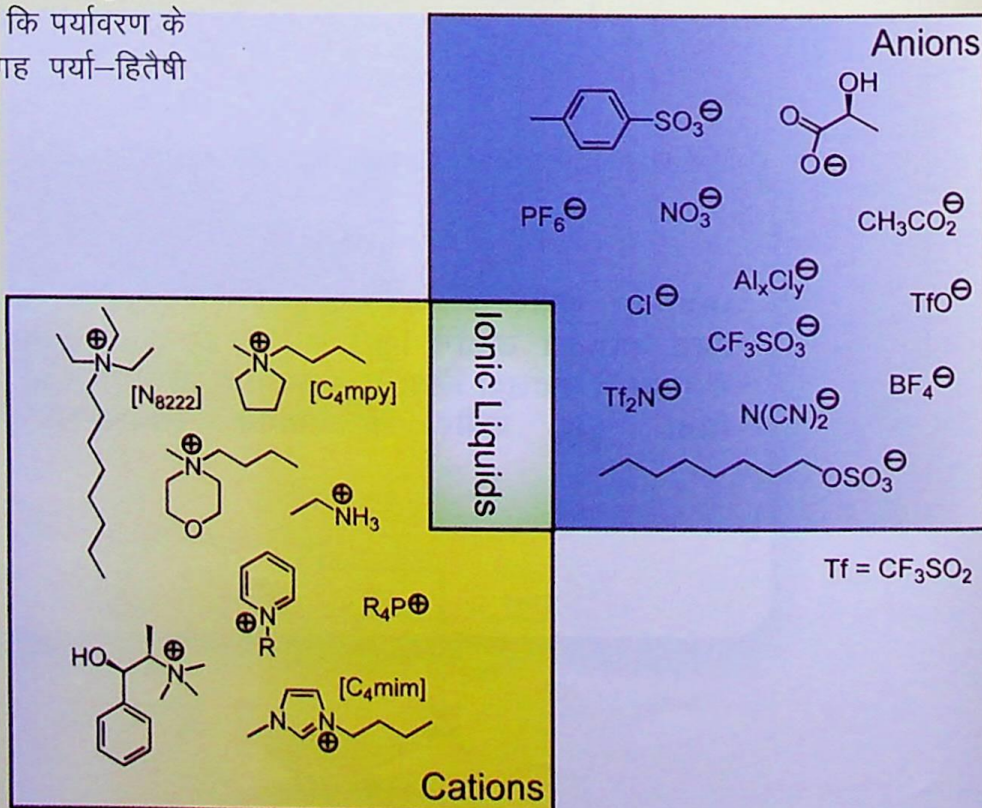
चित्र– 1 आयनिक द्रव के धनायन और ऋणायन

आयनिक द्रव को संश्लेषण, पृथक्करण, बहुलकीकरण, उत्प्रेरण, निष्कर्षण तथ विद्युत रासायनिक प्रक्रियाओं के लिए एक व्यवहार्य पदार्थ के रूप में दर्शाया जा चुका है। आयनिक द्रव अपने अद्वितीय आणविक संरचना तथा कई महत्वपूर्ण उपयोग के साथ उद्योगों तथा अकादमिक शोध–कर्त्ताओं को इस नई शताब्दी में तेजी से आकर्षित कर रहा है, जैसा कि नीचे दिए गए चित्र में दर्शाया गया है–
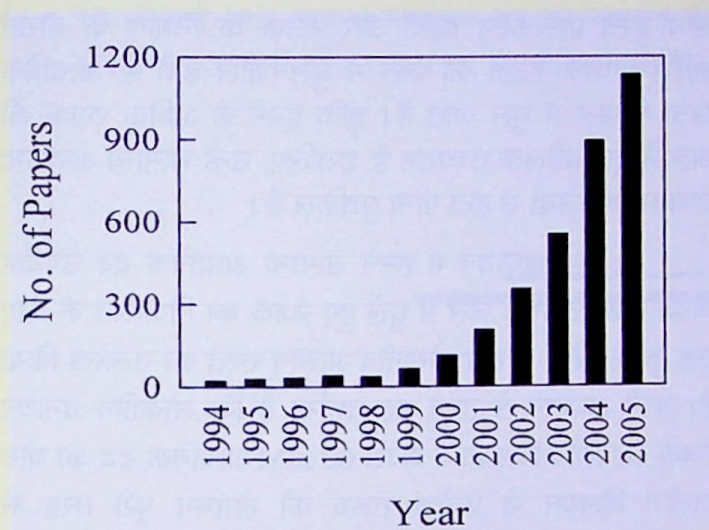
चित्र–2 शोध पत्रों में वृद्धि पैटर्न

हालांकि, आयनिक द्रव की क्षमता विलायक और योज्य दोनों ही रूप में रसायन शास्त्र के सभी पहलुओं में बड़े पैमाने पर अन्वेषित नहीं हैं। यद्यपि मूलभूत विज्ञान, जो आयनिक द्रव को विलायक तंत्र के रूप में चरितार्थ करने में समाहित है, ने पिछले दशक या अब तक एक पर्याप्त आधार बना लिया है तथापि आयनिक द्रव की संभावित उपयोगी क्षमता की खोज अभी भी अपनी प्रारंभिक अवस्था में है। इसलिए, जबकि आयनिक द्रव के व्यापक उपयोग के लिए कई संभावनाएं हैं, वर्तमान प्रयासों, जो कि लगातार और संपूर्ण रूप से जरूरी हैं, ने करो या मरो का दृष्टिकोण ले लिया है। आयनिक द्रव की पूर्ण क्षमता को जानने के लिए एक प्रभावी योज्य के रूप में उनकी भूमिका के बारे में महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त करने की आवश्यकता है। इस प्रकार, हम कई प्रकाश भौतिकी तकनीकों का प्रयोग करके विभिन्न रासायनिक तंत्र में आयनिक द्रव के योग से होने वाले प्रभाव की जांच शुरू कर चुके हैं। हमारे द्वारा की गई जांच की कुछ प्रमुखताएं निम्नलिखित हैं।

आयनिक द्रव + टेट्राएथिलिन ग्लाइकॉल (TEG) मिश्रण के अद्वितीय भौतिकी रासायनिक व्यवहार

हमारे प्रकाश–भौतिकी अध्ययन से प्रत्येक मिश्रण संयोजन पर बेहद आश्चर्यजनक परिणाम स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं। E_T का मान भी स्वच्छ आयनिक द्रव के मान से अधिक प्रकट हुआ है। आदर्श योज्य के व्यवहार की तुलना में E_T में अधिकतम विचलन सममोलीय मिश्रण के लिए प्राप्त किया गया है। यह एक दुर्लभ 'योगवाही विलायक प्रभाव' या अधिक विशेष रूप से 'अतिध्रुवणता' या 'युतिप्रभावी ध्रुवणता प्रभाव' या 'बुलंद ध्रुवणता' का प्रतिनिधित्व करता है। दिलचस्प यह है कि 'युतिप्रभावी ध्रुवणता प्रभाव' मिश्रण में ? * (द्विध्रुवणता) और (हाइड्रोजन–बंध प्रदान करने वाली अम्लीयता) के माध्मय से भी प्राप्त हुआ है।

इस अतिध्रुवणता की पुष्टि दूसरी प्रकाश भौतिकी तकनीक का उपयोग करके भी किया गया है। उदाहरण के लिए, पाइरीन का I_1/I_3 अनुपात आयनिक द्रव में TEG के योग से घटते हुए पाया गया है जो 'पाइरीन क्षण व्यवस्था क्षेत्र' के द्विध्रुवणता के घटाव को दर्शाता है, हालांकि, प्रयोगात्मक I_1/I_3 आदर्श योज्य व्यवहार के लिए पूर्व–सूचित मान से अधिक पाया गया है। PYCHO परीक्षित्र का व्यवहार भी पाइरीन परीक्षित्र के व्यवहार के संपूरक है। परिणामस्वरूप, विलयन के इस अद्वितीय गुणों के लिए विलेय–विलायक के बीच पारस्परिक आकर्षण को प्रमुख कारण के रूप में उजागर किया गया है। इसके अतिरिवत आयनिक द्रव +TEG मिश्रण में रोडैमीन 6G (R6G) और 1,3–बिस (4-पाइरिडिल) प्रोपैन (BPP) के व्यवहार ने स्पष्ट रूप से दर्शाया है कि मिश्रण की सूक्ष्म प्रवाह अपेक्षित मान से कम है जो कि विलायक–विलायक पारस्परिक आकर्षण की उपस्थिति को और अधिक मजबूत करता है। इसके अलावा, आयनिक द्रव +TEG मिश्रण विभिन्न सामान्य कार्बनिक विलायक +TEG के मिश्रण की भौतिक रासायनिक गुणों की तुलना में विशेष पाया गया है।

1–ब्यूटिल–3–मेथिलइमिडेजोलियम हैक्साफ्लोरोफास्फेट [bmim][PF_6]+पॉली (एथिलिन ग्लाइकॉल) (PEG) मिश्रण के अद्वितीय भौतिकी रासायनिक व्यवहार

हम विभिन्न औसत आणविक भार (Mw) जैसे 200, 400, 600 और 1500 वाले PEG के साथ [bmim] [PF_6] के मिश्रण में भौतिक रासायनिक व्यवहार की जांच कर चुके हैं। आशा के अनुरूप, [bmim] [PF_6]+PEG 200 के भीतर अवशोषणांक परीक्षित्र का स्पेक्ट्रमदर्शीय परीक्षित्र व्यवहार [bmim] [PF_6]+PEG के भीतर पाये गए स्पेक्ट्रमदर्शीय परीक्षित्र व्यवहार के समान है। हालांकि , जैसे ही PFG आणविक भार बढ़ाते हैं, आदर्श व्यवहार से विचलन घटते हुए प्राप्त हुआ है। इन जटिल तंत्र में हम PEG के आणविक भार बढ़ाने पर एक अत्यधिक अद्वितीय भौतिक रासायनिक व्यवहार

प्राप्त करते हैं।

प्रकाश–भौतिकी पद्धति द्वारा पृष्ठ संक्रियक आधारित तंत्र पर आयनिक द्रव का प्रभाव

अपनी अद्वितीय भौतिक–रासायनिक गुणों और अमित प्रौद्योगिकीय अनुप्रयोग के कारण पृष्ठ संक्रियक विलयन वर्तमान का एक प्रमुख विषय है। सामान्य स्थितियों में, जलीय पृष्ठ –संक्रियक के भौतिक रासायनिक गुण पृष्ठ–संक्रियक विलयन के पहचान के साथ–साथ विलयन में इसकी सांद्रता पर निर्भर करता है। किसी दिए गए जलीय पृष्ठ संक्रियक विलयन के भौतिक रासायनिक गुणों को परिवर्तित करने का आसान तारीका बाहरी योज्य का उपयोग है। अपनी अद्वितीय और रोचक गुणों के कारण आयनिक द्रव की भूमिका इस संदर्भ में महत्वपूर्ण हो सकती है।

हम जलीय पृष्ठ संक्रियक विलयन के भौतिक रासायनिक गुणों जैसे मिसेल कांतिक सांद्रता (CMC) समुच्चय संख्या (Nagg), मिसेली आकार, द्विध्रुवणता तथा मिसेली आभासी–प्रावस्था के भीतर सूक्ष्मप्रवाह में आयनिक द्रव प्रेरित बदलाव का अध्ययन करने के लिए प्रकाश भौतिकी पद्धतियां अधिकतम इलेक्ट्रानिक अवशोषणांक तथा आणविक प्रतिदीप्ति आधारित हैं। मिसेली परिमाप जैसे CMC, Nagg, आकार इत्यादि को प्राप्त करने के लिए उचित प्रतिदीप्ति परीक्षित का उपयोग किया जाता है।

आयनिक द्रव की विभिन्न मात्रा की उपस्थिति में किसी पृष्ठ संक्रियक के जलीय विलयन की सांद्रता में बदलाव से पाइरीन की I_1/I_3 में भिन्नता CMC को स्पष्ट रूप से दर्शाता है।

सेटिलपिरिडीनियम (CPC) को शामक के रूप में उपयोग करके पाइरीन के प्रतिदीप्ति शमन से आयनिक द्रव की उपस्थिति में मिसेल की समुच्चय संख्या को प्राप्त किया जाता है। BPP के स्थायी–अवस्था उत्सर्जन स्पेक्ट्रम के द्वारा किसी परीक्षित्र के चारो तरफ के सूक्ष्म वातावरण के प्रवाह में बदलाव को प्रभावी रूप से दर्शाया जाता है। BPP के उत्सर्जन स्पेक्ट्रम में दो तरह के शिखर होते हैं, एक एकलक शिखर (~378nm) तथा एक और शिखर (~450-500nm) जो अंतः अणुक उत्तेजद्वयी की प्रतिदीप्ति से प्राप्त होता है। क्षण–व्यवस्थ क्षेत्र का सूक्ष्मप्रवाह जैसे ही बढ़ता है, उत्तेजद्वयी बनने की क्षमता घटती है और जिसके फलस्वरूप, उत्तेजद्वयी बैंड की तीव्रता घट जाती है।

हम विभिन्न तकनीकों का उपयोग करके यह प्राप्त कर चुके हैं कि आयनिक द्रव का विभिन्न प्रकार के पृष्ठ संक्रियक के जलीय विलयन में अद्वितीय प्रभाव है। हाल ही में हमने अपने शोध में पाया है कि किस प्रकार आयनिक द्रव का धनायन आयनिक पृष्ठ संक्रियक से पारस्परिक आकर्षण के तहत मिसेल के आकार को प्रभावी ढंग से बढ़ाता है।

जलीय आयनिक द्रव विलयन में रंजक का अवक्षेपण

प्रकाशीय रंजक के विभिन्न औद्योगिक लाभ हैं। दुर्भाग्य से, एक परिणाम के रूप मे, वे अक्सर व्यर्थजल में उपस्थित होते हैं और अपने निहित विषाक्तता के कारण खतरों को जन्म देते हैं। अन्य वस्त्र प्रसंस्करण कार्यों और रंजक के निर्माण के दौरान संश्लिष्ट वस्त्र रंजक जो जल में घुलनशील होते हैं, अत्यधिक मात्रा में जल मे घुल जाते हैं। चूंकि इनमें से अधिक रंजक की जल में घुलनशीलता उच्चतम है, इसलिए, उन्हें सामान्य अपशिष्ट उपचार प्रणालियों से हटा पाना मुश्किल है।

अपने अध्ययन में हमने सामान्य आयनिक द्रव उपयोग करके कुशलतापूर्वक जल में घुले हुए रंजक को निकालने के लिए एक कुशल, तेज और उल्लेखनीय आसान रास्ते का उल्लेख किया है। अपने अध्ययन में हमने यह दर्शाया है कि लोकप्रिय धनायन रंजक के जलीय विलयन में केवल 60 mM आयनिक द्रव का योग जलीय विलयन से प्रत्येक रंजक को लगभग पूरी तरह से अवक्षेपित कर देता है। उत्कर्षित ठोस रंजक को कक्ष–तापमान पर सुखाए जाने के पश्चात् प्रत्येक रंजक के लिए 1H NMR और UV-Vis आणविक अवशोषणांक स्पेक्ट्रा इकट्ठा किया गया तथा प्रत्येक रंजक के स्टॉक के साथ तुलना की गई। अंततः यह पाया गया है कि रंजकों की पहचान समान है जो समान रंजक के अवक्षेपण की पुष्टि करता है।

आगे हमारा प्रयास इस क्षेत्र में जारी है कि कौन सा आयनिक द्रव ज्यादा प्रभावी है और विभिन्न प्रकार के रंजकों के अवक्षेपण प्रक्रिया की गति को कितनी मात्रा तक बढ़ाया जा सकता है। विभिन्न प्रकार के रंजक निम्नांकित चित्र मे दर्शाए गए है।
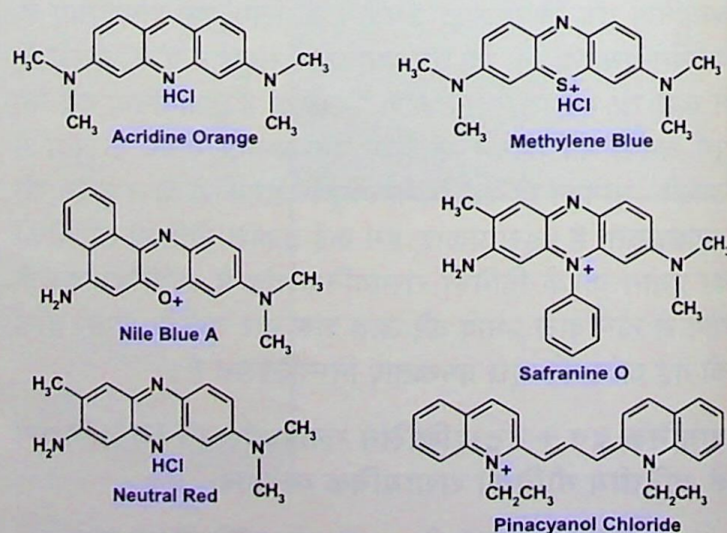
चित्र– 3 विभिन्न प्रकार के रंजक

संदर्भ

1. य. मरोई, मिसेल; सैद्धान्तिक तथा अनुप्रयुक्त पक्ष, स्पिगर, न्यूयॉर्क, 1992

2. स. पाण्डेय, एनल. किम, एक्टा 556 (2006)38।

3. ग. अ. बेकर, स.न. बेकर, स. पाण्डेय, फ.व. ब्राइट, एनालिस्ट, 130 (2005)800।

4. र.द. रोजर्स, क.र. सेडन, आयनिक द्रव हरे रसायन की औद्योगिक उपयोगिता,इन: अ.क.स. सिम्पोसियम सिरिज, अंक 818, अमेरिकन केमिकल सोसाइटी, वाशिंगटन, दस, 2002।

5. ज.र. लैकोविज, प्रतिदीप्ति स्पेक्ट्रमदर्शिता का सिद्धांत, तृतीय संस्करण, स्प्रिंजर–वरलाग, न्यूयॉर्क, 2006 तथा प्रत्येक अध्याय के संदर्भ.

6. सरकार, अ.; त्रिवेदी, स.; बेकर, ग.अ.; पाण्डेय, स. ज. फिज. केम, B 2008,112,14927.

7. अली, म.; बेकर, ग.अ.; पाण्डेय स., केम, लेटर, 2008, 37,260.

राष्ट्र के एकीकरण के लिए सर्वमान्य भाषा से अधिक बलशाली कोई तत्व नहीं है। मेरे विचार में हिन्दी ही ऐसी भाषा है।

– लोकमान्य तिलक

ग्लोबल वार्मिंग के निराकरण के लिए CFC का विकल्प

डॉ. राजीव कुमार
सहायक प्रोफेसर, रसायन विज्ञान विभाग
शिवाजी कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय
डॉ. रजनी जौहर छटवाल
सहायक प्रोफेसर, अनुप्रयुक्त विज्ञान विभाग,
भारती विद्यापीठ, इंजीनियरी कालेज, दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

आधुनिक युग में ग्लोबल वार्मिंग पर सभी का ध्यान केंद्रित हो रहा है क्योंकि इसका सीधा प्रभाव हमारे पारिस्थितिकी तंत्र (ecosystem) तथा सम्पूर्ण मानव समाज पर प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप से पड़ रहा है। तापमान में हो रहे परिवर्तनों का तुलनात्मक आंकलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बीसवीं सदी के तापमान में 1.4°F की वृद्धि हुई है तथा पिछले 30 वर्षों में कुछ स्थानों पर यह 2°F तक बढ़ गया है और ऐसा अनुमान लगाया जा रहा है कि अगले आने वाले 100 वर्षों में यह 11°F तक बढ़ जाएगा। प्राकृतिक तथा मानव की कुछ गतिविधियों की ग्लोबल वातावरणीय परिवर्तनों के प्रभावीकारकों के रूप में पहचान की गई है। वैज्ञानिक प्रयासों तथा अनुसंधान द्वारा यह स्पष्ट हुआ कि उत्पन्न ग्रीन हाउस गैसों का वातावरण में विसर्जन इसके मूल कारक है। ग्लोबल वार्मिंग हमारे समुद्रीय स्तर, पारिस्थितिकी तंत्र तथा पृथ्वी के ध्रुवों पर जमी बर्फ को प्रभावित करता है। इस शोध पत्र में तापमान में हो रहे परिवर्तनों तथा उनके कारकों के वैज्ञानिक विवेचन के साथ, इस गम्भीर समस्या का अभिनव समाधान प्रस्तुत है।

2.0 भूगोलीय तापमान वृद्धि – एक वैज्ञानिक दृष्टि

राष्ट्रीय वायुमण्डल अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली ने वायुमण्डलीय परिवर्तनों के मनुष्य जनक व वातावरणीय कारकों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है जो बीसवीं शताब्दी से अब तक के वातावरणीय तापमान के अध्ययन पर आधारित है।

तापीय अध्ययनों और संबंधित आंकडों की तुलना से यह स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है कि वातावरणीय तापमान में पिछली शताब्दी की तुलना में तेज़ी से वृद्धि हो रही है (चित्र–1)। अगर हम पिछले 9 से 10 वर्षों के आंकड़ों का अध्ययन करें तो तापमान में हो रही वृद्धि का आकलन किया जा सकता है तथा इस वृद्धि के कारण हो रहे वातावरणीय परिवर्तनों को प्रयोगात्मक रूप से देखा जा सकता है। समुद्रीय तापमान का बढ़ना, पर्वतीय हिम–खण्डों और पृथ्वी के ध्रुवों पर जमी बर्फ का पिघलना आदि उदाहरण वैज्ञानिक आकलन और अन्य तथ्यों को संकलित कर यह प्रदर्शित कर सकते हैं। ज्वालामुखी उधखण्डों और सूर्य विकिरण में हो रहे परिवर्तन भी अन्य प्राकृतिक कारकों के अन्तर्गत आते हैं।
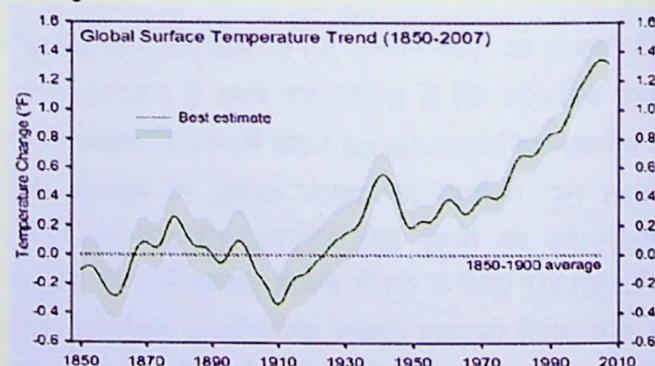
चित्र–1 : वैश्विक सतही तापक्रम पैटर्न (1850-2007)
(स्रोत–एनसाइक्लोपीडिया ऑन ग्लोबल वार्मिंग)

मानव जीवनशैली द्वारा विसर्जित ग्रीन हाउस गैसें भी ग्लोबल वार्मिंग का मुख्य कारक है जो सूर्य उष्मा को संचित कर पुनः इसे तापीय ऊर्जा के रूप में उत्सर्जित करतीं हैं। पिछले 50 वर्षों में मानव गतिविधियों द्वारा उत्पन्न इन ग्रीन हाऊस गैसों ने भूमण्डलीय तापमान में 66–99% वृद्धि की है।

3.0 मनुष्य की गतिविधियाँ और वातावरणीय परिवर्तन

शोध से यह प्रमाणित हो चुका है कि पिछले पाँच दशकों में होने वाले वातावरणीय परिवर्तनों (CO_2 व अन्य ग्रीन हाउस गैसों की प्रतिशत मात्रा का बढ़ना) का मुख्य कारण मनुष्य के क्रियाकलाप है। उत्पन्न CO_2 की 50% मात्रा समुद्र व पेड़–पौधों द्वारा अवशोषित कर ली जाती हैं तथा शेष CO_2 की मात्रा वायुमण्डल में बची रह जाती है जिसका असर ग्रीन हाउस प्रभाव के रूप में परिलक्षित होता है। मनुष्य की विभिन्न गतिविधियों द्वारा वातावरण में नाइट्रोजन आक्साइड और मिथेन गैस का बढ़ना भी ग्लोबल वार्मिंग का दूसरा मुख्य कारक है। मनुष्य सभ्यता के विकास के क्रम में पृथ्वी गर्भ में स्थित ईंधन (fossil fuel) का

बढ़ता प्रयोग भी प्राकृतिक वातावरण को दूषित करता है। इस कथित विकास की दौड़ में वन जो एक प्राकृतिक धरोहर है, उजड़ने के कगार पर है। इससे वायुमण्डल का प्राकृतिक संतुलन बिगड़ रहा है। Fossil fuel का प्रयोग तथा वनों की कटाई अप्राकृतिक वातावरणीय परिवर्तनों के मुख्य कारण हैं। अभी हाल में यूरोप में ज्वालामुखी फटने के कारण हुए वायुमण्डलीय परिवर्तनों से पूरे यूरोप में जैव मण्डल (biosphere) के रासायनिक तथा भौतिक कम्पोजिशन के परिवर्तनों से जीवन शैली अस्त–व्यस्त हो गई थी। ग्लोबल वार्मिंग के विभिन्न पहलुओं को मद्देनजर रखते हुए ऐसा स्पष्ट होता है कि विश्व स्तर पर औसत तापक्रम वृद्धि से ज्वालामुखी विस्फोट (volcanic eruption) की सम्भावना बढ़ जाएगी जो आने वाले समय में मानव, समाज व प्रकृति के लिए एक बड़ा खतरा होगा। इस तरह की प्राकृतिक आपदाओं को नियंत्रित करने के लिए वर्तमान में वैज्ञानिकों के पास कोई भी उपाय नहीं है। अतः प्राकृतिक धरोहर को संजोकर आने वाली पीढ़ी को एक स्वच्छ व प्रदूषण रहित वातावरण देना वैज्ञानिकों की जिम्मेदारी है।

4.0 वातावरणीय परिवर्तन के दुष्प्रभाव : एक समग्र दृष्टि

4.1 इकोलोजी, कृषि व जीवन चक्र पर प्रभाव

वातावरणीय परिवर्तन पारिस्थितिकी तंत्र व मानव सभ्यता विकास के विभिन्न पहलुओं जैसे कृषि, यातायात और स्वास्थ्य संबंधी ढांचागत सुविधाओं को प्रभावित करेंगे, यह तो हमारी सोचभर है। इसके दुष्परिणाम तो इससे भी भयावह होंगे। परोक्ष व प्रत्यक्ष रूप से भी ये वातावरण में उपजे अवाँछनीय परिवर्तन से कृषि उत्पादन व अन्य जीवों के जीवन चक्र को प्रभावित करते हैं।

समुद्रीय जल स्तर के बढ़ने से बंगलादेश जो गरीब देशों की श्रेणी में आता है उसके भूभाग का 17.5% भाग जल मग्न हो जाएगा। इसके साथ–साथ दक्षिण अफ्रीका, वेस्ट इंडीज, श्रीलंका व भारत के भी कुछ द्वीप समूह अपना अस्तित्व खो देंगे। इन भूभागों के विलुप्त हो जाने से वनस्पति तथा जीव–जन्तु का एक बड़ा समूह नष्ट हो जाएगा तथा मानव सभ्यता पर इसके प्रभाव की कल्पना नहीं की जा सकती है। अमेरिका और इंग्लैंड जैसे विकसित देश भी इससे अछूते नहीं रह पाएंगे क्योंकि वातावरणीय परिवर्तनों के कारण पर्वत श्रृंखलाओं पर जमी बर्फ के पिघलने, समुद्री जल स्तर के बढ़ने, उपजी नई कृषि समस्याओं व दूसरे कारकों से होने वाली तबाही को वह विज्ञान व प्रौद्योगिकी के बल पर भी नहीं रोक पाएंगे।

4.2 क्लोरोफ्लोरोकार्बन के विभिन्न उपयोग तथा दुष्प्रभाव

आधुनिकता को सामाजिक विकास से जोड़ते हुए मानव ने कई अव्यवहारिक तथा अप्राकृतिक साधनों का प्रयोग कर पारिस्थितिकी तंत्र के प्राकृतिक प्रारूप से छेड़– छाड़ की है। उदाहरण के लिए वैज्ञानिकों ने क्लोरोफ्लोरोकार्बन के उपयोग (फ्रिज और वातानुकूलित यंत्रों के विकास में) में वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं अपनाया। यह सैद्धांतिक और व्यवहारिक भूल पूरे भूमण्डल के लिए चुनौती ले कर आया। आज भी हम क्लोरोफ्लोरोकार्बन (CFC) तथा उनके कई उत्कर्षकों का अग्निशामक पदार्थ (fire extinguishers) तथा औषधि में उपयोग कर रहे हैं। कई विकसित देश जैसा कि कोरिया, अमेरिका में प्राकृतिक रूप से घने जंगल आग लगने से नष्ट हो जाते हैं। इन देशों में इस प्राकृतिक आपदा को रोकने के लिए CFC पदार्थ का अग्निशामक के रूप में उपयोग किया जाता है। तात्कालिक (short-term) उपायों में इनका उपयोग उपयुक्त हो सकता है परन्तु इन तत्वों का वायुमण्डलीय जीवनकाल अधिक होने की वजह से यह वायुमण्डल में हजारों साल तक विद्यमान रहते है जिसके कारण समतापमण्डलीय क्षेत्र (stratospheric zone) का क्षरण हो रहा है जो एक अत्यन्त गंभीर समस्या है।

कुछ महत्वपूर्ण औषधियों में भी वैज्ञानिकों ने इन क्लोरो–फ्लोरो–कार्बन का उपयोग किया है। जैसा की अस्थमा के इलाज के लिए हम इनहैर्लस का प्रयोग करते हैं। निरन्तर उपयोग करने से मरीज के फेफड़ों की कोशिका भित्ती तथा म्यूकस (mucous) विघटित हो जाती है। धीरे–धीरे अस्थमा के मरीज में कैंसर से ग्रस्त होने की संभावनाएँ बढ़ जाती हैं, यह विचार हाल ही में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (AIIMS) दिल्ली में आयोजित सम्मेलन में उठाया गया।

5.0 समाधान की नयी वैज्ञानिक दृष्टि व भावी प्रयास

उपर्युक्त समस्याओं के समाधान के लिए ग्रीन हाऊस गैसों के विसर्जन को रोकना ही एक मात्र व्यवहारिक वैज्ञानिक उपाय हो सकता है। जैसा कि हम जानते हैं कि ग्रीन हाउस गैसों के अणु हमारे वातावरण में कुछ वर्षो नहीं, सदियों तक बने रहते हैं। विश्व की सरकारों को क्लोरोफ्लोरोकार्बन (chloro fluoro carbon) के उत्पादन, उनके प्रयोग तथा वातावरण में विसर्जन को प्रभावी रूप से रोकना चाहिए क्योंकि क्लोरोफ्लोरोकार्बन में उपस्थित क्लोरीन के परमाणु हमारी ओजोन परत (जो ultra violet विकिरण से हमारे जैविक सिस्टम का बचाव करती हैं) को तेजी से विखण्डित कर रहे है। अतः वैज्ञानिक अनुसंधान द्वारा CFC का उपयुक्त विकल्प तलाश करने की जरूरत है।

विकास और उसके सभी पहलुओं का ऊर्जा से एक गहन सम्बन्ध है। चाहे वो औद्योगिक विकास हो या परिवहन या फिर सामाजिक विकास, सभी के लिए ऊर्जा महत्वपूर्ण हैं तथा fossil fuel ऊर्जा जरूरतों को पूरा करने का सबसे बड़ा स्रोत है। ऊर्जा से जुड़े विभिन्न तथ्यों के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है

कि ग्रीन हाऊस गैसों के उत्सर्जन का 82% भाग fossil fuel के ऑक्सीकरण से आता है। अतः नवीनीकृत ऊर्जा का अधिक उपयोग करना चाहिए। इस दिशा में स्थिति काफी आशाजनक है। वाँछित परिणाम प्राप्त करने के लिए पैराडाइम/चिन्तन मनन में परिवर्तन अनिवार्य है।

5.1 वातावरणीय परिवर्तन के पूर्व आकलन के लिये नया मॉडल विकसित करने की आवश्यकता।

वातावरण में हो रहे परिवर्तनों को समझने के लिए पूर्व अनुमानित मॉडल और वातावरणीय परिवर्तनों के बीच के अन्तर की तुलना करते हुए गणितीय भौतिक आंकडों से प्राप्त मॉडल वैज्ञानिकों द्वारा विकसित किए गए हैं। प्रस्तावित मॉडल में प्रथम लेखक ने CFC के विकल्प के रूप में perfluoro carbon को ध्यान में रखकर कम्प्यूटरीकृत डिजाइन व सम्बन्धित गणनायें की हैं। Perfluoro अणु, CFC से होने वाले दुष्प्रभाव से नितान्त भिन्न है, क्योंकि फ्लोराइड बंध प्रकृति में सबसे मजबूत बंध है अतः फ्लोराइड आयन वातावरण में नहीं पहुँच सकते है। स्वाभाविक है कि यह मॉडल वातावरणीय दुष्प्रभाव के महत्वपूर्ण अवयव (critical component) के उपयुक्त विकल्प को समाहित करके विकसित किया गया है। अतः सही समाधान दे सकेगा, यह आशा है। पूर्व में विकसित किए गए मॉडल ग्लोबल वार्मिंग और पिछली शताब्दियों में वातावरणीय परिवर्तनों के विभिन्न महत्वपूर्ण तथ्यों को उजागर करने में पूर्णतः सक्षम हैं लेकिन पर्यावरण को नुकसान पहुंचाने वाले CFC को लेकर ही सभी गणना व विश्लेषण पर आधारित है। अतः सही समाधान प्रस्तुत करने में असमर्थ है।

5.2 क्लोरोफ्लोरोकार्बन का सशक्त व व्यवहारिक विकल्प

पिछले बीस वर्षों में यह विस्तृत तौर पर स्वीकार किया गया है कि मानव निर्मित 'halocarbons' ने पृथ्वी के वायुमण्डल में उपस्थित 'stratospheric' ओजोन परत को क्षति ग्रस्त किया है। अब 'Montreal और Kyoto protocol' के रूप में एक संवैधानिक संस्था अस्तित्व में आई है जिसने रसायनिक पदार्थों के प्रयोग पर रोक लगाई जो ओजोन परत के क्षतिग्रस्त होने के लिए जिम्मेदार थे। रूस के वैज्ञानिकों द्वारा अवांछित रासायनिक पदार्थों के स्थान पर वैकल्पिक रूप से ओजोन परत की सुरक्षा की दृष्टि से Perfluoro अणुओं को परिकल्पित किया गया है। इस संदर्भ में प्रथम लेखक ने परफ्लोरों (Perfluoro) अणुओं का विकास करने की परिकल्पना करते हुए कुछ परफ्लोरो पदार्थों के उत्पादन की नई विधियां विकसित की हैं। वास्तव में यह परफ्लोरो अणु ही अवांछित रासायनिक पदार्थों का एक मात्र विकल्प है। इसलिए दुनिया का वैज्ञानिक समुदाय इस तरह के विकल्पों की खोज में लगा हुआ है।

इस शोध कार्य में एक अभिनव विकल्प को प्रस्तुत करने के लिए विभिन्न आयामों जैसे गणितीय व संगणकीय (computational) मॉडलों का अध्ययन करते हुए एक कार्बनिक संरचना प्रस्तुत की गई है जो फ्लोरीन (fluorine) अणुओं से बना है और इस शोध क्षेत्र में एक उन्नत विकल्प के रूप में स्थापित होगा। महत्वपूर्ण बिन्दुओं को रेखांकित करते हुए यह मॉडल प्रस्तावित किया गया है।

6.0 उपसंहार

प्रकृति द्वारा निर्मित वातावरण तथा उसके जीवों से पारस्परिक सम्बन्ध ने हमारे इस ग्रह को एक अद्भुत पहचान दी है। लेकिन इस हरित ग्रह तथा इसके वातावरण को मानव ने अवांछित क्रियाकलापों से हानि पहुँचाकर इसके प्राकृतिक रूप को बिगाडा है। मानव सभ्यता का विकास तथा उससे जुड़े दूसरे पहलूओं का अध्ययन यह दर्शाता है कि मानव ने प्रकृति के साथ अनावश्यक रूप से उसके विकास को बाधित किया है। इस संदर्भ में परफ्लोरो अणुओं के विकास व उत्पादन के लिए अनुसंधान कार्य इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है। इनके विकास में कम्प्यूटरीकृत रसायन विज्ञान की भूमिका महत्वपूर्ण साबित होगी। वातावरणीय कारकों का पूर्व आकलन कर नवप्रवर्तन निवारण सुझाए जा सकते है जिससे प्रकृति तथा वातावरणीय संतुलन में समन्वय स्थापित किया जा सकता है। अन्ततः यही कहा जा सकता है कि हरित ग्रह पृथ्वी को बचाने के लिए शीघ–अतिशीघ्र हमें अभिनव प्रयास करने होंगे। अन्यथा सोचने और समझने के लिए भी हमें समय नहीं मिलेगा और अनगिनत जीवों की विभिन्न प्रजातियाँ विलुप्त हो जाएंगी तथा पूर्ण व संतुलित इको सिस्टम को बरकरार रखने की कल्पना व्यर्थ होगी।

आभार

लेखकगण इस शोध पत्र को तैयार करने के लिये प्रो. सन्तोष सत्या, आई.आई.टी. दिल्ली की एक नयी दृष्टि का आदर करते हैं।

संदर्भ

1. ग्लोबल वार्मिंग, एलीवेशनल रेंज शिफ्टस और लोलेंड बाओटिक एटरीशन इन द वेट ट्रोपिक, रोबर्ट के कोलवेल ईटाल. साईस, 322, 258 (2008)
2. ऑर्गेनिक सिंथेसिस और इंडस्ट्रियल ऑर्गिनिक कैमिस्ट्री 783, (2005)।
3. कम्प्यूटेशॅनल कैमिस्ट्री ऑफ परफ्लोरोनेटिड़ मोलिक्यूलस, डी.आर.डी.ओ. परियोजना (2008)

भौतिक विधि द्वारा कोयले से गंधक निष्कासन

डॉ. सपना जैन
रसायन विज्ञान विभाग
शारदा विश्वविद्यालय, ग्रेटर नोएडा
डॉ. रत्ना चौधरी
सह प्रोफेसर (सेवानिवृत्त), ऊर्जा अध्ययन केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

सारांश

कोयले ने स्वयं को एक विश्वसनीय व्यवसायिक एवं मुख्य ऊर्जा स्रोत के रूप में स्थापित किया है। परन्तु उसका सम्पूर्ण प्रयोग गंधक की उपस्थिति के कारण सम्भव नहीं हो पाता। कोयले से गंधक (सल्फर) निकालने के लिए अन्वेषी अनुसंधान कार्य किया गया है जिसके लिए अधिक सल्फर, अधिक राख व अधिक कोकिंग इंडेक्स (coking index) वाले आसाम कोयले का प्रयोग किया गया है। आसाम कोयले का प्लास्टिक तापमान (Plastic temperature) निर्धारित किया गया, जो कि उस कोयले का सर्वाधिक वेदनीय व कमजोर तापमान है। इस तापमान पर कोयले में विद्यमान बहुलक टूट जाते हैं उनके बन्ध (bonds) कमजोर पड़ जाते हैं। इस प्रकार से इस 'प्लास्टिक तापमान' पर सर्वाधिक सल्फर निष्कासन संभव हो पाया। अधिकतम परीक्षण इसी तापमान पर किए गए और इसके लिए भौतिक विधि–"विलायक–वाष्प निष्कर्षण" (solvent-vapour extraction) तकनीक का प्रयोग किया गया है।

1.0 पृष्ठभूमि

कोयले को साफ करने की प्रक्रिया का अभ्यास वर्षों से किया जा रहा है। कोयले से मिनरल पदार्थ (mineral matter) जो कि उपयोग के पश्चात् राख में बदल जाता है, अधिकतर उसे कोयले से निकाला जाता है, परन्तु so_x नियंत्रक कानूनों के दवाब के कारण सल्फर का निष्कासन बहुत महत्वपूर्ण हो गया है।

किसी भी भौतिक सल्फर निष्कासन तकनीक को प्रभावशाली बनाने के लिए कोयले से पॉईराइटिस (Pyrites) का निष्कासन अत्यावश्यक है। इसके लिए कोयले का संदलन किया जाता है। पॉईराइटिक सल्फर अथवा पाईराइटिस का निष्कासन उसकी संरचना पर निर्भर करता है। बाहरी पॉईराइटिस सरल यांत्रिक तकनीक से निकाला जा सकता है। परन्तु आंतरिक पॉईराटिस व ऑर्गेनिक सल्फर को केवल रासायनिक विधि से ही निकालना संभव है, जैसे–अम्ल निक्षालन (acid leaching) आदि (चौधरी और भक्तवत्सलम्, 1994)।

रासायनिक सल्फर निष्कासन विधि अत्यन्त लाभकारी लगती है, क्योंकि सभी प्रकार की संरचना में उपस्थित सल्फर इससे निकाले जा सकते हैं। आसाम कोयले से विलायक–वाष्प निष्कासन क्रिया द्वारा सल्फर निष्कासन के प्रयोग किए गए हैं। (मी, आदि, 2007)

2.0 प्रयोगात्मक कार्य

आसाम कोयले की विशेषता है कि वह सब–बिटुमिनस (sub-bituminous), अल्प राख (low ash), अधिक सल्फर व उत्तम कोकिंग (good coking index) गुण का होता है। इस कोयले का संदलन किया गया और उसका पाऊडर अत्यंत महीन बनाया गया। तदोपरांत इसे छाना गया। इसमें से आर्द्रता (moisture) निकालने के लिए इसे 383K पर करीब एक घंटा रखा गया। आसाम कोयले की भौतिक व रासायनिक गुण तालिका–1 में दी गई है।

तालिका 1 : आसाम कोयले का संगठन

आरम्भिक विश्लेषण (Proximate analysis)	(wt.%)
आर्द्रता (Moisture)	2.5
राख (Ash)	6.4
वाष्पशील तत्व (Volatile matter)	40.7
फिक्स्ड कार्बन (Fixed Carbon)	50.5
अन्तिम विश्लेषण (ultimate analysis)	**(wt. %)**
कार्बन	72.9
हाईड्रोजन	5.1

नाइट्रोजन	1.1
सल्फर	3.0
आक्सीजन	11.4
राख	6.4

सल्फर वर्ग	**(wt.%)**
कुल सल्फर (Total Sulfur)	3.0
पाईराईटिक सल्फर (Pyritic sulfur)	0.3
सल्फेटिक सल्फर (Sulphatic sulfur)	0.17
ऑर्गेनिक सल्फर (Organic Sulfur)	2.60

2.1 विलायक–वाष्प निष्कर्षण (solvent-vapour extraction)- संदलन, छानने व आर्द्रता निकालने के बाद इस कोयले का विलायक–भाप निष्कर्षण किया गया। टेट्रालिन व डेकालिन (Tetrain and Decalin) ऑर्गेनिक विलायक प्रयोग में लाए गए। इस प्रयोग के लिए एक नलीनुमा सिलिका (silica) रिएक्टर का प्रयोग किया गया। तोल कर एक निर्धारित मात्रा में कोयले को एक तार के जाली (wire mesh) में रखा गया जिसे कि रिएक्टर के अन्दर स्थापित कर दिया गया। इस रिएक्टर को हीटिंग टेप (heating tape) की सहायता से गर्म किया गया ताकि कोयले का तापमान 673–723K तक पहुँच जाए। तापमान रिकार्ड करने के लिए क्रोमल–एल्युमल थर्मोकपल (Chromel alumel thermo couple) का प्रयोग किया गया।

एक तीन निर्गम वाले राउंड बॉटम फ्लास्क (3-necked round bottomed flask) में टेट्रालिन (क्वथनांक–479K) लिया गया। एक अक्रियाशील (inert) वातावरण बनाने के लिए नाइट्रोजन गैस को कोयले (coal bed) के ऊपर से प्रवाहित किया गया और साथ ही विलायक वाष्प भी कोयले के ऊपर से प्रवाहित किए गए। इस तरह से विलायक वाष्प नाइट्रोजन की सहायता से कोयले के ऊपर 8 घण्टे बहते रहे, जिसका तापमान 673–723K तक था। पूरे सिस्टम के ठण्डा होने के बाद तब तक नाइट्रोजन गैस प्रवाहित होती रही जब तक कि टेट्रालिन के आखिरी अवशेष कोयले से न निकल गए हों। इसके बाद रिएक्टर से कोयले को निकाला, सुखाया व तोला गया।
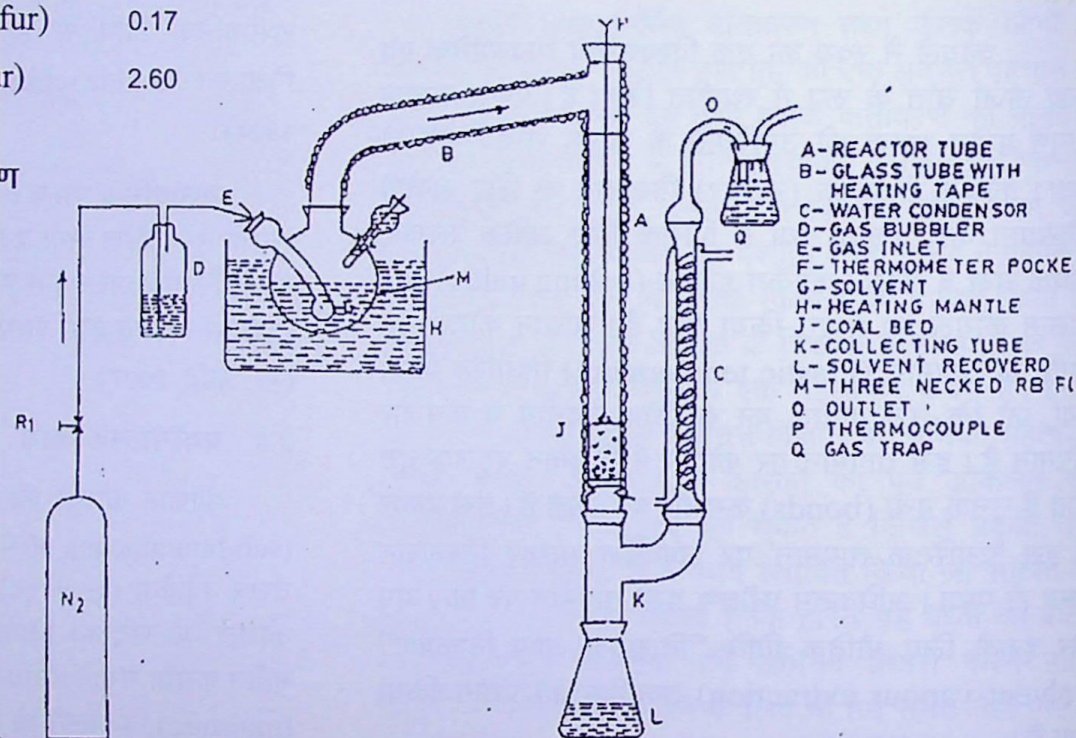
3.0 परिणाम व परिचर्चा

यह तापमान परास (Temperature range) जिस पर आसाम कोयला एक अर्धठोस अवस्था (semisolid mass) में बदल जाता है, 325–350^{0}C के बीच में है। इसे ही प्लास्टिक तापमान कहा जाता है। ठोस अवस्था से ज्यादा अर्धठोस अवस्था में सल्फर निष्कासन ज्यादा अच्छी तरह से होता है। कोयले को इस प्लास्टिक तापमान पर 8 घंटे तक संसाधित किया गया जिसमें दो अलग अलग विलायक प्रयोग किए गए ट्रेट्रालिन व डेकालिन। दोनों विलायकों के साथ कितना सल्फर निष्कासन हुआ, उसे तालिका–2 मे अंकित किया गया है। परिणामों से सिद्ध होता है कि टेट्रालिन के प्रयोग से 52.1%

तालिका 2 : विभिन्न विलायकों के द्वारा सल्फर निष्कासन (8 घंटे बाद)

विलायक	क्वथनांक (°c)	सल्फर की कुल मात्रा (%)		%सल्फर निष्कासन
		आरंभिक	अंतिम	
टेट्रालिन (Tetralin)	206	3.07	1.47	52.1
डेकालिन (Decalin)	198	3.07	1.70	44.6

संदर्भ

1. चौधरी, आर. व भक्तवत्सलम, ए.के. 1994; 'बेनिफिसिएशॅन ऑफ इण्डिया कोल बाई कैमिकल टेक्नीक्स; प्रोसिडिंग्स ऑफ सेमिनार ऑनक्लीन कोल टेक्नोलोजी; आई. आई.सी. टी., हैदराबाद।
2. जे. मी., जे. रेन; जे.सी. वंग; डब्ल्यू. आर.बाओ, एक्स.सी. जाई; एनर्जी सोर्सेज, 29; (14); जनवरी, 2007; पृष्ठ 1261–1268।

दंड द्वारा प्रजा की रक्षा करनी चाहिए लेकिन
बिना कारण किसी को दंड नहीं देना चाहिए।

— रामायण

भाग–IV

पर्यावरण एवं प्राकृतिक संसाधन व प्रबन्धन

वायु प्रदूषण एवं जैव सूचक लाइकेन

सुधा सिंह, शोध छात्रा
पर्यावरण विज्ञान स्कूल,
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
नई दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

वायु प्रदूषण को सामान्यतः विभिन्न उपकरणों के द्वारा मापा जाता है, लेकिन पिछले कुछ दशकों से लाइकेन (lichen) को वायु प्रदूषण के एक अच्छे जैव सूचक (bio-indicator) के रूप में पहचाना गया है। लाइकेन एक छोटा सा पौधा होता है जो प्रायः आम के तने पर पाया जाता है और एक धब्बे की तरह दिखता है। लाइकेन स्थलीय वातावरण में जैव सूचक का काम करता है और नगरीय, औद्योगिक और ग्रामीण क्षेत्रों में वायु प्रदूषण का सूचक है। भारी धातुओं जैसे जिंक, कैडमियम, निकिल, मरकरी आदि की उपस्थिति को सूचित करता है, जो कि ताप विद्युतीय संयत्र और नगर परिवहन तंत्र में वाहनों से उत्सर्जित होते हैं। लाइकेन में बहुत से गुण होते हैं जो कि लाइकेन को एक अच्छे जैव सूचक के रूप मे इंगित करते हैं। लाइकेन की अकारिकी (morphology) जो कि मौसम के अनुरूप बदलती नहीं है, उसमें क्यूटिकल्स (cuticles) की अनुपस्थिति और विकसित जड़ संरचना (root structure) द्वारा भारी धातुओं को वातावरण से शीघ्रता से संचित करने की क्षमता उसे एक अच्छा जैव सूचक बनाती हैं। लाइकेन बहुवर्षीय और धीमी गति से बढ़ने वाला पौधा है उसमें cuticles की अनुपस्थिति बहुत सारी धातुओं को उसकी सतह पर एकत्रित करने में सहायक होती है। लाइकेन एक जैव सूचक की तरह काम करता है, अर्थात् जहां पर वायु प्रदूषण होगा वहां पर लाइकेन नहीं पाया जाएगा और जो स्थान वायु प्रदूषण रहित होगा वहाँ पर लाइकेन अच्छी मात्रा में पाये जाते हैं।

2.0 लाइकेन – संक्षिप्त परिचय

शब्द 'लाइकेन' ग्रीक भाषा से लिया गया है जो कि सतही वृद्धि को चिन्हित करता है। थियोफ्रेटस (Theopharastus) जो कि वनस्पति विज्ञान के जनक माने जाते हैं उन्होंने इस लाइकेन शब्द का इस्तेमाल किया और इस पौधे को विश्व में वैज्ञानिकों से अवगत कराया। लाइकेन एक अकेला पौधा नहीं होता बल्कि वो सहजीवी पौधा है जो कि कवक ओर शैवाल से मिलकर बनता है। Toumefort (1700 AD) नामक वैज्ञानिक ने लाइकेन को पौधे के रूप में पहचान दी। अब तक लाइकेन की 80 प्रजातियाँ पहचानी गयी हैं। लाइकेन कवक और शैवाल का सहजीवी पौधा है जो कि एक थैलस (Thallus) में बंधे होते हैं। कवकीय भाग को mycobiont कहा जाता है और शैवालीय भाग को photobiont कहा जाता है। एस्कोमाइसिटीस (Ascomycetes), बेसिडियोमासिटीट (Basidiomycete), mycobiont होते हैं। कवक और शैवाल अलग–अलग पौधे हैं लेकिन वो सहजीविता के कारण एकल पौधा लाइकेन (lichen) बनाते हैं और लाइकेन एक एकल पौधे की तरह व्यवहार करता है। mycobiont भाग, लाइकेन में 90% होता है जो कि लाइकेन को रूप, आकार, और रंग प्रदान करता है। लाइकेन को mycota (fungi) वर्ग में रखा गया है।

2.1 लाइकेन सहजीविता एवं भारत में लाइकेन की संख्या

The photobiont:- शैवालीय भाग photobiont की तरह काम करता है।

The mycobiont:- कवकीय भाग mycobiont की तरह काम करता है।

लाइकेन भारत के क्षेत्रों में बहुतयात में पाया जाता है। जरूरी नमी, रोशनी, प्रदूषण रहित वायु लाइकेन की वृद्धि में सहायक होती है। अब तक लगभग विश्व में इसकी 20,000 प्रजातियाँ पहचानी गयी है और उनमें से लगभग 2,450 प्रजाति भारत में पाई जाती हैं।

2.2 लाइकेन के वृद्धि रूप

लाइकेन तीन प्रकार के होते हैं :-

(क) Crustose lichen:-

Crustose lichen मिट्टी, चट्टानों आदि पर पाए जाते हैं और पेड़ों की छालों पर भी पाए जाते हैं और ये अपनी

सतह पर बहुत मजबूती के साथ जुड़े होते हैं।
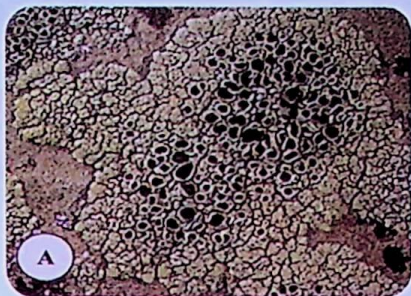
(ख) Fruticose lichen:-

Fruticose lichen बालों के गुच्छे के रूप में दिखाई पड़ते हैं। इनका आकार कुछ मि.मी. से लेकर मीटर तक में हो सकता है।

(ग) Foliose lichen:-

Foliose lichen पत्ती की तरह दिखाई देते हैं।

2.3 लाइकेन की मुख्य प्रजातियाँ

(1) लैकेनोरा (Lecanora) (2) बैसिडिया (Bacidia) (3) रेनोडिना (Rinodina) (4)पिक्सीन (Pyxine) (5) साइरोथिक्स (chrysothrix) (6) कैलोप्लाका (coloplaca)

3.0 लाइकेन का सर्वेक्षण एवं संग्रहण

लाइकेन एक महत्वपूर्ण जैव सूचक है। प्रदूषित वायु में बहुत सारे प्रदूषक पाए जाते हैं जैसे सल्फर–डाइ–ऑक्साइड, नाइट्रोजन–डाइ–ऑक्साइड, कार्बन और अन्य भारी धातुएँ। कुछ प्रदूषक कम मात्रा में वायु में उपस्थित होते हैं और वे सभी प्राणियों के लिए तब हानिकारक होते हैं जब ज्यादा मात्रा में उपस्थित होते हैं, क्योंकि वायु प्रदूषण विभिन्न रूपों में उपस्थित होता हैं अतः उसके लिए यंत्रमापी बनाना कठिन कार्य है। ऐसा यंत्र बनाना जो कि हर जगह, दिन और रात हर मौसम में वायु प्रदूषण को माप सके, आसान नहीं है। परिणामस्वरूप बहुत सारे माप सीमित होते हैं और एक ही प्रदूषक तक सीमित रह जाते हैं। चाहे हम शहर में रहे या देश से बाहर, हम सभी चाहते हैं कि हमारे आसपास की वायु स्वच्छ और शुद्ध हो, हमें एक ऐसे उपकरण की जरूरत है जो कि हर समय, हर मौसम में प्रदूषकों को पहचान सके और साथ ही वो सस्ता भी हो। लाइकेन कुछ हद तक इन जरूरतों को पूरा करता है। ये बहुत सस्ते हैं और आसानी से उपलब्ध होते हैं और इनमें बहुत सारे प्रदूषकों को पहचानने की क्षमता होती है। यह ध्यान देने योग्य बात है कि लाइकेन यह नही बताते हैं कि कितनी मात्रा में वायु में प्रदूषक उपस्थित हैं। यह सिर्फ यह बताता है कि प्रदूषक वायु में उपस्थित है या नहीं। भारत में अभी तक बड़े वृक्षों के साथ बहुत अनुसंधान कार्य हो चुका है लेकिन लाइकेन पर अभी तक बहुत कम अनुसंधान हुआ है। लाइकेन का सूचक के रूप में प्रयोग निम्नलिखित तरीके से किया जाता हैः–

सबसे पहले उस स्थान का चयन करना जहाँ पर लाइकेन की संख्या देखनी हो। उसके बाद निम्नलिखित वस्तुएं लाइकेन को एकत्रित करने के लिए जरूरी होती है :- हैण्ड लैंस, कैमरा, एक बैग, चाकू और हथौड़ी। लाइकेन को खेतों से इकट्ठा करने के बाद उसका प्रयोगशाला में अध्ययन किया जाता है। लाइकेन को निश्चित सीमा रेखा में एकत्रित किया जाता है जिसे zone mapping कहते हैं। zone mapping लाइकेन की उपस्थिति और अनुपस्थिति पर निर्भर करता है। इस आधार पर तीन प्रकार के क्षेत्र बनते हैं।

आन्तरिक क्षेत्र

यह क्षेत्र सबसे ज्यादा प्रदूषित होता है और प्रदूषण स्रोत के सबसे निकट होता है इसलिए इस क्षेत्र में लाइकेन सामान्यतः अनुपस्थित होते हैं।

मध्य क्षेत्र

यह प्रदूषित जगह से थोडा दूर होता है और यहाँ पर लाइकेन की कुछ जातियाँ पाई जा सकती हैं।

बाहरी सामान्य क्षेत्र

यह प्रदूषित जगह से काफी दूरी पर होता है और यहाँ पर लाइकेन की अच्छी वृद्धि देखने को मिलती है।

Zone mapping के बाद लाइकेन के फिजियोलोजिकल गुण क्लोरोफिल a क्लोरोफिल b, क्लोरोफिल c और प्रोटीन पर प्रयोग किए जाते है और देखा जाता है कि लाइकेन के इन तत्वों पर प्रदूषण का क्या प्रभाव पड़ता है।

4.0 लाइकेन के विभिन्न आर्थिक उपयोग

लाइकेन जैव सूचक होने के साथ सुन्दर रूपों में भी पाए जाते हैं और उनके निम्नलिखित आर्थिक उपयोग भी हैं–

(i) भोजन के रूप में

लाइकेन की उम्बलिकेरिया प्रजाति जापान में सलाद के रूप में खायी जाती है, जिसे lwatake' कहा जाता है। क्लैडोनिया प्रजाति जर्मनी में उपयोग की जाती है। लाइकेन की कुछ जातियाँ जैसे *cladonia Gracilis* और *parmelia tinctorum* प्रोटीन के अच्छे स्रोत होते हैं।

Map: Zonal distribution of lichens growing in and around National Thermal Power Corporation (Symbols indicating various lichen genera)
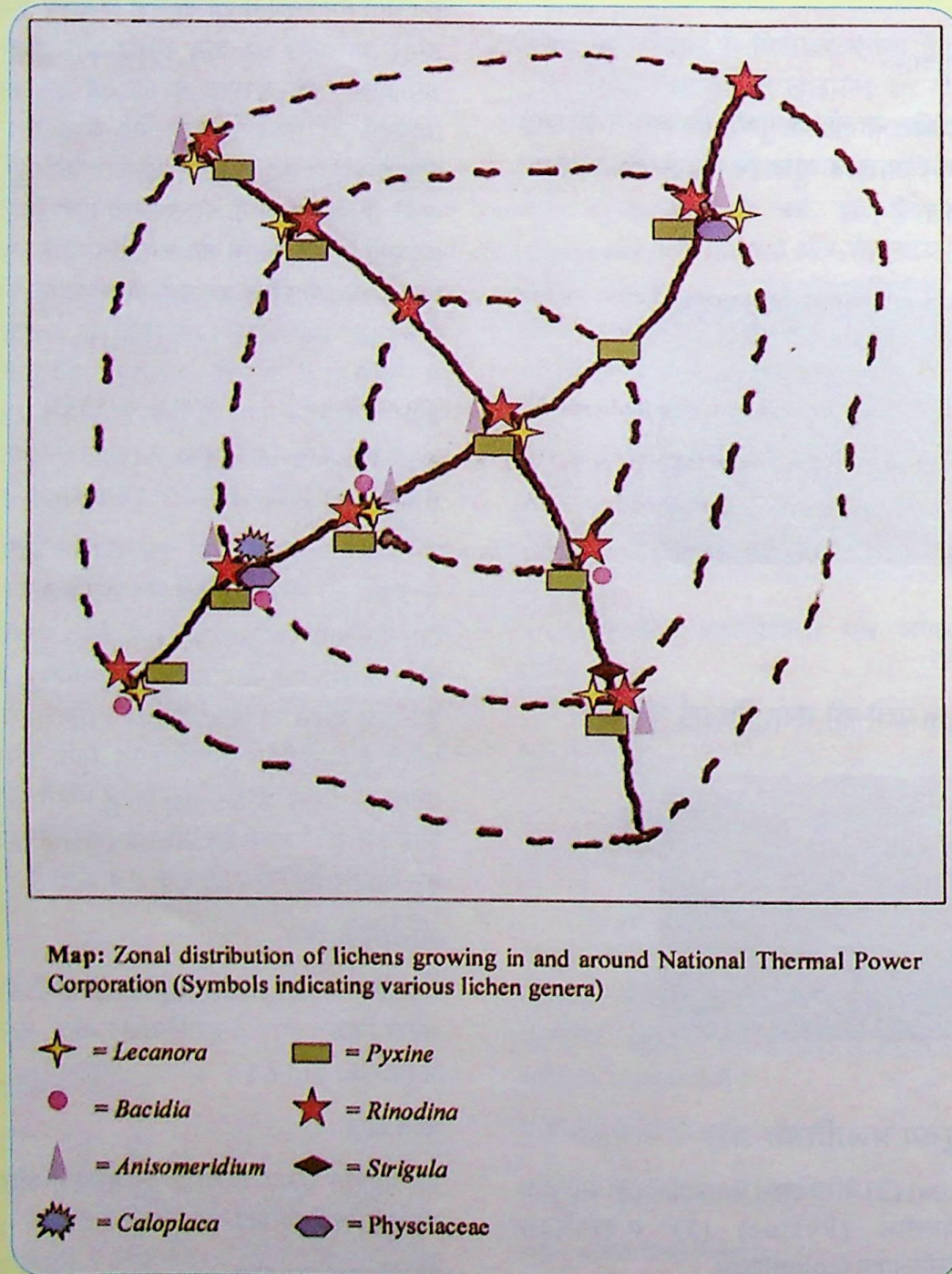
चित्र– 2 : दो दिशाओं मे आकारिकी परीक्षण (परिणाम) अर्थात् संग्रह के बाद उत्तर और दक्षिण दिशाएं।
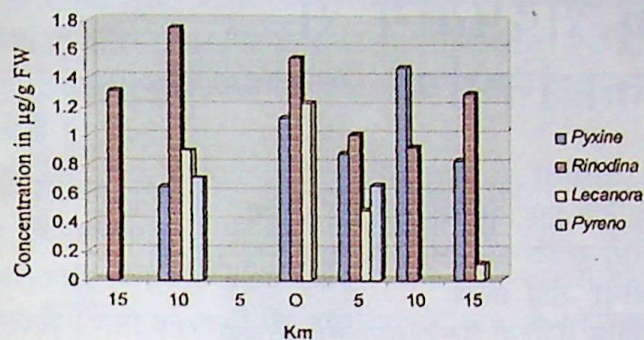
Graph: 1 Chlorophyll a (North-South)
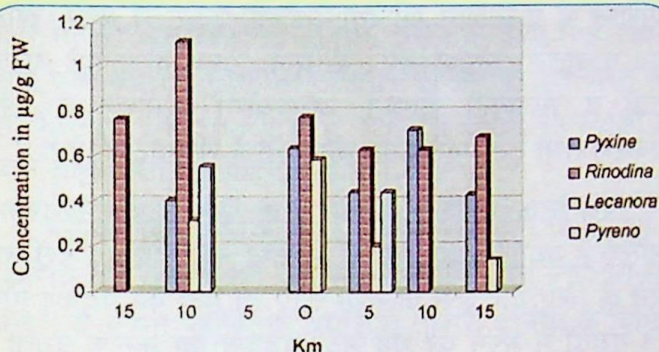
Graph: 2 Chlorophyll b (North-South)
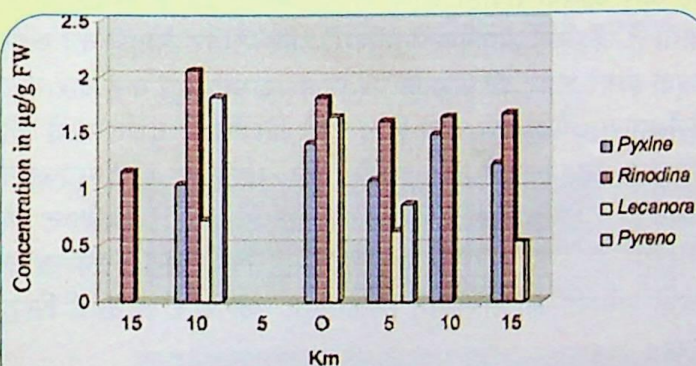
Graph: 4 Carotenoid (North-South)
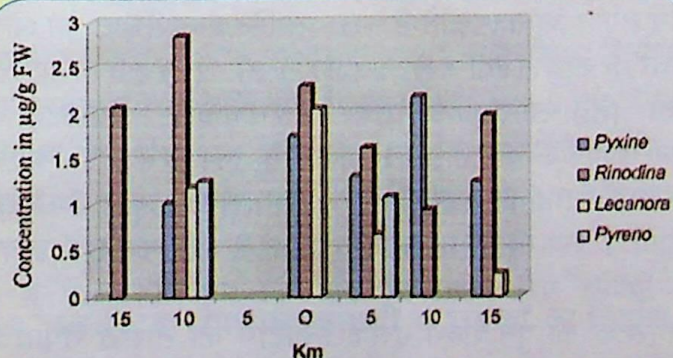
Graph: 3 Total Chlorophyll (North- South)

(ii) मसालों के रूप में

भारतीय बाजारों में लाइकेन को charilia नाम से बेचा जाता है और उसे भोजन में मसाले की तरह इस्तेमाल किया जाता है।

(iii) धूप और हवन सामग्री के रूप में

Cetrelia collata और *Evernia cirrihatum* आदि प्रजातियाँ भारत में धूपबत्ती और हवन सामग्री की तरह इस्तेमाल की जाती है।

(iv) चारे के रूप में

आर्कटिक क्षेत्रों में लाइकेन एक महत्वपूर्ण चारे के रूप में जानवरों के लिए उपयोगी होता है। Usnea और Cetraria आदि प्रजातियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय है।

(v) औषधि के रूप में

लाइकेन की कुछ प्रजातियाँ जैसे, *melanelia infumata, Parmotrema nilghervense* और *Buellia Subsororioides* आदि औषधि के रूप में प्रयोग की जाती है।

संदर्भ

1. अवस्थी, डी.डी. 2000, एँ हैण्ड बुक ऑफ लाइकेन्स बिशन सिंह महेन्द्र पाल सिंह, देहरादून भारत।
2. बाजपेई, ए (2000), पल्यूशॅन मॉनिटरिंग इन लखनऊ सिटी विद दि हेल्प ऑफ लाइकेन ट्रासप्लॉट टेक्नीक्स। लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, उत्तर प्रदेश।
3. बाजपेई, आर, उप्रेती, डी.के. तथा मिश्रा एस.के., (2004) पल्यूशॅन मॉनिटरिंग विद दि हेल्प ऑफ लाइकेन ट्रॅासप्लॉट टेक्नीक ऐट सम रेजिडेन्शियल साइट्स ऑफ लखनऊ सिटी, उत्तर प्रदेश, जे. एनवायरन बायल 25(2), 191–195।
4. दास, टी.एम. (1985), लोअर ऐन्ड हॉयर प्लॉट ग्रुप ऐज इन्डिकेशॅन ऑफ एयर पल्यूशॅन, शम्प बायोमॉनिटरिंग स्टेट एनवायरन: 232-234।
5. उप्रेती, डी.के. ऐन्ड बाजपेई ए. (2002) इन : सेकण्ड इन्टरनेशॅनल कॉन्फ्रेन्स ऑफ प्लाट्स ऐन्ड एन्वायरनमेन्टल लखनऊ: 51।
6. उप्रेती, डी.के., नायक एस. ऐन्ड सत्या (2005), एन्युमिरेशॅन ऑफ लाइकेन फ्रॉम मध्य प्रदेश ऐन्ड छत्तीसगढ, भारत, जरनल ऑफ अप्लाइड बायोसाईस 31 (I) : 55-63।

प्लास्टिक अपशिष्ट के सदुपयोग से टिकाऊ सड़कों का निर्माण

डॉ. संगीता
वैज्ञानिक एफ, सुनम्य कुट्टिम प्रभाग
केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली
सबीना, शोध छात्रा,
जामिया मिलिया इस्लामिया नई दिल्ली

सारांश

प्लास्टिक अपशिष्ट एकत्र होने का मुख्य कारण प्लास्टिक का दुरुपयोग एवं इसका कुप्रबंधन है । निपटान–योग्य प्लास्टिक का बार–बार उपयोग, इसका विवेकहीन दुरुपयोग एवं इसके निपटान के कुप्रबंधन के कारण प्लास्टिक अपशिष्ट की समस्या विकट होती जा रही है । ऐसे अपशिष्ट प्लास्टिक को सड़क निर्माण के लिए उपयोगी बनाया जा सकता है । गुणवत्तापूर्ण सड़क निर्माण के लिए अपशिष्ट प्लास्टिक को शुष्क प्रक्रिया, आर्द्र–प्रक्रिया एवं अर्ध आर्द्र–प्रक्रिया में से किसी भी एक प्रक्रिया का प्रयोग करके इसका उपयोग किया जा सकता है । इस शोध पत्र में केवल शुष्क प्रक्रिया द्वारा पॉलीथिन, पॉली प्रोपाईलीन एवं पॉलीथिन और पॉली प्रोपाइलीन (1:1 मिश्रण) के चूरे को समान मात्रा में मिलाकर सड़क निर्माण मे उपयोग किया गया है। इस प्लास्टिक अपशिष्ट के तैयार मिश्रण को डामर मिश्रण में मिलाकर परीक्षण के लिए सड़क सतह बनायी गयी। डामरीय मिश्रण की गुणवत्ता में सुधार को मार्शल स्थायित्व मान, प्रवाहमान, धारित स्थायित्व, बृहत घनत्व, अप्रत्यक्ष तनन सामर्थ्य एवं रटिंग सम्भावना द्वारा ऑका गया । उपयुक्त परीक्षणों को परम्परागत डामर (प्लास्टिक रहित) एवं प्लास्टिक सहित डामर मिश्रणों पर करने के बाद यह निष्कर्व निकला है कि प्लास्टिक अपशिष्ट से सही मात्रा में सही विधि द्वारा अच्छी गुणवत्ता एवं अधिक टिकाऊ सड़कों की सतह का निर्माण एक अच्छा विकल्प है । इससे सड़कों के रखरखाव की लागत में कमी आएगी एवं पर्यावरण प्रदूषण नियंत्रित करने में सहायता मिलेगी ।

1.0 प्रस्तावना

वर्तमान उपभोक्तावादी संस्कृति में "उपयोग करो और फेंको" मूल मंत्र को अपनाए जाने का परिणाम यह हुआ है कि पूरी दुनिया में आज चारों ओर प्लास्टिक अपशिष्ट, इलेक्ट्रानिक अपशिष्ट, रबर अपशिष्ट एवं अन्य अनेक प्रकार के खतरनाक अपशिष्ट के ढेर नजर आने लगे हैं । इनमें से प्लास्टिक एवं रबर अपशिष्ट की बढ़ती मात्रा पर्यावरण के साथ–साथ अनेक जीव–जंतुओं के जीवन के लिए बहुत बड़ा खतरा बन गई है । पर्यावरण और प्राणी–जगत के लिए अत्यंत खतरनाक इस अपशिष्ट में पालीथिन थैलियाँ, खाली पैकेट व रैपर, खाली ट्यूब व बोतलें, स्कूटर–कार के पुर्जे, पाइप के टुकड़े, पुरानी चटाई व सजावटी सामान, अनुपयोगी फर्नीचर व घरेलू उपकरण तथा टूटे–फूटे बर्तन जैसी चीजें सम्मिलित होती हैं ।

प्लास्टिक अपशिष्ट पर्यावरण के लिए अत्यंत खतरनाक इसलिए है क्योंकि यह आसानी से नष्ट नहीं होता । इसे नष्ट करने के लिए यदि इसे जलाया जाए तो हवा का प्रदूषण होता है । गड्ढों में भरने पर यह मृदा प्रदूषण का कारण बनता है तथा जानवरों के लिए घातक सिद्ध होता है । पानी में फेंकने पर इससे जल प्रदूषण होता है जबकि इधर–उधर फेंकने के कारण यह और अधिक तबाही लाता है । स्थिति तब और बदतर हो जाती है जब यह अपशिष्ट नालियों और सीवर लाइन को जाम करके हमारे शहर की सड़कों पर जल–जमाव एवं कई बार बाढ़ जैसे हालात पैदा कर देता है । ऐसी स्थिति में दुर्घटनाओं की संभावना बढ़ जाती है तथा इनसे जान–माल का भारी नुकसान होता है । ऐसी स्थिति में, प्लास्टिक एवं रबर अपशिष्ट के निपटान के लिए सुरक्षित एवं पर्या–हितैषी उपायों की खोज करके समस्या का समाधान निकालना एक सार्थक कार्य सिद्ध होगा।

2.0 प्लास्टिक अपशिष्ट का निपटान

प्लास्टिक अपशिष्ट के निपटान के लिए मुख्य रूप से तीन उपाय अपनाए जाते हैं –(i) प्लास्टिक अपशिष्ट को अन्य कचरे के साथ गड्ढों में भरना (लैंडफिल), (ii) इसे जला देना तथा (iii) प्लास्टिक अपशिष्ट का पुनःचक्रण । प्लास्टिक के नष्ट न होने के कारण इसे लैंडफिल के रूप में गड्ढों में भरना इसके निपटान का सबसे आसान उपाय समझा जाता है। दूसरे उपाय के रूप में इसे जला दिया जाता है लेकिन इसके जलने से विषैली गैसें निकलकर हवा को प्रदूषित करती हैं । प्लास्टिक का पुनःचक्रण इसके निपटान का तीसरा उपाय है जो सबसे अधिक प्रचलित भी है । हमारे देश में प्लास्टिक अपशिष्ट के 60% से 70% भाग का पुनःचक्रण किया जाता है

जो मात्रा की दृष्टि से विश्व में सर्वाधिक है । पुनःचक्रण की प्रक्रिया के अंतर्गत प्लास्टिक कचरे से प्लास्टिक को पुनः प्राप्त करके इससे दुबारा उपयोग की प्लास्टिक की चीजें बनाई जाती हैं ।

लेकिन प्लास्टिक के उत्पादन तथा इसके निपटान के रूप में सामान्यतः प्रयुक्त पुनःचक्रण की विधि अत्यंत प्रदूषणकारी होने के कारण पर्यावरण को गंभीर रूप से बीमार बनाती है । यही कारण है कि धनी देश प्लास्टिक से बने सामान का धड़ल्ले से प्रयोग करते हैं लेकिन इसके निपटान के लिए दूसरे देशों पर निर्भर रहने के प्रयास करते हैं । आंकड़ों से पता चलता है कि पूरे विश्व में प्रयोग होने वाले प्लास्टिक की 80% खपत उत्तरी अमरीका एवं पश्चिम यूरोप के देशों में है जबकि इसके एक–चौथाई भाग का उत्पादन एशिया के देश करते हैं । यही कारण है कि इन देशों को पर्यावरण संबंधी समस्याओं का सबसे अधिक सामना करना पड़ रहा है ।

पर्यावरणीय दृष्टिकोण से हानिकारक होने के कारण ही विकसित देश अपने यहाँ प्लास्टिक अपशिष्ट का निपटान नहीं करते । वे अपना प्लास्टिक अपशिष्ट तीसरी दुनिया के विभिन्न देशों को भेज देते हैं । अमरीका की आयात–निर्यात अनुसंधान सेवा के हवाले से प्राप्त तथ्यों के आधार पर ग्रीन पीस संगठन के अधिकारियों का दावा है कि अकेले 1991 में अमरीका ने अपना 1 करोड़ प्लास्टिक अपशिष्ट अर्जेंटीना, चीन, इटली, घाना, इक्वाडोर, हांगकांग, हंगरी, भारत, इंडोनेशिया, सिंगापुर, पाकिस्तान जैसे देशों को निर्यात किया था । इस प्रकार, विकासशील देशों को विकसित देशों से आयातित प्लास्टिक अपशिष्ट तथा स्थानीय प्लास्टिक अपशिष्ट के दोगुने कचरे के निपटान की समस्या का सामना करना पड़ता है ।

3.0 प्लास्टिक अपशिष्ट सामग्री से सड़कों का निर्माण

सड़कों की सतह के निर्माण के लिए प्लास्टिक अपशिष्ट के उपयोग की संभावना ज्ञात करने के लिए केंद्रीय सड़क अनुसंधान संस्थान में बड़े स्तर पर अनुसंधान कार्य संपन्न किए गए हैं । इस अध्ययन के लिए प्लास्टिक अपशिष्ट एस. के. पालीमर, नई दिल्ली द्वारा उपलब्ध कराए गए थे । अनुसंधान के अंतर्गत डामरीय (asphalt) कंक्रीट मिश्रण में प्लास्टिक अपशिष्ट को मिलाया गया । इस प्रकार, प्लास्टिक अपशिष्ट की सही मात्रा को डामर में मिलाकर तथा सही विधि का प्रयोग करके सड़को की टिकाऊ सतह के निर्माण का पर्या–हितैषी विकल्प ज्ञात किया गया । प्रयोगशाला परीक्षणों में पहले रोड़ी की गुणवत्ता में सुधार हेतु एक विशेष तापमान पर अपशिष्ट चूर्ण को रोड़ी में मिलाने के बाद डामर में मिलाने का प्रयास किया गया । इस विधि के द्वारा बनाए गए डामरीय कंक्रीट मिश्रणों के इंजीनियरी गुणधर्मों एवं निष्पादन प्राचल में सुधार देखा गया । अगले अनुच्छेदों में प्लास्टिक अपशिष्ट सामग्रियों के उपयोग से सड़कों के निर्माण की इस विधि पर चर्चा की गई है ।

4.0 परिणाम एवं विवेचन

4.1 अध्ययन किए गए निष्पादन प्राचल

- स्वचालित मार्शल संघनक (Automatic Marshall Compactor) का प्रयोग करते हुए मार्शल स्थायित्व (Marshall Stability) और धारित स्थायित्व (Retained Stability)
- अप्रत्यक्ष तनन सामर्थ्य (Indirect Tensile Strength)
- रटिंग (rutting) विकृति परीक्षण

अन्वेषण में उपयोग किए गए आशोधक 200°C तापमान तक तापीय रूप से स्थिर होते हैं जिसे तालिका 1 में दर्शाए गए थर्मोग्रेविमैट्रिक एनालिसिस (TGA) के परिणामों द्वारा देखा जा सकता है । इसका अर्थ है कि इस तापमान तक इसमें कोई भार हानि नहीं होती और आशोधक को डामरीय मिश्रण में 200°C तापमान तक सुरक्षित रूप से प्रयोग किया जा सकता है।

तालिका 1–अपशिष्ट प्लास्टिक के भौतिक गुणधर्म

कमांक	विवरण	परास (रेंज)
1	विशिष्ट गुरूत्व (Specific gravity)	1.03
2	गलन तापमान(Melting Temperature)	100–170 डिग्री से0
3	अपघटन तापमान (Degradation Temperature)	> 250 डिग्री से0

आशोधित और परंपरागत डामरीय मिश्रणों के गुणधर्म तालिका 2 में दर्शाए गए हैं ।

- घटक सामग्रियों (मिलावा और डामर) पर किए गए विभिन्न प्रयोगशाला परीक्षणों से यह पाया गया कि उपयोग किए गए 80/100 वेधन (पेनिट्रेशन) ग्रेड कुट्टिम डामर और

है। सड़कों के निष्पादन में होने वाली वृद्धि से स्पष्ट है कि ऐसे प्रयोग स्वंय ही परियोजना की सफलता का सूचक हैं ।

5.0 निष्कर्ष

सामर्थ्य और मार्शल स्थायित्व, अप्रत्यक्ष तनन सामर्थ्य, डामरीय कंक्रीट मिश्रणों की रटिंग और धारित स्थायित्व जैसे

तालिका 2 – आशोधित और परंपरागत डामरीय मिश्रणों के गुणधर्म

परीक्षित गुणधर्म	PE	PP	PE : PP (1:1)	60/70
मार्शल स्थायित्व मान (किग्रा.)	1619	1477	1460	1190
प्रवाहमान (मि.मी.)	4.1	2.8	3.3	4.1
धारित स्थायित्व (प्रतिशत)	97	95	93	80
वायु रिक्ति (प्रतिशत)	3.0	2.92	3.9	3.6
बृहत् घनत्व (ग्रा./सीसी)	2.377	2.390	2.370	2.387
अप्रत्यक्ष तनन सामर्थ्य 25 °C,(Kg/Cm^2)	3.75	2.95	3.55	1.51

रोड़ी मानकों की निर्धारित सीमा को पूरा करते हैं । आशोधक (अपशिष्ट प्लास्टिक) मिलाने पर मार्शल स्थायित्व परंपरागत मिश्रणों से 1.22 से 1.36 गुणा उच्च है तथा धारित स्थायित्व में भी सुधार हुए हैं।

परंपरागत मिश्रणों की तुलना में आशोधक (अपशिष्ट प्लास्टिक) के साथ नमूनों के लिए आईटीएस मान 1.95 से 2.48 गुणा उच्च पाया गया । अपशिष्ट प्लास्टिक आशोधित मिश्रणों (2.7 मिमी. तक) की तुलना में परंपरागत मिश्रणों (8 मिमी. तक) के मामले में विरूपता (रटिंग) संभावना ज्यादा उच्च है ।

4.2 स्थल परीक्षण

उपर्युक्त वर्णित अपशिष्ट प्लास्टिक आशोधित डामरीय कंक्रीट मिश्रण का प्रयोग करके लोक निर्माण विभाग के अधीन आने वाली सड़क सं. 43 के 3.6 किमी. लंबे सड़क खंड पर वर्ष 2007 में 40 मिमी. डामरीय कंक्रीट सतह का निर्माण किया गया । यह पायलट परियोजना हमें DSIIDC द्वारा प्रायोजित की गई थी। नीचे दिए गए चित्रों में डामरीय कंक्रीट सतह के निर्माण से पहले (चित्र 1) और इस सतह के निर्माण के बाद (चित्र 2) सड़क की स्थिति दर्शाई गई है । चित्रों को देखकर सड़क की सतह में हुए सुधार का अनुमान लगाया जा सकता

प्रयोगशाला निष्पादन प्राचलों में महत्वपूर्ण सुधार देखे गए ।

यह स्पष्ट रूप से प्रकट करते हैं कि अपशिष्ट प्लास्टिक आशोधित डामरीय कंक्रीट मिश्रण अधिक टिकाऊ है, इसमें नमी के प्रति कम सुग्राहिता है और यह उन्नत निष्पादन प्रदान कर सकते हैं। हैमबर्ग व्हील ट्रैकिंग परीक्षण के परिणाम दर्शाते हैं

चित्र 1 – अपशिष्ट प्लास्टिक के आशोधित डामरीय मिश्रण बिछावन से पूर्व

चित्र 2 – आशोधित डामरीय मिश्रण बिछावन के बाद

कि परंपरागत डामरीय कंक्रीट मिश्रणों की तुलना में अपशिष्ट प्लास्टिक आशोधक वाले आशोधित मिश्रण विरूपता के लिए कम सुग्राही होते हैं।

अपशिष्ट प्लास्टिक आशोधित डामरीय कंक्रीट मिश्रण का प्रयोग अपशिष्ट प्लास्टिक सामग्रियों के निपटान हेतु सुरक्षित एवं पर्या–हितैषी उपाय है जो पर्यावरण–प्रदूषण की समस्या का प्रैक्टिकल समाधान प्रस्तुत करता है।

आभार

लेखक इस शोध पत्र को तैयार करने में प्राप्त सहायता और कुछ तकनीकी पहलुओं की जानकारी के लिए श्री संजय चौधरी, वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक के प्रति आभार व्यक्त करते हैं।

संदर्भ

1. डी.एन.लिटील,(1993); "एन्हॉन्स्मेंट ऑफ एस्फेल्ट कॉंक्रीट मिक्स्चर्स टू मीट स्ट्रक्चरल रिक्वायरमेन्ट थ्रू दि एडिशन ऑफ रिसॉइकल्ड पॉलिथीन, यूज ऑफ वेस्ट मॅटीरियल्स इन हॉट मिक्स एस्फेल्ट"; ए.एस.टी.एम स्पेशॅल टेक्नीकल पब्लिकेशॅन, इश्यू 1193,पृ. 210–230।

2. एस.ई. जूरोब ऐन्ड एल.वी. सुपर्मा; लैबोरेट्री डिजाइन ऐन्ड इन्वेस्टिगेशन ऑफ दि प्रोपर्टीज ऑफ कॉन्टिन्युअसलि ग्रेडिड एस्फेल्टिक कंक्रीट कॉन्टेनिंग रिसॉइक्लड प्लास्टिक एग्रीगेट रिप्लेस्मेन्ट (प्लास्टिफाल्ट); सीमेंट ऐन्ड कंक्रीट कॉम्पोजिट (2000 (अगस्त)), पृ. 233. अबस्ट्रेक्ट।

3. जूरोब, एस.ई., (अप्रैल, 2000),; "लैब्रोरेट्री डिजाइन ऐन्ड परफॉर्मेशन ऑफ इम्प्रूवड बिटूमिनस कॉम्पोजिट यूटिलाइजिंग प्लास्टिक पैकेजिंग वेस्ट"; कॉन्फ्रन्स ऑफ टेक्नोलोजी वॉच ऐन्ड इन्नोवेशन इन कन्स्ट्रक्शन इन्ड्रस्ट्री, बेल्जियम, बिल्डिंग रिसर्च इंस्टिट्यूट, ब्रुशलस, बेल्जियम।

4. प्रो. जस्टो सी.ई.जी., ऑनोरेरी प्रोफेसर, डॉ. ए. वीराराघवन (अप्रैल, 2002); "यूटिलाइजेशॅन ऑफ वेस्ट प्लास्टिक बैग इन बिटूमिनस मिक्स फॉर इम्प्रूवड परफॉर्मेशन ऑफ रोड्स, सेन्टर फॉर ट्रॉसपोर्टेशॅन इंजी. बंगलौर यूनिवर्सिटी, बैगलूरू, इण्डिया।

5. खाण्डाल, पी.एस. (1993); "वेस्ट मॅटीरियल्स इन हॉट मिक्स एस्फेल्ट एन ओवरव्यू, यूज ऑफ वेस्ट मॅटीरियल्स इन हॉल मिक्स एस्फेल्ट"; ए.एस.टी.एम. एस.टी.पी. 1193, एच. फ्रेड, ईडी, अमेरिकन सोसाइटी फॉर टेस्टिंग ऐन्ड मॅटीरियल्स, फिलाडेलफिया।

6. सेनन ऐन्ड ईमाइन; यूज ऑफ बेस्ट हाई डेन्सिटी पॉलिथीन ऐज बिटूमेन मॉडिफॉयर इन एस्फेल्ट कँक्रीट मिक्स; मॅटीरियल्स लेटर्स, वोल्यूम 58, इश्यू 3–4, जनवरी 2004, पृ. 267–271।

7. खोदानी ऐन्ड ए. मेहरारा; इवैल्यूएशॅन ऑफ परमानेन्ट डिफॉर्मेशन ऑफ अनमॉडिफॉइड ऐन्ड एस.बी.एस मॉडिफाइड एस्फेल्ट मिक्चर्स यूजिंग डाइनैमिक्स क्रीप टेस्ट; कन्सट्रक्शन ऐन्ड बिल्डिंग मॅटीरियल्स 23 (2009) 2586-2592।
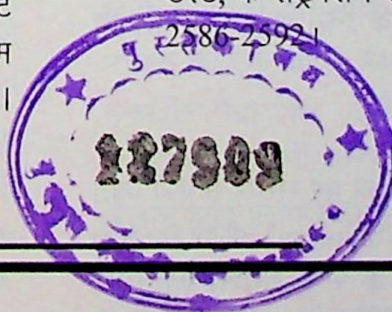
मानव एवं मच्छर–सतत तालमेल व अभिनव नियंत्रण व्यवस्था

डॉ. मोहिनी तिवारी,
पीयूष कुमार एवं **सपना मिश्रा** (शोध छात्र)
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

प्रस्तावना

मच्छर (Diptera: Culicidae) कीटों के एक महत्वपूर्ण समूह हैं जो जन स्वास्थ्य से जुड़ी बीमारियों जैसे कि मलेरिया, फाइलेरिया, डेंगू, येल्लो फीवर, इन्सेफेलाइटिस इत्यादि को फैलाने का कार्य करते हैं। पूरे संसार में खास कर दक्षिणी और दक्षिणी–पूर्वी अमेरिका के लाखों लोग हर साल इन रोगों से प्रभावित होते हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) के अनुसार पूरे विश्व में हर साल 300 मिलियन लोग मच्छर द्वारा फैलाए रोगों से प्रभावित होते हैं और हर 17 में से एक इंसान इन रोगों के कारण मरता है। मच्छरों द्वारा फैलाए जाने वाले रोग तालिका 1 में वर्णित हैं। यद्यपि ऐसा कोई उदहारण नहीं मिलता है जिससे यह साबित हो कि मच्छर HIV का संचार करते हो (क्योंकि HIV मच्छर या अन्य किसी कीट के अन्दर चले जाने पर भी वहां प्रजनन नहीं कर सकता ऐसी स्थिति में केवल कुछ समय तक ही जीवित रह पाता है, जिस कारण मच्छर या कोई अन्य कीट HIV से संक्रमित नहीं होते हैं), फिर भी न केवल इनके द्वारा फैलाये जाने वाले रोगों एवं इन रोगों के कारण होने वाली मृत्यु दर काफी अधिक है। साथ ही इनसे होने वाली आर्थिक और सामाजिक हानि भी कम विकसित देशों जैसे कि अफ्रीका, एशिया, लातिन अमेरिका (जहाँ ये संक्रमण रूप में है) के लिये चिंता का विषय रही है। इन देशों के ग्रामीण क्षेत्र जहाँ पर्याप्त नागरिक सुविधा उपलब्ध नहीं है, वहां इन रोगों की स्थिति और भी भयावह हैं, इसलिए मच्छर से उत्पन्न हुई विपदा और भय को दूर करने के लिये इनके नियंत्रण उपाय और भी अधिक जरूरी हो जाते हैं।

मच्छर जीवविज्ञान

मच्छर अन्टार्कटिका को छोड़ कर पूरे संसार में पाये जाते हैं। कीटों के श्रेणीविभाजन में मच्छर "Diptera" ऑडर (order) के सदस्य होते हैं, तथा इस ऑडर के सभी सदस्य कीटों की तरह इनके भी दो पंख होते हैं। हालाँकि भारतवर्ष में मच्छरों की 255 प्रजाति पायी जाती हैं, Culex quinquefasciatus, Anopheles stephensi और Aedes aegypti हर जगह व्याप्त प्रजाति हैं जो क्रमशः कई संक्रामक रोगों जैसे, मलेरिया, फाइलेरिया, डेंगू इत्यादि के लिए उत्तरदायी होती हैं।

मच्छरों का जीवन चक्र

मच्छरों के जीवन चक्र की चार अवस्थाएं होती हैं, अण्डा (Egg), लार्वा (Larva), प्युपा (Pupa) और वयस्क (Adult)। पहली तीन अवस्था पानी में होती हैं जबकि वयस्क सक्रिय और उड़ने वाले कीट होते हैं।
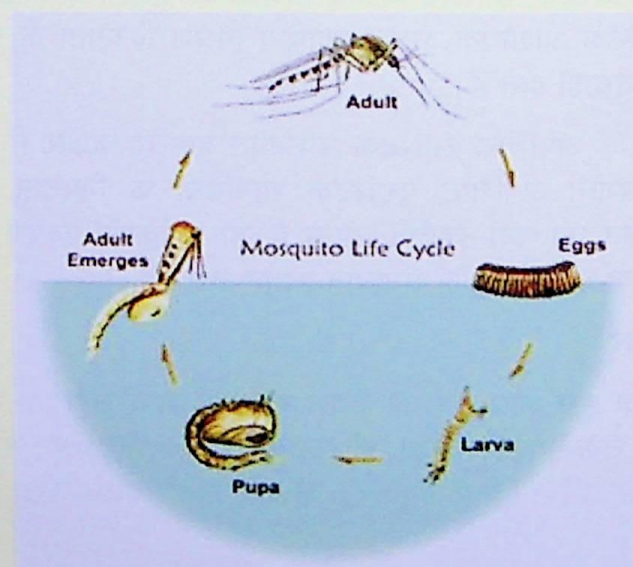
चित्र 1. मच्छर का जीवनचक्र

अण्डा – मादा मच्छर एक समय में सौ से भी अधिक अंडे देती है जो कि या तो पानी में या फिर नमी वाले सतह पर दिये जाते हैं। ऊष्मायन अवधि (incubation period) अंडे सेने, पर्यावरणीय और आनुवांशिक कारकों पर निर्भर करती हैं जो कि विभिन्न जातियों के बीच में काफी बदलती रहती हैं। अधिकतर जातियों में अंडे से लार्वा बनने की अवधि सामान्यतः 2–3 दिन है।

लार्वा– मच्छरों के जीवन चक्र में लार्वा की अवस्था काफी लम्बी होती है और पानी में तैरने के समय यह सबसे अधिक दृष्टि गोचर होता हैं। यह जल में मौजूद कार्बनिक पदार्थों का भक्षण

करता हैं। यह प्रक्रिया करीब एक सप्ताह तक चलती हैं। जाति और पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर करते हुए एक मच्छर लार्वा के पूर्ण विकास में 3–4 दिन से लेकर कई सप्ताह तक लग जाते है। परिपक्व चौथे चरण (4th instar) का लार्वा प्यूपा में परिवर्तित हो जाता हैं।

प्यूपा– मच्छरों के प्यूपा पानी की सतह पर रहते हैं और किसी भी तरह के भोजन का भक्षण नहीं करते है। प्यूपा में 2 से 7 दिन के अन्दर एक अंदरूनी परिवर्तन होता है जिसके कारण उनका वयस्क में रूपांतरण हो जाता है। प्यूपा से प्रकट होने के बाद वयस्क उड़ कर कहीं और चले जाते हैं।

वयस्क– यह जमीन पर रहने वाले होते है जो कि उड़ने में सक्षम होते है। केवल मादा मच्छर जिनके पास 'piercing & sucking' प्रकार के मुख उपांग होते हैं, जो मनुष्यों (anthropophilic) या जानवरों (zoophilic) के रक्त को पी पाने में सक्षम होते हैं। अंडे के विकास के लिये मादा मच्छरों की आवश्यकता होती है। नर मच्छर मुख्यतः फूलों के रस से अपना भोजन प्राप्त करते हैं।

मच्छरों की तीन जातियों (Culex quinquefasciatus, Anopheles stephensi और Aedes aegypti) के विभिन्न विकास चरण और लार्वा के आवास स्थान की विभिन्नतायें और विशेषताएं तालिका 4 में दी जा रही हैं।

मच्छरों के नियंत्रण के विभिन्न उपाय

मच्छरों का सबसे उत्तम नियंत्रण एक नियंत्रण श्रृंखला के निर्माण से संभव है जो कि इसके सभी अवस्थाओं को नष्ट करने पर केन्द्रित है। यह नियंत्रण उपाय मच्छरों के प्रजनन स्थान को नष्ट करने के साथ–साथ इनके मनुष्य के साथ संपर्क को भी कम करने को लक्ष्य करता हैं। वर्तमान में मच्छरों से संबंधित रोगों के प्रबंधन और निवारण के लिये तीन सूत्री व्यवस्था का प्रचलन है जो कि निम्नलिखित पर आधारित हैः

1) प्रजनन या अंडे देने के स्थान को सीमित करना।
2) लार्वा की रोकथाम, इसमें मच्छरों के लार्वा को रासायनिक (chemical) या जैविक (biological) पद्धतियों से मारा जाता है ताकि वे प्यूपा में परिवर्तित न हो सकें।
3) वयस्क मच्छर जो कि रोगों के वाहक होते हैं उनसे विकर्षक (repellent) एवं वाष्पीकरण पदार्थों (volatile substance) के द्वारा व्यक्तिगत बचाव।

प्रजनन या अंडे देने के स्थान को सीमित करना ऐसे उपायों से संबंधित है जो कि मच्छरों के प्रजनन स्थान को नष्ट करके उनके प्रजनन प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न कर देते हैं। प्रजनन स्थान को हटाना या नष्ट करना दो तरह के उपायों से संभव है; प्राकृतिक एवं रासायनिक। प्राकृतिक उपाय में मच्छरों के नियंत्रण के लिये उत्तम जलनिकास व्यवस्था और मच्छरों के प्रजनन स्थान को मिट्टी, राख, पत्थर इत्यादि से ढक दिया जाता है जबकि रासायनिक उपायों में रासायनिक कीटनाशकों का प्रयोग करके मच्छरों के लार्वा को मारा और उनके वयस्क को विकर्षित किया जाता है। मच्छरों के नियंत्रण में प्रयोग किए जाने वाले रसायनिक कीटनाशक आदि पदार्थ तालिका 2 में दिए गए हैं।

पौधों के क्रियाशील पदार्थ द्वारा मच्छरों का संभावित नियंत्रण

पौधों के परोपजीवी एवं कीट नियंत्रण के लिए उपयोग के बहुत सारे वर्णन मिलते है। सेदरवूड (Cederwood), गार्लिक (Garlic), लेमनग्रास (Lemongrass), सिनामोन (Cinnamon), जेर्मेनियम (Germanium), युक्लेपटस (Eucalyptus), बासिल (Basil), रोसमेरी (Rosemary), क्लोव (clove), पीपरमेंट (Peepermint), लेमन बाम (Lemon balm or Citronell), ओनियन (Onion), थायम (Thyme) और मेरीगोल्ड (Marigold) आदि पौधों की विभिन्न प्रजातियाँ हैं जो कि मच्छरों के विकर्षण के लिये जानी जाती है। पौधों से प्राप्त होने वाले तेल अधिक सांद्रता पर मच्छरों के लार्वा को मारने के लिये प्रयोग किए जाते हैं, परन्तु वही तेल कम सांद्रता पर लार्वा में तरह–तरह के विकार उत्पन्न कर देता है जो कि लार्वा के प्यूपा में रूपांतरण को प्रभावित करता या रोक देता है। इसलिए इन तेलों को कीट वृद्धि नियंत्रक भी कहा जाता है।

वनस्पति आधारित कीटनाशक जैव प्रक्रिया द्वारा प्रकृति में समा जाते हैं जिसके कारण वे वातावरण को कोई विपरीत प्रभाव नहीं पहुंचाते है। इसके अलावा वनस्पति कीटनाशक किसी कीट विशिष्ट को ही मारते हैं जिसके कारण मनुष्य एवं दूसरे लाभकारी कीटों के लिये यह अपेक्षाकृत सुरक्षित माने जाते हैं। कुछ वनस्पति जैसे कि मेथी (fenugreek) के बीज मच्छरों की एक जाति, Aedes aegypti में अंडे देने की प्रक्रिया में रुकावट पैदा कर देती है। दूसरे वनस्पति जैसे सरसों (mustard) जापानी इन्सेफेलाइटिस (encephalitis) के संक्रमण फैलाने वाले परोपजीवीयों, C. pseudovishnui और C. gelidus का विकर्षण करता है। इसके अतिरिक्त वनस्पति आधारित Aedes albopictus विकर्षक, Zanthoxylum limonella और *Citrus aurantifolia* सरसों के तेल में, नारियल के तेल के अपेक्षाकृत बेहतर प्रभाव दिखाते हैं। एक ओर शीशम (Sesame indicum), नायिजेला (Nigella sativa), ओनियन (Allium sepa) आदि के तेल

C. pipens के लिए बहुत विषैले होते हैं वहीं दूसरी ओर नीम के पौधे से निष्कर्षित azadirachtin भी C. tarsalis और C. quinquefasciatus के लार्वा के वृद्धि को रोक देते हैं। चायनीज जिन्क्गो (Ginkgo biloba L. exocarp) का इथनोल निष्कर्षण (ethanol extract) C. pipens के तीन उपजातियों के नियंत्रण में कारगर है। इनके अलावा Apium graveolens के बीजों का उद्धरन Aedes aegypti के लार्वा, प्यूपा, और वयस्क को मारने की क्षमता रखता है। Alantia monophylla के पत्तियों का मीथनोलिक निष्कर्षण (methanolic extract) मच्छरों की तीन जातियां C. quinquefasciatus, A. stephensi और Aedes aegypti के जीवन चक्र के अपरिपक्व चरण को मार कर नियंत्रित करती हैं। ऊपर वर्णित सभी पौधे कीटों की क्रियाशीलता को नियमित करने की क्षमता रखते हैं। वनस्पति आधारित मच्छरों के कुछ विकर्षक बाजार में भी उपलब्ध हैं, जैसे कि Skin-So-Soft और Herbal Armour।

मच्छरों के लार्वा नियंत्रण के वैकल्पिक उपाय

जैव आधारित कीटनाशकों में Bacillus thuringiensis आधारित उत्पाद और वनस्पति आधारित कीटनाशकों में pyrethrum आधारित उत्पादो का प्रभुत्व हैं। दोनों तरह के उत्पादों की विश्वबाजार मे उपलब्ध कीटनाशको में भागीदारी केवल 1% से कुछ अधिक हैं। पश्चिम बंगाल में हुए एक सर्वेक्षण में यह पाया गया कि व्याध – पतंगा (dragonfly), Brachytron pretense (nymph stage) मच्छरों की एक जाति, Anopheles subpictus के लार्वा को प्रभावशाली ढंग से नियंत्रित करता है। पौधों से प्राप्त तेल कीटों के तंत्रिका तंत्र को प्रभावित करते है जिस कारण इनकी मारक क्षमता कीटों तक ही सीमित होती हैं क्योंकि तंत्रिका तंत्र का ओक्टामिनेर्जिक (octaminergic) स्थल जहाँ इन तेलों का प्रभाव होता है, केवल कीटों में ही मिलते हैं। मच्छरों के लार्वा नियंत्रण में मछलियों का उपयोग 100 से भी अधिक सालों से ज्ञात तथ्य रहा है।

भारत में 1904 में मुंबई में मलेरिया के रोकथाम के लिये इसके वाहक An. stephensi के विरूद्ध लार्वा मारक मछलियों के प्रयोग का वर्णन मिलता है। लार्वा मारक मछलियाँ गुप्पी (Poecilia reticulaf) जो कि साउथ अमेरिका (South America) से थी और गम्बुसिया (Gambusia affinis) जो कि जन्म से टेक्सास (Texas) में थी क्रमशः 1908 और 1928 में मलेरिया के रोकथाम के लिये भारत में लायी गयी। कई और प्रजाति की मछलियाँ जैसे, Danio rerio, Esomus danricus, Badis badis, Chanda nama, Puntius ticto, Rasbora daniconius, Colisa fasciata इत्यादि जो कि भारतीय स्वच्छ पानी में पायी जाती है, विभिन्न परिस्थितियों में मच्छरों के लार्वा नियंत्रण की क्षमता रखती है। उत्तर में गुजरात (कच्छ जिला) में पायी जाने वाली मछली, Aphanius dispar जो कि विभिन्न प्रकार के जल निकायों में पायी जाती है, मलेरिया के रोकथाम के लिये काफी कारगर साबित हुई हैं। यह मछली स्वच्छ पानी के साथ–साथ नुनखरे पानी में भी पाली जा सकती है। इसके अतिरिक्त जम्बुसिया मछली जो कि जल निकायों के किनारे रहती है और भोजन के लिये दूसरी मछलियों के साथ प्रतिस्पर्धा नहीं करती, को भी कार्प (जो कि भोजन में प्रयोग होती है) मछली के साथ पाला जा सकता है। इसका पालन मछुआरों के लिये अतिरिक्त आमदनी का साधन हो सकता है। यह विवरण तालिका 3 में दिया गया है।

मच्छर नियंत्रण उत्पाद– वर्तमान एवं भावी स्थिति

भारत में मच्छरों की भयावह समस्या के बावजूद मच्छरों के विकर्षण के लिये बहुत कम उपाय किए जाते रहे हैं। एक अनुमान के अनुसार भारत के शहरी इलाकों में 16.4 % और मेट्रो शहरों में 22.4 % घरों में मच्छर विकर्षक का प्रयोग किया जाता है। ग्रामीण इलाकों में यह संख्या और भी कम हैं और केवल 6.9 % घरों में मच्छर विकर्षक का प्रयोग किया जाता रहा है। भारतीय बाजारों में लच्छे (coil) के रूप में सबसे पहला मच्छर विकर्षक आया था। मौजूदा समय में गैर कृषि आधारित कीटों और परोपजीवियों के नियंत्रण करने वाले उत्पादों का बाजार 15 बिलियन रुपये का है जिसमे से उड़ने वाले कीटों (मच्छर) का हिस्सा 8.25 बिलियन रुपये हैं।

मच्छर विकर्षक मैट, लच्छे, वाष्पीकरण पदार्थ और द्रव्य के रूप में बाजारों में उपलब्ध हैं। इनके अलावा मच्छरों के नियंत्रण को कारगर बनाने के लिये यंत्र और विद्युत–यंत्र संबंधी दूसरे साधन भी बाजार में उपलब्ध हैं। व्यक्तिगत प्रयोग के लिये क्रीम भी बाजारों में उपलब्ध हैं। मच्छर नियंत्रण के उत्पादों में भारतीय बाजारों पर चार प्रमुख व्यवसायिक संगठनो का प्रभुत्व हैं, रेच्कित्त बेनक्किसेर जिसका मुख्य उत्पाद मोर्टीन है, ज्योति लेबोरेटरीस जिसका मुख्य उत्पाद मेक्सो है, गोदरेज सारा लिमिटेड जिसका मुख्य उत्पाद गुड नाईट है और करमचंद अप्लीएंस प्राईवेट लिमिटेड जिसका मुख्य उत्पाद आलआउट हैं। बालसारा हाईजीन जो कि मच्छर विकर्षक क्रीम ओडोमोस बनाती हैं, बेयर जिसका मुख्य उत्पाद बेगोन स्प्रे, बेगोन पावर मैट और बेगोन नोकआउट और टेनवाला केमिकल जो कि कासपर ब्रांड से मच्छर विकर्षक मैट और लच्छे बनाती है इस क्षेत्र में कुछ दूसरे प्रमुख उत्पादक है। मच्छर उत्पाद के बाजार में मोर्टीन का हिस्सा 29% है जबकि मेक्सो और गुड नाईट क्रमशः 22 और 20% के साथ दूसरे और तीसरे नम्बर पर है।

तालिका 1: मच्छरों द्वारा फैलाये जाने वाले रोग

रोग	संचरण	विस्तार क्षेत्र
लिम्फेटिक फिलेरियासिस *(Lymphatic filariasis)*	Culex और Anopheles प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	अफ्रीका, भारत, दक्षिणी अमेरिका और दक्षिणी एशिया (तापमान और वर्षा का प्रोफाइल रोगों का भूगोलिक विभाजन तय करता हैं)
मलेरिया (Maleria)	Anopheles प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	भूमध्य रेखा एवं उप भूमध्य रेखा से लगे हुए 100 से भी अधिक देशों में
डेंगू (Dengu)	Aedes प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	अफ्रीका, यूरोप, दक्षिणी अमेरिका, दक्षिणी–पूर्वी एशिया, पश्चिम पैसिफिक
जापानी इन्सेफेलाइटिस (Japaneses encephalitis)	Culex और Aedes प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	दक्षिणी–पूर्वी एशिया
सेंट लुईस इन्सेफेलाइटिस (St. Louis encephalitis)	Culex और Aedes प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	उत्तर और दक्षिणी अमेरिका
रिफ्ट वैली फीवर (Rift Valley fever)	Culex और Aedes प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	उप सहारा अफ्रीका
वेस्ट नाइल फीवर (West Nile fever)	Culex प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	अफ्रीका,मध्य एशिया, दक्षिणी–पश्चिम एशिया, यूरोप
रोस रीवर वाइरस (Ross river fever)	Culex और Aedes प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	आस्ट्रेलिया और पैसिफिक टापू
मुर्रे वैली फीवर (Murray Valley fever)	Culex प्रजाति के मादा मच्छरों के काटने से	आस्ट्रेलिया
येल्लो फीवर (Yellow fever)	Aedes और Haemagogus के मादा मच्छरों के काटने से	अफ्रीका, दक्षिणी–मध्य अमेरिका

तालिका 3: मच्छरों के प्रजनन स्थान में प्रयोग के लिये मछलियों की उपयुक्त प्रजाति

जलीय निवास	संचरित करने वाले प्रमुख मच्छर	मछली की प्रजाति	छोड़ी जाने वाले मछलियों की संख्या
पोखर, बारिश के पानी से बने गड्ढे	*An. culicifacies*	गम्बुसिया और गुप्पी	10–20 मछली प्रति वर्ग मीटर
पानी को संचय करने वाली टंकी, सजावट वाली टंकी, फव्वारा, तरणताल, तालाब	*An. stephensi, Aedes sp.*	गम्बुसिया और गुप्पी	5–10 मछली प्रति वर्ग मीटर
कुआं	*An. stephensi*	गम्बुसिया और गुप्पी	50–250 (शीघ्र नियंत्रण के लिये)
धान के खेत	*An. culicifacies*	गम्बुसिया, दानियो, एप्लोचेइलस, ओरीजिअस और अफानिउस	5000 प्रति एकड़
खेत के तालाब और बाँध	*An. culicifacies*	गम्बुसिया, अफानिउस और एप्लोचेइलस	25–50 प्रति वर्ग मीटर
खान के गड्ढे	*An. culicifacies*	गम्बुसिया और गुप्पी	
दलदल	*Cx. quinquefasciatus*	गुप्पी, एप्लोचेइलस और कोलिसा	2500 प्रति एकड़ (तुरंत नियंत्रण के लिये)
नाली	*Cx. quinquefasciatus*	गुप्पी और कोलिसा	–

तालिका 2: मच्छरों के नियंत्रण के लिये प्रयोग में आने वाले रासायनिक पदार्थ व बायो कन्ट्रोल एजेन्ट

लार्वा मारक	फोरमुलेसन	क्रियाशील घटक की मात्रा (ग्राम / घंटे)	प्रभावी रहने तक का समय (सप्ताह में)	क्रियाशील घटक का विष प्रभाव या जोखिम
डीजल तेल (लीटर / हेक्टेयर)	एस.	140-190	1-2	U
लार्वा मारक तेल	एस.	19-47	1-2	U
पेरिस ग्रीन	जी. आर.	840-1000	1-2	बहुत अधिक
ओर्गानोफोस्फोरस कीटनाशक				
क्लोरोपाईरीफोस (chlorpyrifos)	ई. सी., जी. आर., एस., डब्ल्यू. पी.	11-25	3-17	मध्यम या सीमित
फेनीटरोथिओन (Fenitrothion)	ई. सी., जी. आर.	100-1000	1-3	मध्यम या सीमित
फेनथिओन (Fenthion)	ई. सी., जी. आर.	22-112	2-11	बहुत अधिक
जोडफेनफौस (Jodfenphos)	ई. सी., जी. आर., एस.	50-100	7-16	U
मालाथिओन (Malathion)	ई. सी., जी. आर., एस.	224-1000	1-2	बहुत कम
पीरीमायफोस मीथाईल (Pirimiphos methyl)	ई. सी., जी. आर., एस.	50-100	1-11	बहुत कम
टेमीफोस (temephos)	ई. सी., जी. आर., एस.	56-112	2-4	U
कीट वृद्धि नियंत्रक				
डाईफ्लूबेनजुरोन (Diflubenzuron)	जी. आर., डब्ल्यू.पी.	25-100	1-4	U
मीथोप्रीन (Methoprene)	बी. आर., एस., एस. आर. एस.	100-1000	4-8	U
पायरीप्रोक्सीफेन (pyriproxyfen)	जी. आर.	10-100	4-8	U
लार्वा मारक जीवाणु				
Bacillus thuringiensis H-14	बी. आर., ई. सी., जी. आर., डब्ल्यू.पी.	100-6000	1-2	U
बी. स्फेरिक्स B. sphaericus	बी. आर., ई. सी., जी. आर.	500-5000	2-8	U

बी. आर.– ब्रीकुइत (briquettes)
ई. सी.– ईमलसीफाईबल कंसनट्रेट (emulsifiable concentrate)
जी. आर.– ग्रेनुल (granule)
एस.– सस्पेंसन (suspension)
एस. आर. एस.– स्लो रिलीज सस्पेंसन
डब्ल्यू. पी.– वेटेबल पाउडर (wettable powder)
U- सामान्य प्रयोग में किसी भी प्रकार का विष प्रभाव या जोखिम नहीं करती।
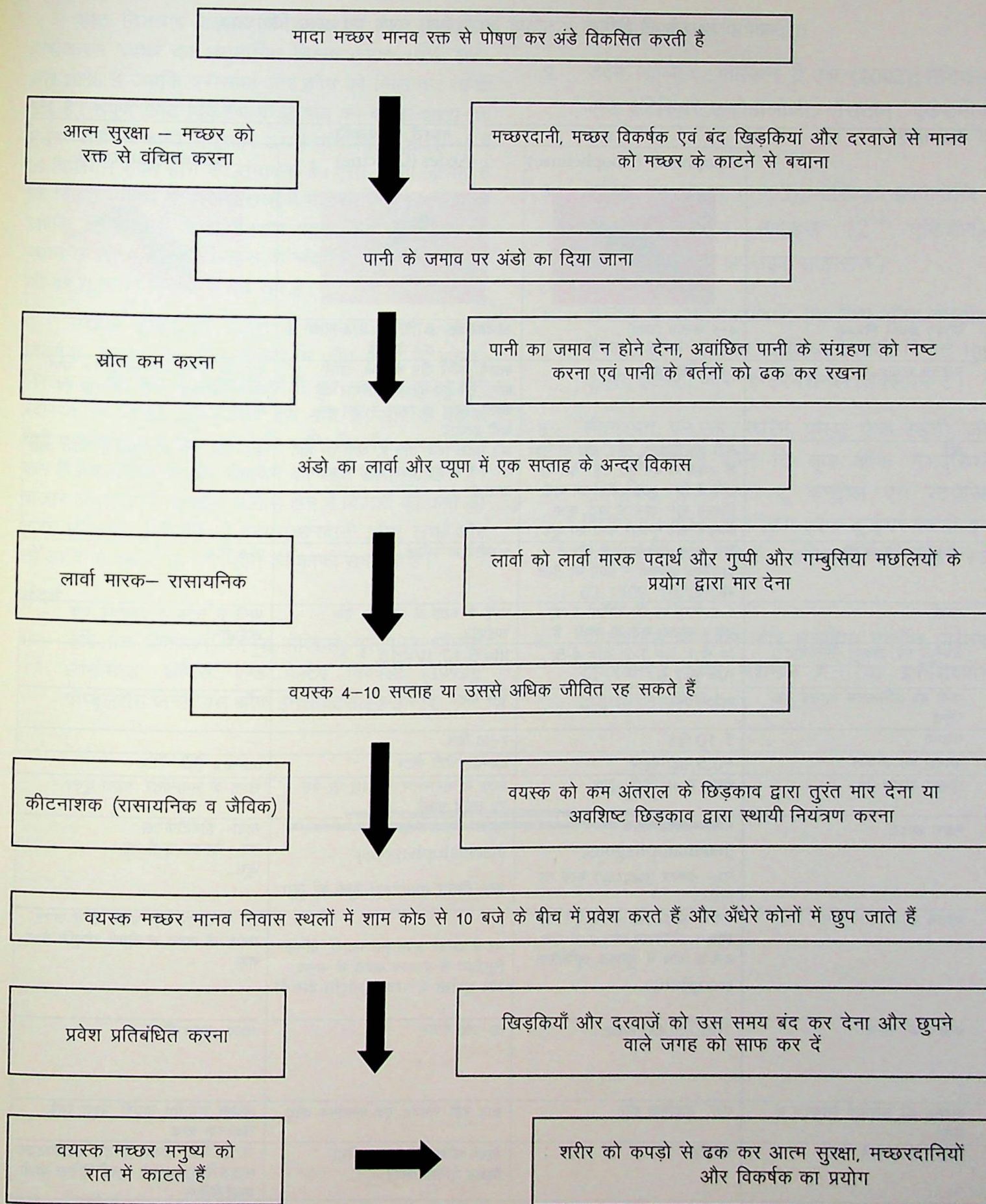
चित्र–2 मच्छर का नियंत्रण चक्र

तालिका 4: मच्छरों की विभिन्न प्रजातियों का विकास चरण एवं अन्य विशेषताएं

विशेषताएँ	मच्छरों की प्रजाति		
	Anopheles (Anophelinae)	Aedes (Culicine)	Culex (Culicine)
जीवन अवधि (मच्छर)	4–5 सप्ताह (मादा)	औसतन 20–30 दिन, मादा 4 जत्थों में अंडे देती है	.
प्रजनन स्थान	7–10 दिन (नर)	बरतन, बेकार टीन के डब्बे, खाली बर्तन, टूटे हुये बोतल, नारियल की खोली, कूलर या टायर में जमे हुये पानी इत्यादि	कूड़े का घरेलू और औद्योगिक स्रोत, खुले नाले, गंदे पानी का गड्ढा एवं मैला
अंडे	नदी का किनारा, नहर, बांध या नहर के रसाव से बने हुये गड्ढे, बिल या मांद में जमा हुआ बारिश का पानी, निचली भूमि, धान के खेत, कुआं, तालाब और नुनखरे पानी का कुंड	अंडे पृथक दिये जाते हैं, पानी पर नहीं तैर पाते हैं और साफ पानी में प्रजनन करते है	अंडे 100–200 के समूह में दिये जाते हैं और पानी पर नहीं तैर पाते हैं
जीवन अवधि (अंडा)	अंडे पृथक दिये जाते हैं और वे प्रारम्भिक अवस्था में पानी पर तैरते रहते हैं	6 महीने या अधिक	2–3 दिन
लार्वा	1–2 दिन, जो कि सर्दियों में बढ़ कर 1 सप्ताह तक हो जाती है	पानी के सतह के उर्ध्वाधर, एक साईफोन	पानी के सतह के उर्ध्वाधर, एक साईफोन
अवस्था एवं आकार (मिलीमीटर)	I= < 1; II= 1-2; III= 4-5; IV= 5-7.5	III= 5-10; IV= 10	–
पानी की अधिकतम गहराई तक पहुँच	~1 मीटर	कुछ मीटर	–
उद्भव	7-10 दिन	7–10 दिन	–
वयस्क का आकार	~0.5 सेंटी मीटर	0.4–0.5 सेंटी मीटर	0.5–0.9 सेंटी मीटर
विश्राम आदत रंग	सतह से 45 डिग्री, धूसर	सतह के समानांतर, काले पर पैरों पर सफेद चकते	सतह के समानांतर, गहरा धूसर
भक्षण आदत	मादा– हीमेंटोफेगस (haematophagous) नर– नेकटर (nectar) फूलों का जूस	मादा– हीमेंटोफेगस (haematophagous) नर– नेकटर (nectar) फूलों का जूस	मादा– हीमेंटोफेगस नर– नेकटर फूलों का जूस
काटने की आदत/समय	घर के अन्दर और बाहर, पूरी रात लेकिन अधिकतम साँय 7 से प्रातः 4 बजे के बीच में, मुख्यतः जूफिलिक (zoophilic)	घर के अन्दर अपेक्षाकृत ज्यादा, दैनिक (सूर्योदय के पश्चातः प्रभात के समय और सूर्यास्त के पश्चातः गोधूलि बेला में)	घर के अन्दर और बाहर दोनों जगह, प्रभात के समय से लेकर गोधूलि बेला तक
उड़ान की सीमा	1000-3000 मीटर	50–200 मीटर	1000–2000 मीटर
वयस्क की सघनता (संचरण के लिए)	एक संक्रामक कीट	ज्ञात नहीं, संभवतः एक संक्रामक काट	अधिक सघनता जरुरी, बहुत सारे संक्रामक काट
फेलाए जाने वाले रोग	मलेरिया	येल्लो फीवर, डेंगू, फाइलेरिया, चिकन गुनिया फीवर	जे. ई., वेस्ट नायल फीवर, बन्क्रोफ्टयन फाइलेरिया, वाइरल, एनटिरिटिस पोली एनटिरिटिस

कीट नियंत्रण उत्पाद के बाजार में मैट, लच्छे और वाष्पीकरण पदार्थ का अनुमानित हिस्सा क्रमशः 10%, 50% और 20% है जबकि एरोसोल और क्रीम को मिला कर सापेक्ष 5% है। संपूर्ण कीट विकर्षण के उत्पाद का बाजार 2009–10 में 27 बिलियन रुपये से लेकर अगले पांच सालों, 2014–15 में 39 बिलियन रुपये होने की संभावना है। ऐसा माना जा रहा है कि निकट भविष्य में ग्रामीण क्षेत्रों में मैट की मांग काफी बढ़ेगी जबकि शहरी क्षेत्रों में वाष्पीकरण पदार्थ, मैट और लच्छे का स्थान ले लेंगे। बाजार विकास के संदर्भ में शहरी क्षेत्र में मांग की दर 70% के हिसाब से बढ़ रही है।

उद्योग जगत की खबरों के अनुसार भारतीय मच्छर विकर्षक बाजार 21 वी शताब्दी में तीव्र गति से बढ़ेगा। विश्लेषको की राय में ग्रामीण क्षेत्रों में हुये साक्षरता सुधार और स्वास्थ्य को लेकर जागरूकता इस मांग को और भी बढ़ावा देगी क्योंकि देश में इस वक्त प्रति व्यक्ति विकर्षक खपत काफी कम है इस क्षेत्र में बाजार के बढ़ने की बहुत सारी गुंजाईश है। बाजार अनुमान के अनुसार ग्रामीण क्षेत्र में बिजली की कमी की वजह से मच्छर विकर्षक से बनी मच्छरदानी, क्रीम, लच्छे और स्प्रे आदि के रूप में उपयोग होने की काफी संभावना है।

संदर्भ

1. चेविलोन, क्रिस्टिन; रेमन्ड, मेक्हिल; गुल्लीमुड, थॉमस; लीनोर्मेन्ड, थॉमस ऐन्ड पेस्टर निकोली (1999); पॉप्यूलेशॅन जेनेटिक्स ऑफ इनसेक्टिसाइड इन दि मॉस्किटो क्यूलेक्स पिपिन्स।
2. डर्बन, लान्सि ए.; मोल्लिन, ग्रे एल. (2002); मेडिकल ऐन्ड वेटिरिनरि एन्टोमॉलोजी; वॉसटोन एकेडमीक प्रेस।
3. सर्विस, एम. डब्ल्यू. (1993); मॉस्किटो इकोलॉजि : फील्ड सैम्पलिंग मैथड्स (2nd एडिशॅन); लन्दन:एल्जेवियर अप्लाइड साइन्सेज।
4. वाल्कर के. (अप्रैल 2002); "ए रिव्यू ऑफ कन्ट्रोल मैथड्स ऑफ अफ्रीका मलेशिया वेक्टर्स; रिपोर्ट 108 यू.एस. एजेन्सी फॉर इन्टरनेशॅनल डिवेलपमेन्ट।
5. सीतारमन, एन.एल., करिम, एम.ए. ऐन्ड रेड्डी, जी. वी., आर्ब्जेवेशॅन ऑन दि यूज ऑफ गैमबुसिया एफ्फिनिस होलब्रोक्की टू कन्ट्रोल एन स्टेपेन्सि ब्रिडिंग इन वॉल्स रिजल्टिंग ऑफ टू ईयर स्टडी इन ग्रेटर हैदराबाद सिटी; इण्डिया जे. मेड रेज 63:1509, 1975।
6. ऑपरेशॅनल मैन्युअॅल फॉर मलेरिया एक्शॅन प्रोग्राम, डायरेक्टरेट ऑफ नेशॅनल मलेरिया इरॉडिक्शॅन प्रोग्राम; दिल्ली 1995।

भारी धातु प्रदूषण: प्रभाव एवं निराकरण

अभिषेक मिश्र, विशाखा, शोध छात्र एवं
डॉ.अनुश्री मलिक
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

आजकल उद्योगीकरण सभ्यता का प्रतीक बन गया है, लेकिन यह भी सत्य है कि उद्योगों से निकलने वाला अपशिष्ट द्रव (industrial effluent) पर्यावरण पर विपरीत प्रभाव डाल रहा है। इस अपशिष्ट द्रव में जहरीले एवं भारी धातुएं प्रचुर मात्रा में उपस्थित होते हैं जो कि नदी नालों के माध्यम से दूसरे शहरों की पेयजल व्यवस्था को भी दूषित करते हैं। विकासशील देशों की नगर निगम व्यवस्था इतनी सक्षम नहीं है कि वे दूषित जल से भारी धातुएं निकाल कर उसे पूर्णतया पेय योग्य बना सके। सामान्यतः मनुष्य अपने दैनिक जीवन में उपयोग करने वाले जल प्रदूषकों के विषय में अनभिज्ञ होता है। ये भारी धातुएँ दूसरे जल प्रदूषकों के साथ मिलकर जटिल यौगिक बना देते हैं, जिनका निष्कासन बहुत कठिन होता है।

सामान्यतः भारी धातुओं से होने वाले प्रदूषण का मुख्य स्रोत कीटनाशक, उर्वरक, पेट्रोलियम रिफाईनिंग, विस्फोटक, खनन, विद्युत आवरण (electroplating) आदि प्रमुख उद्योग हैं, जो पर्यावरण में अनेक विषैले धातु जैसे–कैडमियम, ताँबा, निकल, कोबाल्ट, जस्ता, सीसा, पारा इत्यादि को उत्सर्जित करते हैं। पिछले दस सालों में इन भारी धातुओं की सान्द्रता नदी–नालों में स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हुई है। जहरीली धातुओं से दूषित हुई मृदा में उगने वाले अनाज व सब्जियाँ भी दूषित हो रही हैं, जो कि मनुष्य के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डाल रही हैं। प्रदूषित जल में भारी धातुओं की मात्रा अधिक होने पर इनका विषैलापन स्पष्ट रूप से दिखाई देता है। जिससे मानव शरीर में उपापचय क्रियाएं (metabolic activities) सुचारु रूप से नहीं हो पाती है।

भारी धातुओं की उपस्थिति के कारण प्रोटीन विकृतीकरण, डी.एन.ए. उत्परिवर्तन, तन्त्रिकाएं और कोशिका झिल्ली की एन्जाइम क्रियाविधि प्रभावित होती है। जिससे शारीरिक विकास अवरुद्ध होने लगता है और रोग उत्पन्न करने वाले कारकों से लड़ने की क्षमता कम हो जाती है, फलस्वरूप विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं। विषैली धातुएं मेटाबोलिकली (उपापचयिक) क्रियाशील समूहों से जुड़कर उनकी क्रियाशीलता को प्रभावित करती हैं। कुछ धातुएं कारसीनोजेनिक (कैंसर उत्पन्न करने वाली), कुछ उत्परिवर्तन करने वाली और कुछ भ्रूण के विकास में अवरुद्धता लाने वाली होती है। ये विषैली धातुएं शरीर की प्रतिरोधक क्षमता को घटा देती है जिसके फलस्वरूप रोग उत्पन्न होने लगते हैं तथा इनके निवारण के लिये औषधि का प्रभाव बहुत कम होता है। इसके अतिरिक्त ये पेड़–पौधों (वनस्पतियों) और छोटे जीव जन्तुओं पर भी विपरीत प्रभाव डालती है।

भारी धातुएं मुख्यतः आवर्तसारणी (Periodic Table) के तीसरे, चौथे, पांचवें और छठे समूह से सम्बन्धित होती है। ये भारी धातुएं पर्यावरण के सभी घटकों जैसे जल, भोजन, हवा इत्यादि में व्यापत रह कर जीव के सम्पर्क में लगातार बने रहते हैं। कुछ धातुएं जो वसारागी (lipophilic) होती है वे जीव के शरीर में संचित हो जाती हैं। इस प्रक्रिया को जैव संचयन कहते हैं।

सामान्यतः विषैली धातुएं वे होती हैं जिनका जैविक क्रियाओं में कोई योगदान नहीं होता। ये आवश्यक धातुओं का स्थान ले लेते हैं और जैविक क्रियाओं में रुकावट उत्पन्न करते हैं। विषैली धातुओं की विषाक्तता उसके आक्सीकरण अवस्था पर निर्भर करती है। जैसे क्रोमियम (III) से क्रोमियम (VI) ज्यादा विषैला है। तांबा (II) व निकिल (II) अवस्था भी विषाक्त श्रेणी में आती हैं। पारा की कार्बनिक अवस्था इसकी अन्य अवस्थाओं से बहुत ज्यादा विषैली एवं प्राणघातक होती है। ये भारी धातुएं शरीर के विभिन्न अंगों जैसे, यकृत, गुर्दा, तंत्रिका तंत्र इत्यादि को बुरी तरह प्रभावित करते हैं।

2.0 प्रमुख भारी धातुएं तथा उनका मानव स्वास्थ्य पर प्रभाव

2.1 तांबा **(Cu):** तांबा एक प्राचीन धातु है जिसका परमाणु भार 63.54 है। यह आवर्तसारणी के ग्यारहवें समूह में स्थित होता है। सामान्यतः यह Cu^{+2} अवस्था में पाया जाता है पर कभी–कभी असामान्य स्थिति में Cu^{+3} और Cu^{+4} में भी
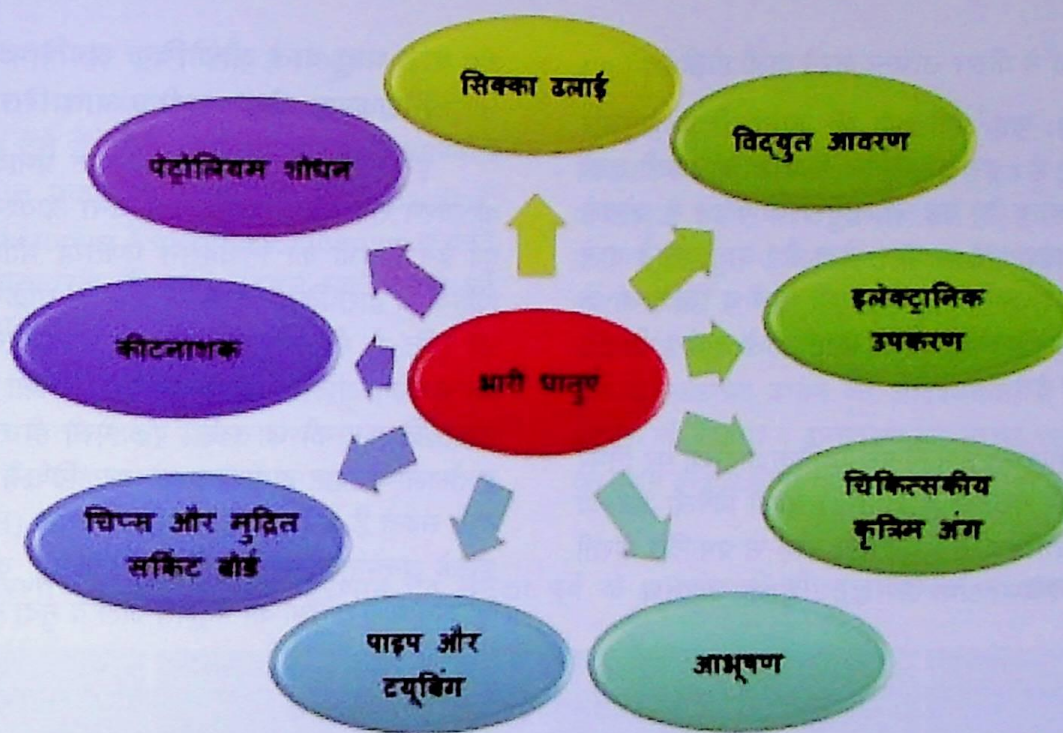
चित्र - 1 भारी धातुओं को प्रयोग करने वाले प्रमुख उद्योग

उपस्थित होता है। यह शारीरिक विकास की दृष्टि से आवश्यक धातु की श्रेणी में आता है। परन्तु इसकी अत्यधिक मात्रा सूक्ष्मजीवों के लिए विषैली तथा मानव और वनस्पतियों के लिए हानिकारक होती है। शरीर में तांबे की अधिक मात्रा विटामिन 'सी' की कमी उत्पन्न कर देता है जिसके कारण मसूढ़ों से खून निकलने लगता है। ये यकृत कैंसर के होने की संभावना को बढ़ाता है तथा जिंक के उपापचय क्रियाओं को भी प्रभावित करता है जिसके फलस्वरूप शरीर की प्रतिरोधक क्षमता में कमी आ जाती है।

2.2 **निकिल (Ni):** निकिल एक धात्विक तत्व है जिसका परमाणु भार 58.69 है। वातावरण में निकिल अन्य तत्वों के साथ मिलकर खनिजों के रूप में पाया जाता है। Ni^{+2} ही सबसे प्रचलित अवस्था है और सामान्यतः यह इसी अवस्था में उपस्थित रहता है। वातावरण में निकिल प्रदूषण का मुख्य स्रोत निकिल उत्पाद करने वाले उद्योग है। वायु में निकिल प्रदूषण का कारण बिजली उत्पादन केन्द्र और भट्टी (Incinerators) है जो वर्षा के माध्यम से जल व मृदा को भी दूषित करते हैं।

मानव निकिल दूषित वायु, जल और खाद्य पदार्थों को ग्रहण कर रहा है जिसके फलस्वरूप उसकी शारीरिक क्षमता घट रही है। निकिल की बहुत कम मात्रा कुछ इन्जाइम गतिविधियों को उत्प्रेरित करने में सहयोग देती है पर इसकी अधिक मात्रा कैंसर उत्पन्न करने वाली होती है। जैसे NiS, NiO, Ni_3S_2 (अघुलनशील) और $NiCl_2$, $NiSO_4$ (घुलनशील) यह विभिन्न प्रकार के रोगों जैसे फेफड़ों का कैंसर, नाक का कैंसर, प्रोस्टेट कैंसर, चक्कर आना, अस्थमा, त्वचा की एलर्जी आदि को उत्पन्न करने वाला होता है।
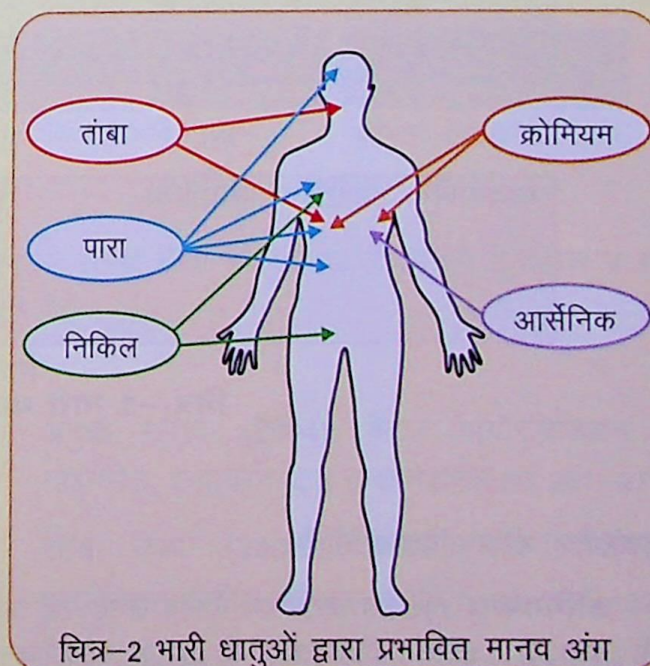
चित्र–2 भारी धातुओं द्वारा प्रभावित मानव अंग

2.3 **आर्सेनिक (As):** यह एक बहुत ही विषैली धातु है। यह सामान्यतः चट्टानों और मृदा में उपस्थित रहती है। इसकी विषाक्तता इसके आक्सीकरण अवस्था पर निर्भर होती है। जैसे As^{+5} से As^{+3}, 200 गुना ज्यादा विषैली होती है। यह जैविक क्रियाओं में फास्फेट की जगह लेकर उन्हें बुरी तरह से प्रभावित

करती है और मानव में कैंसर उत्पन्न करने वाली होती है।

2.4 **पारा (Hg):** यह अभी तक की जानकारी के अनुसार सबसे विषैली धातु है। इसका जैविक क्रियाओं से किसी तरह कोई सम्बन्ध नहीं होता है। यह ज्वालामुखी के फटने से, कोयले के जलने से वातावरण में उत्पन्न होता है। धातु बनाने वाले उद्योग, कोयलों का उपयोग करने वाली मिलें व चिकित्सा के लिए उपयोग में आने वाले उपकरण बनाने वाले उद्योग भी पारा प्रदूषण में योगदान देते हैं।

पारे की विषाक्तता इसकी रासायनिक अवस्था पर निर्भर करती है। मिथाइल मरकरी (CH_3 Hg) सबसे विषैली अवस्था है। यह मानव के तंत्रिका तंत्र को बुरी तरह से प्रभावित करती है। यह मानव के विभिन्न अंगों जैसे हृदय, वृक्क, यकृत व

3.0 भारी धातु वाले औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ / द्रव का निराकरण: जैव तकनीक आधारित संभावनायें

इन सभी धातुओं के हानिकारक प्रभाव के कारण इनका वातावरण से उचित निष्कासन अत्यन्त आवश्यक है। कुछ समय पूर्व इन धातुओं का निष्कासन पूर्णतया भौतिक व रासायनिक विधियों के द्वारा किया जाता था, जो कि प्रक्रिया लागत व प्रदूषण की दृष्टि से भी उपयुक्त नहीं है। फलस्वरूप हमें ऐसा उपाय करना होगा जिससे वातावरण में विषैली भारी धातुओं की उपस्थिति कम की जा सके। एक ऐसी ही तकनीक है जिसका इस्तेमाल कर हम वातावरण को इस विषैली धातु के प्रदूषण से बचा सकते हैं और वह है – जैव उपचार (Bioremediation)। इसके अन्तर्गत सूक्ष्मजीवों जैसे बैक्टीरिया, कवक व शैवाल का उपयोग भारी धातुओं को प्रदूषित जल व मृदा से निष्कासन के
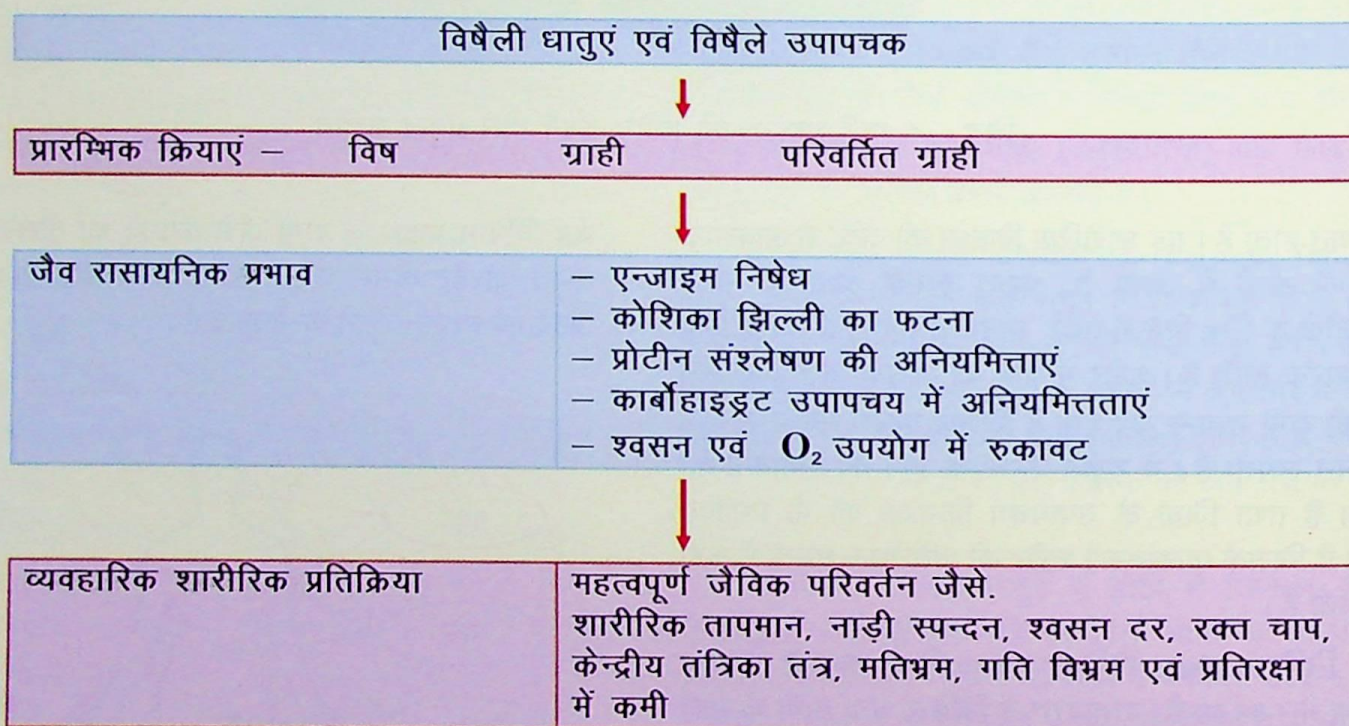
चित्र –3 भारी धातुएं एवं उनका हानिकारक प्रभाव

जननांगों को भी प्रभावित करती है।

2.5 **क्रोमियम (Cr):** यह वातावरण में सब जगह पाई जाने वाली धातु है। इसकी विषाक्तता भी इसके आक्सीकरण अवस्था पर निर्भर करती है। Cr^{+3} से Cr^{+6}, ज्यादा विषैला होता है। क्रोमियम सामान्यतः विद्युत आवरण (Electroplating), कपड़ा मिलों, चमड़ा उद्योग, रंजक (dyes) उद्योगों इत्यादि के द्वारा वातावरण को प्रदूषित करता है। यह शरीर में उत्परिवर्तन व कैंसर उत्पन्न करने वाला होता है।

लिए कर सकते हैं।

यह एक प्राकृतिक क्रिया है और इसमें बहुत कम लागत आती है। इस तकनीक का उपयोग प्रदूषित जगह (साइट) पर ही जाकर कर सकते हैं। यह रासायनिक उपयोग व उत्पन्न होने वाले अपशिष्ट पदार्थ की मात्रा को भी कम करता है।

जैविक तरीकों से हानिकारक धातुओं के निष्कासन के लिए हम विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों का उपयोग कर सकते हैं। ये सामान्यतः इन धातुओं को अपने अन्दर ग्रहण कर लेते हैं

या अपनी बाहरी सतह पर सोख लेते हैं। कुछ धातुओं की आक्सीकरण अवस्था को बदलकर उन्हें कम हानिकारक अवस्था में भी बदल देते हैं, जैसे – क्रोमियम, आदि। आजकल इस दिशा में विभिन्न प्रकार के सूक्ष्मजीवों जैसे– Bacillus, Pseudomonas, Rhizopus, Aspergillus, Fusarium इत्यादि का उपयोग कर वातावरण को धातु प्रदूषण मुक्त बनाने का प्रयास किया जा रहा है।

उदाहरण के रूप में यदि हम जीवित सूक्ष्म जीवों का प्रयोग करते हैं तो यह तकनीकी जैविक संचयन (Bioaccum ulation) कहलाती है। यदि हम सूक्ष्मजीवों का प्रयोग मृत अवस्था में करते हैं तो वह तकनीक अधिशोषण (Bioabsorption) कहलाती है। अधिशोषण प्रक्रिया जैविक संचयन की अपेक्षा बहुत कम समय लेती है। दोनों ही प्रक्रियाएं पर्यावरण अनुकूलित व कम लागत वाली हैं। अभी इस जैव पद्धति के दूरगामी प्रभाव समझने के लिए इस क्षेत्र में और अधिक अनुसंधान की आवश्यकता है।

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली की अनुप्रयुक्त सूक्ष्म जैविकी प्रयोगशाला में *Aspergillus lentulus* कवक का अध्ययन औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ/द्रव से भारी धातुओं के निष्कासन में हो रहा है। ताँबा धातु के निष्कासन में इसके परिणाम बेहद सराहनीय है। इन परिणामों का तुलनात्मक अध्ययन पूर्व के अनुसंधान परिणामों के साथ सारणी–1 में दर्शाया गया है। उपर्युक्त परिणामों के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि *Aspergillus lentulus* का उपयोग ताँबा धातु के निष्कासन में बहुत ही सार्थक एवं कम लागत वाला है।

सारणी –1 प्रयोगात्मक परिणाम एवं उनका पूर्व के अनुसंधानों से तुलनात्मक अध्ययन

क्र.सं.	प्रयुक्त सूक्ष्मजीव	लक्षित धातु	प्रयुक्त सान्द्रता (मि.ग्रा./ली.)	संचित सान्द्रता (मि.ग्रा./ली.)	विशिष्ट निष्कासन (मि.ग्रा./ग्रा.)	सन्दर्भ
1.	*Aspergillus niger*	Cu(II)	75.0	22.8	12.3	डर्सन और अन्य 2003
2.	*Rhizopus arrhizus*	Cu(II)	75.0	14.2	10.76	डर्सन और अन्य 2003
3.	*Aspergillus versicolour*	Cu(II) Ni (II)	80.5 69.3	22.54 19.4	2.08 4.48	टैस्टन और अन्य 2010
4.	*Rhizopus delemar*	Cu(II) Ni (II)	98.3 102.3	69.8 49.8	20.17 20.67	ऐसीकल और अन्य 2009
5.	*Aspergillus lentulus*	Cu(II) Ni (II)	75.0 75.0	58.8 31.6	12.09 6.89	वर्तमान अध्ययन

4.0 निष्कर्ष

उपर्युक्त दोनों ही विधियाँ भारी धातु प्रदूषण का निराकरण करने में सहायक होती हैं। परन्तु अधिशोषण प्रक्रिया अपेक्षाकृत कम समय व लागत लेती है। इस विधि में हम दूसरे उद्योगों से प्राप्त जैविक पदार्थो का भी प्रयोग कर सकते हैं। इससे हमारी लागत और कम हो जाती है। अतः अधिशोषण प्रक्रिया के क्षेत्र में नये शोध करके इस विधि को जनसमुदाय के बीच में लोकप्रिय बनाने की आवश्यकता है। भारी धातुओं के प्रदूषण को रोकना व वातावरण को स्वच्छ रखना वैज्ञानिक वर्ग का प्रथम कर्तव्य होना चाहिए। यदि वातावरण स्वच्छ रहेगा तो जीव भी स्वस्थ होगा और मानव जीवन भी खुशहाल व रोग मुक्त होगा।

संदर्भ

1. अनुश्री मलिक (2004); मैटल बायोरेमिडिशन थ्रू ग्रोइंगसेल; इन्वायरनमेंटल इन्टरनेशनल 30: 261–278।
2. लार्स जेरप (2003); हैजार्ड ऑफ हैवीमेटल कंटैमिनेशन; ब्रिटिश मेडिकल बुलेटिन : 68: 167–182।
3. डॉ. ए.के. चतुर्वेदी (2008); धातु प्रदूषण–पर्यावरण और स्वास्थ्य; जिज्ञासा 22: 118–120।
4. श्वेता शर्मा, अनुश्री मलिक, संतोष सत्या, अभिषेक मिश्र; "डेवेलपमेन्ट ऑफ ए बोयोलोजिकल सिस्टम एमप्लाईग एसपरजीलस लेन्टयूलस फॉर क्रोमियम रिमूवल फ्रॉम ए स्माल–स्केल इलेक्ट्रोप्लेटिंग इंडस्ट्री एफल्यूएन्ट।"

वनस्पति जन्य प्राकृतिक जल शोधक

श्री पी.के. मिश्र एवं श्री हरि शंकर लाल
एफ–2, गणपति अर्पाटमेंट
सरायढेला, धनबाद–828127

पृथ्वी पर जीवन को बचाए रखने में जल की उपयोगिता एवं महत्व निर्विवाद रूप से स्थापित है। जल के दो गुण– एक अच्छा घोलक होना तथा आसानी से एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाने की क्षमता अर्थात् उसका तरल होना जीव–जन्तुओं के लिए अति लाभकारी होता है। जीव–जन्तुओं एवं पौधों में विभिन्न जीवनोंपयोगी यौगिक जल के माध्यम से ही एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचते हैं। शायद इसी कारण से हमारे शरीर मे होने वाले सभी जैव रासायनिक क्रियाएँ जल की उपस्थिति में ही होती हैं । कोशिका में जल का अभाव मृत्यु का पर्याय होता है परन्तु यह विडम्बना ही है कि जल का यह गुण उसे प्रदूषण के प्रति संवेदनशील भी बना देता है। पानी में अधिकांश प्रदूषक घुल भी जाते हैं तथा उनका बहाव भी दूर–दूर तक हो जाता हैं

पानी की उपलब्धता पर यदि गौर किया जाए तो मात्र 2.6 प्रतिशत ही मीठा पानी ब्रह्मांड पर है जिसका उपयोग जीव–जन्तु कर सकते हैं। शेष अनुपयोगी खारा पानी है। कुल उपलब्ध मीठे पानी का भी 99 प्रतिशत ध्रुवीय क्षेत्र में बर्फ के रूप में पाया जाता है। अतः हम शेष 1 प्रतिशत का ही उपयोग कर पाते हैं। सन् 1950 में पूरे विश्व में 1360 घन कि.मी. पानी की मांग थी जो कि सन् 1990 में बढ़कर 4130 घन कि.मी. हो गई। 2000 तक पूरे विश्व में प्रतिवर्ष 5340 घन कि.मी. पानी का उपयोग होने लगा। विभिन्न कारणों से होने वाले जल प्रदूषण से स्थिति और भी विकट होती जा रही है। अक्सर ही यह कहा जाता हैं कि भविष्य में यदि विश्व युद्व हुआ तो वह जल के लिए होगा। इस परिस्थिति में जल का शुद्धीकरण करना तथा उन्हें पुनः उपयोग के लायक बनाना अनिवार्य हो गया है। वर्तमान में उपलब्ध एवं प्रचलित जल शोधन की तकनीक काफी खर्चीली एवं जटिल है। हैनबर्ग (1993) के अनुसार विकसित देश जैसे फ्रांस, इटली तथा जापान की क्रमशः 52 प्रतिशत, 60 प्रतिशत एवं 39 प्रतिशत जनता को जल के शुद्धीकरण की तकनीक उपलब्ध है। विकासशील देशों के लिए यह आँकड़ा 11 प्रतिशत से 23 प्रतिशत तक ही सीमित हैं। यदि ग्रामीण जनता पर ध्यान दिया जाए तो आँकड़ा और भी नीचे चला जाएगा। अतः कम लागत वाली सरल तकनीक का विकसित होना समय की मांग है।

पानी को प्रदूषित करने वाले कारकों की सूची काफी लम्बी है परन्तु उनमें एक अति महत्वपूर्ण कारक जीवाणु है, जिनके कारण विभिन्न प्रकार की बीमारियों का होना एक आम बात है। प्रस्तुत अध्ययन जल से जीवाणुओं की संख्या को कम करना अथवा उन्हें समाप्त करने तक ही केन्द्रित रखा गया है। प्राचीन भारतीय चिकित्सा शास्त्र 'आयुर्वेद' में ऐसे अनेकों पौधों का वर्णन प्राप्त होता है जिनमें जीवाणुरोधक गुण पाए जाते हैं। ऐरिस्टोलेकिया ब्रेडियाटा, मोरिन्जा ओलिफेरा, कैलेन्डुला आफिसिनेलिस, होलेरिना एन्टीडिसेन्ट्रीका, पोन्गाकिया पिन्नाटा इत्यादि इनमें से प्रमुख हैं। जॉन (1986) ने ऐसे कई पौधों का जिक्र किया है जिनका उपयोग अफ्रीका में जलशोधक के रूप में विशेषतः जीवाणुओं को नियंत्रित करने के लिए किया जाता हैं। राजेन्द्रन एवं सुन्दर राजन (1995) ने अपने शोध के आधार पर नीम का उपयोग जल शोधक के रूप में करने का सुझाव दिया हैं। मिश्र एवं अन्य (1996) ने भी पाया कि मोरिन्जा ओलिफेरा का बीज पानी में उपस्थित जीवाणुओं की संख्या को काफी कम कर देता हैं। वारहर्ट एवं मैक को नाची (1996) ने भी पाया की मोरिन्जा ओलिफेरा का बीज पानी में उपस्थित जीवाणुओं की संख्या को काफी कम कर देता है। उन्होंने मोरिन्जा ओलिफेरा से निर्मित सक्रिय कार्बन के द्वारा दूषित जल से जीवाणुओं की संख्या को पर्याप्त घटाने में सफलता प्राप्त की है। इन अध्ययनों के आलोक में प्रस्तुत शोधकार्य कैलेन्डुला, होलेरिना एवं पोन्गामिया के जीवाणुरोधी क्षमता तथा उनके जलशोधक के रूप में सम्भावित उपयोग को परखने के लिए किया गया है।

शोध सामग्री एवं विधि

कैलेन्डुला अफिसिनेलिस, होलेरिना एन्टीडिसेन्ट्रिका एवं पोन्गामिया पिन्नाटा (सिर्फ पत्ते) को एकत्र किया गया, धोया गया एवं छायादार स्थान पर सूखने के लिए रखा गया। सूखने

के पश्चात् तीनों पौधों का चूर्ण बना लिया गया। प्रयोग के लिए ऐसा जल लिया गया जिसमें जीवाणुओं की संख्या काफी अधिक थी। जीवाणुओं की संख्या को ए.पी.एच.ए. (1980) के द्वारा विकसित विधि के माध्यम से जान लिया गया। इसके पश्चात् तीन मिट्टी के बर्तन में 10–10 लीटर दूषित जल भर लिया गया तथा उसमें क्रमशः 1 ग्राम प्रति लीटर, 2 ग्राम प्रति लीटर तथा 3 ग्राम प्रति लीटर की दर से एक पौधे का चूर्ण डाल दिया गया। इस प्रयोग को तीनों पौधों के साथ किया गया। इसके पश्चात् क्रमशः 24 घंटे, 48 घंटे, 72 घंटे तथा 96 घंटे के अन्तराल पर प्रत्येक बर्तन के पानी में जीवाणुओं की संख्या को मापा गया। प्रत्येक पौधे के लिए इस प्रयोग को 10 गुणक में बार– बार दोहराया गया तथा जीवाणुओं की औसत संख्या के आधार पर निष्कर्ष निकाला गया। प्राप्त परिणाम को सांख्यिकी विधि से जांचा गया।

शोध परिणाम एवं विवेचन

प्रस्तुत शोध के आधार पर प्राप्त परिणाम को तालिका संख्या 1–3 में दर्शाया गया है।

तालिका – 1 : केलेन्डुला आफिसिनेलिस के प्रभाव से दूषित जल में जीवाणुओं की संख्या में आई कमी

समय (घंटे)	उपचारित जल में जीवाणुओं की संख्या में कमी (%)		
	1 ग्राम/लीटर	2 ग्राम/लीटर	3 ग्राम/लीटर
24	81.1	83.2	84.9
48	82.8	84.6	87.8
72	84.6	86.8	88.6
96	85.7	87.1	91.0

तालिका –2 : होलेरिना एन्टीडिसेन्ट्रिका के प्रभाव से दूषित जल में जीवाणुओं की संख्या में आई कमी

समय (घंटे)	1 ग्राम/लीटर	2 ग्राम/लीटर	3 ग्राम/लीटर
24	70.2	73.4	78.8
48	72.1	74.8	79.6
72	73.6	75.6	81.0
96	73.9	76.1	82.4

तालिका – 3 : पोन्गामिया पिन्नाटा के प्रभाव से दूषित जल में जीवाणुओं की संख्या में आई कमी

समय (घंटे)	1 ग्राम/लीटर	2 ग्राम/लीटर	3 ग्राम/लीटर
24	14.3	16.6	28.9
48	16.2	17.3	30.4
72	16.8	18.9	34.8
96	17.1	20.0	37.7

कैलेन्डुला आफिसिनेलिस से उपचारित जल में जीवाणुओं की संख्या में 81.1 प्रतिशत से 91 प्रतिशत तक की कमी देखी गई। जीवाणुओं की संख्या में कमी उपचार अवधि तथा पौधे के चूर्ण की मात्रा देने से ही प्रभावित हुई। एक ग्राम प्रति लीटर की मात्रा से 24 घंटे के पश्चात् जीवाणुओं की संख्या 81.1 प्रतिशत की कमी देखी गई जो कि 48 घंटे, 72 घंटे तथा 96 घंटे के उपरान्त क्रमशः 82.8 प्रतिशत, 84.6 प्रतिशत तथा 85.75 प्रतिशत हो गया। 2 ग्राम प्रति लीटर की मात्रा से विभिन्न अन्तराल पर 83.2 प्रतिशत से 87.1 प्रतिशत तक की कमी जीवाणुओं की संख्या में लक्षित हुई है। तीन ग्राम प्रति लीटर की मात्रा पर यह कमी 84.9 प्रतिशत से बढ़ते हुए 91 प्रतिशत तक जा पहुंची।

कैलेन्डुला ऑफिसिनेलिस

होलेरिना एन्टीडिसेन्ट्रीका से उपचारित अशुद्ध जल में जीवाणुओं की संख्या में 70.2 प्रतिशत से 82.4 प्रतिशत तक की कमी आंकी गई। एक ग्राम प्रति लीटर की मात्रा से पानी को उपचारित करने पर 24 घंटे से 96 घंटे के अन्तराल पर 70.2 प्रतिशत से 73.9 प्रतिशत तक की कमी आंकी गई। जीवाणुओं की संख्या में सर्वाधिक कमी तीन ग्राम प्रति लीटर की मात्रा से

होलेरिना एन्टीडिसेन्ट्रिका

जल को उपचारित करने पर पायी गई। 24 घंटे से 96 घंटे के अन्तराल पर यह कमी 78.8 प्रतिशत से 82.4 प्रतिशत तक पहुंच गई।

पोन्गामिया के माध्यम से जलोपचार करने पर जीवाणुओं की संख्या में हुई कमी 14.3 प्रतिशत से 37.7 प्रतिशत तक ही पहुंच पाई। जीवाणुओं की संख्या में हुई कमी का कोई निर्धारित क्रम भी नहीं देखा गया।

पोन्गामिया पिन्नाटा

ऊपर वर्णित परिणाम से यह निश्चित हो जाता है कि कैलेन्डुला आफिसिनलेलिस तथा होलेरिना एन्टीडिसेन्ट्रिक का उपयोग पानी में पाये जाने वाले जीवाणुओं की संख्या को कम करने के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता है। पोन्गामिया अपेक्षाकृत कम प्रभावशाली था।

प्रस्तुत शोध एवं प्राप्त परिणामों से स्पष्ट हो जाता है कि वनस्पति जन्य पदार्थों का उपयोग जल शोधन के लिए सफलतापूर्वक किया जा सकता है। इस तकनीक का महत्व इस बात से और भी बढ़ जाता है, कि इसे सुगमता से ग्रामीण क्षेत्रों में अपनाया जा सकता है। इस विधि पर आनेवाले खर्च भी नगण्य है। अतः इसे कोई भी आसानी से अपना सकता है। इस दिशा में और भी विस्तृत अध्ययन की आवश्यकता है।

संदर्भ

1. ए.पी.एच.ए. : 1985, स्टैन्डर्ड मेथ्ड फॉर एक्जामिनेशन आफ वाटर एण्ड वेस्ट वाटर, अमेरिकन पब्लिक हेल्ट एसोसियेशन, वाशिंगटन डी.सी।

2. हेनबर्ग, पी.,: 1993, वाटर – ए वाइटल बट संकिंग रिसोर्स, इनवीरॉन 15 :2–4।

3. जॉन एस.,: 1986, प्रोपर यूज ऑफ अमेरिकन नेचुरल कोएगुलेन्टस फार रूरल वाटर सप्लाई इस्काबार्न जर्मन एजेन्सी फार टेक्निकल कोआपरेशन।

5. मिश्र, पी.के. एवं पाठक, एस.के : 1995, रिमूवल आफ कालीफार्म बैक्टीरिया बाई मोरिन्जा सीड्स, कन्फ्रेंस आफ वाटर इन्जीनियरिंग एण्ड डेवेलपमेंट सेंटर, ल्यूबर्ग, युनिवर्सिटी, यू.के.।

7. राजेन्द्रन, स0 एवं सुन्दर राजन, के.एस., : 1995, एफेक्ट आफ नीम आन सीवेज माईकोब, इकोलॉजी, एन्वाइरनमेन्ट एण्ड कन्जरवेशन, 1–4 : 133 –134।

8. वारहर्स्ट, ए.एम. एवं मैक कोनाची, जी.एल., : 1996, एप्लीकेशन आफ एक्टीवेटेड कार्बन प्राडूयस्ड फाम मोरिन्जा सीड्स वाटर रिसर्च : 15 : 89–92।

हमारी नैतिक प्रकृति जितनी उन्नत होती है, उतना ही उच्च हमारा प्रत्यक्ष अनुभव होता है, ओर उतनी ही हमारी इच्छा शक्ति अधिक बलवती होती है । मन का विकास करो ओर उसका संयम करो, उसके बाद जहां इच्छा हो, वहां इसका प्रयोग करो–उससे अतिशीघ्र फल प्राप्ति होगी।

–स्वामी विवेकानन्द

बाँस उपचार व संरक्षणः पारम्परिक व आधुनिक टेक्नोलोजी तंत्र

सुश्री परमिन्दर दुआ[1], डॉ. कमल पंत[1],
प्रो. सन्तोष सत्या[2], प्रो. सत्यनारायण नायक[2]
[1]रासायनिक इंजीनियरी विभाग
[2]ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 पृष्ठभूमि

बाँस का मानव समुदाय के साथ प्राचीन समय से अटूट संबंध रहा है। सामाजिक क्रियाकलापों, आयुर्वेदिक औषधि से लेकर आधुनिक समय के फर्नीचर, हस्तशिल्प, मकान और खाद्य पदार्थ के लिए बाँस की उपयोगिता बढ़ती जा रही है। उत्तर पूर्वी भारत में बाँस के अंकुर (bamboo shoots) खाद्य पदार्थ के रूप में प्राचीनकाल से प्रयोग किए जाते रहे हैं। बाँस का कागज उद्योग में उपयोग बहुत पुराना है और वर्तमान में बाँस के धाग (bamboo fibre) से बने कपड़े भी प्रचलित हो रहे हैं।

वैसे तो बाँस अधिक वर्षा वाले क्षेत्रों में बहुतायत से पाया जाता है, परन्तु भारत में यह लगभग सभी जगह उपलब्ध है। इसकी लगभग 75 जातियाँ और 1250 प्रजातियाँ पाई जाती हैं। यह एक तीव्र गति से बढ़ने वाला पौधा/घास है अतः प्राकृतिक संतुलन को पुनः स्थापित करने के लिए बाँस सबसे अच्छे विकल्प के रूप में उभर कर आ रहा है।

2.0 विभिन्न अनुप्रयोगों के लिए बाँस को उपचारित करने की आवश्यकता तथा प्रभावी तरीके

जंगल से बाँस काटने के बाद बाँस culms को ठीक प्रकार से भंडारण करना बहुत जरूरी है। बाँस में लिगनिन (lignin), सेलूलोस (cellulose), के अलावा स्टार्च (starch) की मात्रा भी उपस्थित है। दीमक और फंगस के आक्रमण के कारण बाँस की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है तथा इसकी जीवन अवधि (service life) कम हो जाती है। इसी कारण इसे सिर्फ 'गरीब की लकड़ी' समझा जाता है। बाँस की सुरक्षा कई विधियों से की जा सकती है जिसे स्पष्ट समझने के लिए दो भागों में बाँटा जा सकता है।

चित्र–1 खुले वातावरण में रखे गए बाँस के नमूने में फंगस संक्रमण

2.1 पारम्परिक तरीके

आदिवासी लोग अपने घर बनाने के लिए प्राचीन काल से बाँस की सुरक्षा के लिए कई तरीकों का इस्तेमाल करते आ रहे हैं। उनका विवरण व वैज्ञानिक विवेचन यहाँ प्रस्तुत है।

2.1.1 बहते नदी के पानी में बाँस का बण्डल रखना

इस विधि में बाँस को सुरक्षित रखने के लिए बाँस के बंडल को बहते नदी के पानी में बाँध कर रख दिया जाता है। आई. आई.टी. दिल्ली में प्रयोग द्वारा पाया गया है कि स्टार्च की कुछ मात्रा के पानी में बह जाने से फंगस का प्रकोप कम हो जाता है। इस विषय पर आगे अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

2.1.2 रसोईघर में जनित धुँआ द्वारा–

बहुत से ग्रामीण लोग बाँस को रसोईघर में निकलते धुएं के पास की जगह में रखते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ बिना जले कार्बन कण बाँस की ऊपरी सतह पर जम जाते हैं तथा धुएं में उपस्थित विभिन्न गैस (कार्बन मोनो तथा डाइआक्साईड) बाँस के आन्तरिक खोखले भाग में अवशोषित हो जाती है। इस प्रकार बनी बाहरी परत फंगस के आक्रमण को रोक देती है तथा आन्तरिक संरचना भी बदल जाती है जो दीमक आदि से रक्षा करती है। इस विधि से बाँस कुछ काला पड़ जाता है तथा जहां इसे सजावट के लिए प्रयोग करना हो, वहाँ यह विधि प्रयोग करना उचित नहीं माना जाता।

2.1.3 **पेंटिग तथा अन्य तरीके–**

चूने के पानी से बाँस की बाहरी सतह को पेंट करने से बाँस के आस–पास एक परत बन जाती है जो कि बाँस की फंगस आदि से रक्षा करती है।

2.2 **रासायनिक विधि**

पारम्परिक तरीकों द्वारा बाँस को सामान्य रूप से लगभग 5 सालों तक ही सुरक्षित रखा जा सकता है। आज के समय में बाँस एक औद्योगिक सामग्री के रूप में उभर कर आ रहा है। ऐसे में उसका सही, कामयाब व दीर्घकालीन संरक्षण बहुत जरूरी है। प्रयोगशाला व क्षेत्रीय अनुसंधान द्वारा बाजार में कई तरह के रासायनिक यौगिक उपलब्ध हैं। इससे बाँस की जीवन अवधि (service life) बढ़ जाती है जिससे इसकी विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में उपयोगिता के नए आयाम खुलते जा रहे हैं। Copper-Chrome-Arsenic (CCA) और Copper-Chrome-Boron(CCB) के अलावा कई और खतरनाक यौगिक प्रयोग किए जाते हैं। Chromiun, Arsenic के मानव स्वास्थ्य व पर्यावरण पर खतरनाक असर अब सर्वविदित है। अतः वर्तमान में पौधों में उपस्थित परिरक्षक तत्वों द्वारा बाँस की सुरक्षा पर अनुसंधान कार्य शुरू किया गया है।

2.3 **पर्यावरण अनुकूल बाँस परिरक्षक तथा उनका जैव परीक्षण**

पदार्थ और विधि

2.3.1 **बाँस और फंगस एकत्रित करना–** बाँस की क्षय प्रतिरोधी क्षमता जाँचने के लिए फारेस्ट रिसर्च इंस्टिट्यूट, देहरादून से डेंड्रोकेलेम्स स्ट्रीक्टस (D. strictus) बाँस को खरीदा गया। बाँस की सबसे ज्यादा नुकसान करने वाली फंगस पोलिपोरस वरसीकोलर (polyporus versicolor) को

चित्र–2 फारेस्ट रिसर्च इन्स्टिट्यूट (FRI), देहरादून से प्राप्त बाँस culms

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, दिल्ली से प्राप्त किया गया।

2.3.2 **बाँस प्रतिरूप बनाना**–प्राकृतिक बाँस को ASTM D1413 मानक के अनुसार काटकर 1.9x1.9x1.9 से.मी. नाप के नमूने तैयार किये गये। इन नमूनों को नमी रहित दशा में एक नियंत्रित कक्ष में स्थिर भार आने तक रखा गया।

2.3.3 **परिरक्षक (preservatives) बनाने की विधि**

(i) **नीम तेल आधारित नया परिरक्षक** – लकड़ी के संरक्षण के लिए नीम तेल की दक्षता आँकी गई है लेकिन अभी तक बाँस के लिए कोई अध्ययन नहीं किया गया है। नीम तेल में कॉपर नेफ्थेनेट मिलाने के बाद उसे 5 गुना मिट्टी के तेल में मिलाया गया और अलग–अलग मात्रा में घोल तैयार किए गए।

(ii) सीडार तेल (cedar oil) को विभिन्न मात्रा में मिट्टी के तेल में मिश्रित किया गया।

(iii) बायोडीजल उत्पादन के पश्चात जटरोफा केक बच जाता है। उस केक की प्रतिरोधी क्षमता जाँचने के लिए केक को विभिन्न मात्रा में जल में घोलकर निस्यंदक में छाना गया। साफ प्राप्त घोल का परीक्षण फंगस के खिलाफ किया गया।

(iv) अलग–अलग मात्रा में जटरोफा पौधे की पत्तियों को धूप मे सुखाकर मिट्टी के तेल में भिगो कर 72 घण्टे बाद छान लिया गया और घोल साफ कर जाँच के लिए रखा गया।

(v) इसी तरह लेन्टाना पौधे की पत्तियों का विभिन्न मात्रा में मिट्टी के तेल में घोल तैयार किया गया।

2.3.4 **उपचार विधि–** बाँस नमूनों को दो भागों में बाँटा गया, ताकि दो अलग तरीके से उपचार दक्षता का मूल्यांकन किया जा सके।

(i) पहली विधि में बाँस प्रतिरूपों को परिरक्षक घोल में विभिन्न समय के लिए भिगोकर रखा गया।

(ii) दूसरी विधि में Broucherie उपकरण द्वारा 2 bar दबाव पर परिरक्षक घोल को बाँस के अन्दर प्रवाहित किया गया। बाँस के विभिन्न प्रतिरूपों को सामान्य स्थिति में प्रेक्षण के लिए रखा गया।

2.3.5 **नये परिरक्षक की जैवदक्षता मूल्यांकन**–इसके लिए सॉइल ब्लॉक विश्लेषण विधि (Soil Block Analysis-ASTM D1413) प्रयोग की गई। परिरक्षक की बाँस पर फंगस के संक्रमण के नियंत्रण में उपयोगिता जाँचने के लिए

ASTMD 1413 मानक का प्रयोग किया गया। इसके अनुसार विभिन्न काँच की बोतलों में गीली मिट्टी में फंगस को उगाया गया। परिरक्षक से उपचार किए हुए बाँस को फंगस उगी बोतल में 30°C तापमान तथा 70% नमी में 12 सप्ताह के लिए बी.ओ.डी. इनक्युबेटर (BOD Incubator) में रखा गया। तत्पश्चात्, बाँस प्रतिरूप की सतह को अच्छी प्रकार से साफ करके बी.ओ.डी. इनक्युबेटर (BOD Incubator) में स्थिर भार आने तक रख दिया गया।

3.0 परिणाम और चर्चा– अवशोषित परिरक्षक की मात्रा उसकी संरक्षण क्षमता पर गहरा प्रभाव डालती है। इसलिए प्रथम चरण में परिरक्षक की अवशोषित मात्रा की जाँच की गई। परिणाम तालिका–1 में दिए गए हैं। परिणाम संकेत करते हैं कि जब बाँस को परिरक्षक घोल में ज्यादा समय के लिए डुबोकर रखा गया, तब अवशोषित मात्रा भी ज्यादा पाई गई। सबसे कम अवशोषण (10.2%) जटरोफा पत्तियों के निष्कर्षण (extract) में 24 घण्टे डुबोने के बाद प्राप्त हुआ और जटरोफा केक में सबसे अधिक अवशोषण (56.7%) पाया गया। जटरोफा केक का अधिक अवशोषण उसकी अधिक मात्रा के कारण भी हो सकता है। जटरोफा पत्तियों और लेनटाना पौधे की पत्तियों में अवशोषण लगभग समान है।

चित्र–3 जल, कॉपर नाइट्रेट तथा जोजोबा तेल में उपचारित बाँस के नमूने

तालिका–1 परिरक्षक अवशोषक क्षमता

घोल	डुबोने की अवधि(घण्टा)	अवशोषण प्रतिशत
2% सीडार तेल का मिट्टी के तेल में घोल	24	26.8
	48	28.8
	72	31.1
4% सीडार तेल का मिट्टी के तेल में घोल	24	28.2
	48	32.7
	72	34.6
0.3% कॉपर का 25 % नीम के तेल में मिश्रण (बाकी मिट्टी के तेल में)	24	31.8
	48	34.1
	72	36.9
5% जटरोफा केक का जलीय घोल	24	45.1
	48	51.4
	72	56.7
2% जटरोफा पत्तियों का जलीय घोल	24	10.2
	48	12.5
	72	15.7
2% लेनटाना पत्तियों का जलीय घोल	24	11.8
	48	12.1
	72	15.4

तालिका–1 विभिन्न परिरक्षकों की अवशोषण क्षमता को दर्शाती है। तालिका से पता चलता है कि डुबोने का ज्यादा समय अच्छे अवशोषण के लिए जरूरी है। परिरक्षक का अधिक अवशोषण इसकी सुरक्षा क्षमता को बढाने में सहायक हो सकता है।

साहित्य में वर्णित वैज्ञानिक अध्ययन यह दर्शाते हैं कि यदि परिरक्षक से उपचारित बाँस के भार में 10% से कम की कमी आती है तो परिरक्षक प्रभावशाली है।

बिना किसी उपचार के बाँस प्रतिरूप में 12 सप्ताह बाद 65% भार की कमी नोट की गई। प्रयोगशाला में बने सभी परिरक्षकों से उपचारित बाँस प्रतिरूपों में नियंत्रण (control) से कम भार घटा। सिर्फ नीम के तेल के अकेले उपचार को छोड़ कर सभी विधियों में 10% से कम भार घटा। दबाव के अन्तर्गत उपचारित सभी प्रतिरूप 'A' class परिरक्षक की श्रेणी पाये गए।

साईल ब्लॉक विश्लेषण मानक द्वारा प्राप्त परिणामों के आधार पर सभी परिरक्षकों को 4 श्रेणी में बाँटा गया है।

श्रेणी	भार में कमी
A	0-10%
B	10-20%
C	20-40%
D	40% से अधिक

इस वर्गीकरण के अनुसार सभी परिरक्षकों को तालिका–2 में दर्शाया गया है।

सभी उपचारित विधियों में कॉपरयुक्त (0.3%) नीम तेल तथा मिट्टी तेल मिश्रण (1:3) सबसे श्रेष्ठ पाया गया। इसके उपचारित बाँस प्रतिरूपों में केवल 3.5% भार की कमी पायी गई। यह इसकी फंगस के खिलाफ प्रभावी क्षमता को दर्शाती है। जटरोफा तथा लेनटाना पत्तियाँ भी फंगस के नियंत्रण में प्रभावशाली पाई गई। लेनटाना की प्रतिरोधी क्षमता जटरोफा पत्तियों से अधिक पाई गई। सीडार तेल के अलग–अलग घोल बाँस को अच्छी सुरक्षा देने में कामयाब पाए गए। 2% सीडार का तेल बाँस के लिए अच्छा प्रतिरक्षक माना जा सकता है।

जटरोफा केक में भी अच्छे फंगस प्रतिरोधी गुण देखे गए। दबाव विधि द्वारा 5% जटरोफा केक बाँस को A श्रेणी सुरक्षा देने में सक्षम पाया गया।

4.0 निष्कर्ष

उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि प्रयोगशाला में जाँचे गए सभी परिरक्षक पोलिपोरस वरसीकोलर फंगस को नियंत्रित करने में प्रभावशाली हैं तथा ये बाँस की जीवन अवधि को बढ़ाने में सफल होंगे। दबाव अर्न्तगत उपचार विधि द्वारा परिरक्षक की क्षमता में 3–5 गुना वृद्धि हुई। भार में कमी के अनुसार जटरोफा केक, लेनटाना तथा जटरोफा पत्तियाँ, सीडार का तेल 'A' श्रेणी प्रतिरक्षक माने जा सकते हैं। नीम का तेल लकड़ी के लिए अच्छा संरक्षक है। लेकिन आश्चर्य है कि यह बाँस की सुरक्षा करने में कम सक्षम पाया गया है। हालांकि कॉपर युक्त नीम तेल बाँस को सही सुरक्षा देने में कामयाब रहा है। भविष्य में घर, मकान और अन्य संरचना–सम्बन्धी उपयोगों के लिए कॉपरयुक्त नीम के तेल का संरचनात्मक गुणों पर प्रभाव गहराई से देखने की आवश्यकता है। बाँस संरक्षण द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में बाँस की भरपूर उपज को रोजगार उत्पादन तथा स्वंय रोजगार के रूप में बढ़ावा दिया जा सकता है।

तालिका –2

क्र.सं.	परिरक्षक	उपचार विधि	श्रेणी
1.	कॉपरयुक्त नीम तेल	डुबोना	A
2.	कॉपरयुक्त नीम तेल	दबाव अर्न्तगत (2 bar)	A
3.	सीडार का तेल	डुबोना	A
4.	15% जटरोफा केक (जल में)	डुबोना	B
5.	15% जटरोफा केक (जल में)	दबाव अर्न्तगत (2 bar)	A
6.	2% जटरोफा पत्तियाँ (जल में)	डुबोना	B
7.	2% जटरोफा पत्तियाँ (जल में)	दबाव अर्न्तगत (2 bar)	B
8.	2% लेनटाना पत्तियाँ (जल में)	डुबोना	A
9.	2% लेनटाना पत्तियाँ (जल में)	दबाव अर्न्तगत (2 bar)	A

आभार

लेखकगण विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग (DST), भारत सरकार का WOS-B परियोजना के तहत वित्तीय सहायता के लिए आभारी हैं।

सन्दर्भ

1. भट्टु के.वी, वर्मा; आर.वी.; पदुविल, आर.; पाण्डालाई, आर.सी; सन्तोष कुमार, आर. (2005) , "डिस्ट्रिब्यूशॅन ऑफ स्टार्च इन दि कलम्स ऑफ बैम्बूसा बैम्बूस (L) वास ऐन्ड इट्स इन्फल्यूएन्स ऑन बोर्र डेमेज", दि जर्नल ऑफ दि अमेरिकन बैम्बू सोसाइटी 19 (1) पृ. 1–4।

2 गोक्टस ओ.;मनमाघव, आर.; दुरु, ई.एम. ; ओजेन, ई.; कोलक ए.एम.; येलमज एम., (2007) "इन्ट्रोडक्शॅन ऐन्ड इवैल्यूएशॅन ऑफ दि वुड प्रिजर्वेटिनिस पोटेन्शियल्स दि पोएजेनियान स्ट्रेंनबर्जिया केडीडम एक्सट्रेकशन्स" अफ्रीकन जरनल ऑफ बायोटेक्नोलोजि संस्करण 6 (8) , पृष्ठ 982–986।

3. नकयामा, एफ.एस.; विनर्याड, एस.एच.; चोव, जी.; बजवा,डी.एस.; यगंक्युस्ट जे.ए.; मयुहल, जे. ऐच.; कर्जियासिक, (2001) "ग्युले ऐज ए वुड प्रिजर्वेटिव्स", इण्डस्ट्रियल कोर्प्स ऐन्ड प्रोडक्शन्स, खण्ड 14 (2), पृ. 105–111।

4. त्रिपाठी एसः देव, आईः (2003), "रोल ऑफ वुड प्रिजर्वेशॅन इन कार्बन लॉकिंग", इण्डिया फोरेस्टर, संस्करण, 129, पृ. 707–713।

5. त्रिपाठी, एस.; बग्गा, जे.के.; जैन, वी.के. "प्रिलिमिनरी स्टडीज ऑन ZiBOC-ए पोटेन्शियल इकोफ्रेन्डली वुड प्रिजर्वेटिव," पेपर इनक्ल्यूडिड इन दि 36वां एन्युॲल मीटिंग ऑफ इन्टरनेशनल रिसर्च ग्रुप ऑन वूड प्रोटेक्शन, बैंगलौर, इण्डिया, 24–28 अप्रैल, 2005।

6. यमामोटो के. ; होंग, एल.टी. (1988) "डिके रिसिस्टेन्स ऑफ एक्सट्रेक्टिव्स फ्रॉम चेंगल (नियोबालानोकर्पस हेमी)" जर्नल ऑफ ट्रॉपिकल फोरेस्ट साइंस संस्करण 1(1) पृ. 51-55।

संयम संस्कृति का मूल है। विलासिता, निर्बलता और चाटुकारिता के वातावण में न तो संस्कृति का उदभव होता है और न विकास।

–काका कालेलकर

बाँस आवास निर्माण के लिये एक 'हरित' विकल्प

(झारखण्ड में किए गए एक शोध पर आधारित)

सुश्री स्मिता चुग, शोध छात्रा
संयुक्त सचिव, ग्रामीण विकास मंत्रालय (अध्ययन अवकाश पर)
डॉ. पी. सुधाकर एवं **प्रो. संतोष सत्या**
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली
बैकुण्ठ पाण्डेय एवं **रतन श्रीवास्तव,**
झारखण्ड शिक्षा परियोजना परिषद, राँची

1.0 प्रस्तावना

भारत में आरंभिक बाँस वास्तु शिल्प (architecture) की गुम्बदीय आकृति की बुनियाद मुगल शिल्प कला से हुई, जिसमें विश्वप्रसिद्ध ताजमहल भी शामिल है । सन 1936 में गाँधी जी ने वर्धा में मिट्टी, बाँस तथा टाइल का मूल भवन सामग्री में उपयोग करके "बाप कुटी" बनाई जिससे ग्राम केन्द्रित भारत के लिए भावी वास्तुशिल्प की दिशा निर्धारित की जा सके। हालाँकि गाँधी जी ने यही से अगले दशकों के लिए आजादी के संघर्ष का बिगुल बजाया (वीनू काले, 2002)।

वर्तमान में पुनः वैज्ञानिक वर्ग का ध्यान निर्माण कार्य में बाँस की उपयोगिता पर केन्द्रित हुआ है । बाँस के दीर्घकालीन आर्थिक प्रभाव का सही आकलन करना अभी कठिन है, क्योंकि विशेषकर ग्रामीण क्षेत्रों में आपूर्ति श्रृंखला प्रबंधन (supply chain management) की गतिशीलता की इस संदर्भ में निर्णायक भूमिका है। बाँस एक हरित पदार्थ के रूप में तथा इससे जुड़े शिल्प व्यवस्था की लोकप्रियता, लघु उद्यमियों एवं उद्यम प्रारंभ करने वालों के लिए नए अवसर के द्वार खोल रही है ।

2.0 गृह निर्माण के लिये 'हरित' विकल्प

ग्लोबल वार्मिंग की चिन्ताओं ने शोधकर्त्ताओं को आवास निर्माण हेतु मौजूदा सामग्रियों एवं प्रौद्योगिकियों के विकल्प पर पुनः विचार करने को विवश किया है । वन क्षरण की रोकथाम हेतु लकड़ी के विकल्प की खोज के क्रम में गृह निर्माण के लिए बाँस पर अनुसंधान के लिए प्रेरित किया है। टिम्बर वाले पेड़ों की अपेक्षाकृत अल्पावधि में परिपक्व होने वाली प्रजातियों में बाँस एक कार्बनशोषी (कार्बन जब्ती, carbon sequestration) के रूप में ग्लोबल वार्मिंग के प्रशमन में अहम भूमिका रखता है। अपेक्षाकृत लम्बी अवधि में परिपक्व होने वाले वृक्षों के विपरीत बाँस की कलम (culms) जब मात्र 3–4 वर्ष के होती हैं, उसकी कटाई आवश्यक हो जाती है। नियमित कटाई बाँस के झाड़ को स्वस्थ रखता है। इस प्रकार हम देखते है कि आवासीय प्रयोजनों के लिए बाँस की नियमित उपलब्धता पारिस्थितिकी अनुकूलन की तर्ज पर है। बाँस मात्र सबसे तेजी से बढ़ने वाला, मजबूत काष्ठीय पौधा ही नहीं है, वरन् यह बहुमुखी एवं एक अक्षय संसाधन भी है । विभिन्न प्रकार की जलवायु में इसकी अनुकूलनशीलता इसे उन विशिष्ट प्रजातियों में स्थान प्रदान करती है, जो जलवायु परिवर्तन के प्रशमन (mitigation) के लिए महत्वपूर्ण है ।

एक अध्ययन के अनुसार, फाइलोस्टेचिस बैम्बुसोइड्स (Phylosachys bambusoides) क्वोटो, जापान की बाँस की एक प्रजाति करीब–करीब दो टन प्रति हेक्टेयर तक कार्बन शोषी की क्षमता रखती है। कृषि वानिकी (Agro- forestry), कार्बन उत्सर्जन एवं ग्लोबल वार्मिंग के परिप्रेक्ष्य में सबसे प्रचलित एवं कम लागत वाली विधि है। बांस जैसी कम उत्पादन पूर्व अवधि (gestation period) वाली प्रजातियाँ प्रशमन प्रभावी योजना में कार्बन शोषी के लिए प्रयोग की जा सकती है। परंपरागत ढंग से गृह निर्माण में बांस का प्रयोग भार वितरक (load distributor) के रूप में होता आया है। गृह निर्माण में छत संरचना के भार वाहक (load bearing) तत्व के रूप में बाँस का उपयोग न सिर्फ ग्रामीण आवास निर्माण की लागत को कम करेगा, बल्कि यह पर्यावरण के संदर्भ में स्वर्णिम पदार्थ है। अतः इस विषय पर गहन शोध की आवश्यकता है ।

3.0 बाँस की बढ़ती मांग

नाबार्ड के नीति दस्तावेज (2003) जिसका शीर्षक 'भारत में बाँस' के अनुसार, कागज एवं लुगदी उद्योग द्वारा देश में पैदा हुए बाँस का 35 प्रतिशत खपत किया जाता है, जबकि गृह निर्माण में यह खपत 20 प्रतिशत है। बाँस प्रौद्योगिकी एवं व्यापार विकास पर राष्ट्रीय मिशन (National Mission on Bamboo Technology and Trade Development) द्वारा किए गए एक मूल्यांकन के अनुसार, विभिन्न उपयोग हेतु भारत में बाँस की मांग 27 मिलियन टन है, जबकि इसकी उपलब्धता मात्र 13.47 मिलियन टन है। एक अनुमान लगाया गया है कि बाँस की अर्थव्यवस्था 2043 करोड़ रुपए की है, जबकि इसकी बाजार क्षमता 4463 करोड़ रुपए तक की है। अनुमानित 15–20 प्रतिशत वार्षिक औसत वृद्धि दर के आधार पर 2015 तक इसके

26000 करोड़ रूपये तक पहुँचने का अनुमान है । उद्यमियों को चाहिए कि इस प्रकृति प्रदत्त आशीर्वाद का भरपूर फायदा उठाते हुए इससे आवास की बढ़ती आवश्यकताओं को पूरा करने पर ध्यान केन्द्रित करें एवं पृथ्वी पर बढ़ते अतिरिक्त पर्यावरण दबाव को कम करें ।

4.0 उद्यमशीलता के अवसर

बाँस शिल्प भवन निर्माण का एक आकर्षक व्यापार क्षेत्र है, क्योंकि आज ग्राहक पर्यावरण अनुकूल (Eco-friendly) उत्पादों में रुचि दिखा रहे है, साथ ही सरकार इसे काष्ठीय लकड़ी (timber) के एक ऐसे विकल्प के रूप में भी देख रही है, जिसके प्रयोग से वनों को बचाया जा सके । कृषि एवं सहकारिता विभाग ने राष्ट्रीय बाँस मिशन की शुरुआत की है, जिससे शत– प्रतिशत केन्द्रीय सहायता के तहत वित्तीय परिव्यय के रूप में पाँच साल की अवधि के लिए 568.23 करोड़ रूपए की मंजूरी दी है, जो 2006–07 से शुरू हुई है । बाँस के

तेजी से हो रहे निर्माण कार्यों में यह जरूरी है कि उद्यमी स्थानीय उपलब्ध संसाधनों को भवन निर्माण गतिविधियों में उपयोग करें । इसके लिए अनुसंधान करने की आवश्यकता है कि क्या भवन निर्माण में बाँस मुख्य भार वाहक तत्व बन सकता है ?

राँची जिले में ईंट की भारी कमी है । यह इसी से अंदाज लगाया जा सकता है कि सर्व शिक्षा अभियान के तहत ईंटों की कमी से भवन निर्माण कार्य मुश्किल होता जा रहा है । झारखण्ड शिक्षा परियोजना परिषद के एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष 27978200 ईंट की आवश्यकता होती है जबकि जिले में 27600000 ईटें उपलब्ध हो पाती है । इस प्रकार हम देखते है कि अकेले सर्व शिक्षा अभियान की मांग की अपेक्षा ईंटो की अनुपलब्धता 378200 है । एक ईंट के निर्माण में लगभग 0.002 क्यूबिक मीटर मिट्टी की खपत होती है । इस प्रकार अकेले सर्व शिक्षा अभियान के अंतर्गत भवन निर्माण में ईंटो की
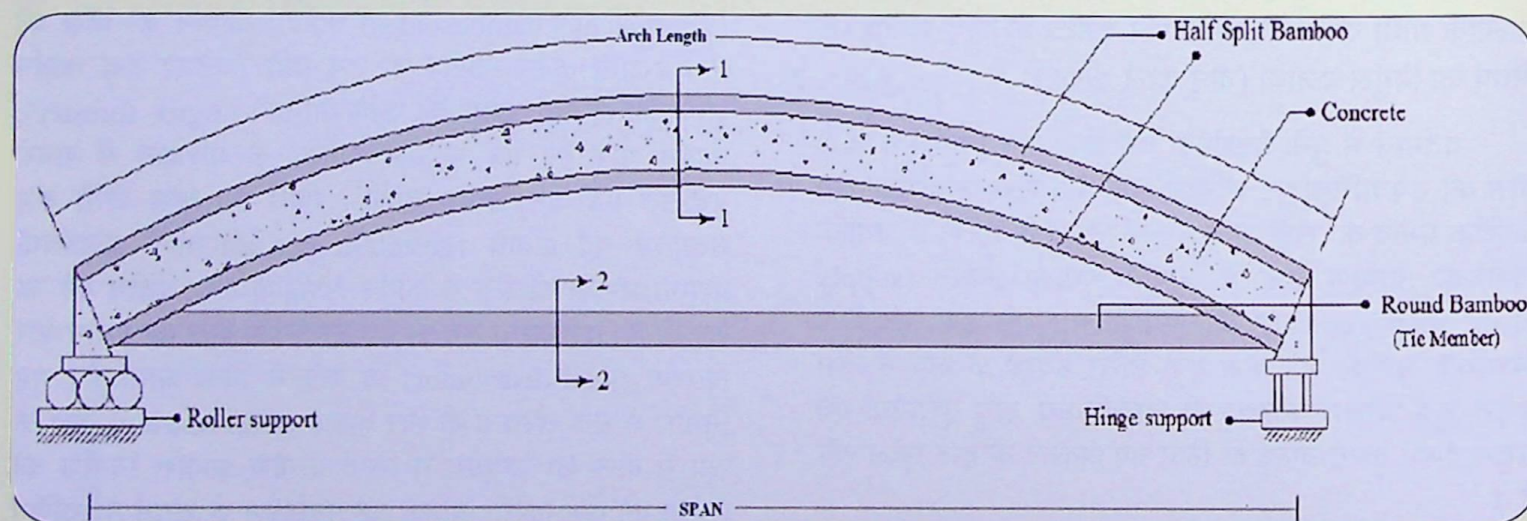
अनुप्रयोग पर राष्ट्रीय मिशन (National Mission on Bamboo Application) 2004 में स्थापित हुई थी जिसका बजट परिव्यय 100 करोड़ रुपए था। इसका उद्देश्य बाँस पर आधारित उत्पादों को अधिक से अधिक बढ़ावा देना है।

5.0 प्राथमिक वैज्ञानिक अध्ययन

5.1 क्षेत्रीय स्थिति

झारखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा करने पर पता चला कि यहाँ बाँस का इस्तेमाल मुख्य रूप में भार वितरक के रूप में छत में किया जाता है, जिसमें काष्ठीय लकड़ी (timber) मुख्य भार वाहक तत्व के रूप में इस्तेमाल होता है । काष्ठीय पेड़ों के तैयार होने में लगने वाला लंबा समय एवं वन संरक्षण के संदर्भ में लकड़ी की उपलब्धता एक बड़ी बाधा है । सर्वशिक्षा अभियान, इंदिरा आवास योजना आदि के तहत ग्रामीण क्षेत्रों में

आवश्यकताओं की पूर्ति करने हेतु प्रति वर्ष 55956 क्यूबिक मीटर उपजाऊ मिट्टी की खपत होगी । जैसा कि रंगावाला (2004)ने चेताया है–हमारे देश में लगभग प्रतिवर्ष 60 बिलियन ईंटों की आवश्यकता है, जिसके उत्पादन में लगभग $1600X10^{6}$ kN (भार) के मिट्टी स्रोत या दूसरे कृषि उपयोगी भूमि की जरूरत होगी। इस प्रकार लगभग 3000 हैक्टेयर उपजाउ भूमि बंजर हो जाएगी। अतः ईंटों के घर निर्माण का प्रभाव भूमिक्षरण तथा कृषि उत्पादन के संदर्भ में भी देखना अनिवार्य है।

5.2 बाँस की आवास निर्माण में भार वाहक क्षमताः तकनीकी व्यवहार्यता (feasibility)

आंध्र प्रदेश के हरिता इकोलोजिकल संस्थान (NGO) में एक मंजिल संरचना (structure) में parabolic bamboo arches का भार वाहक के रूप में सफल प्रयोग किया गया।

लेकिन बड़े व्यास के खोखले बाँस के प्रयोग में दो भागो में बंटी बाँस की आर्च (arch) को vertical plane में पृथक करके उपयुक्त पदार्थ को भरकर प्रयोग करने का सुझाव दिया गया है। इस संदर्भ में सीमेंट infill Twin bamboo parabolic arch बना कर इसकी भार वाहक धारिता की वैज्ञानिक जाँच की गयी। इस प्रयोग में 2.8 मी. span की गोल बाँस आर्च तथा 5.7 मीटर, 2.84 मी. 2.79 मी. span की दुफाड़ा बाँस की आर्च का परीक्षण किया गया। परीक्षण के आँकड़े यह बताते हैं कि गोल कंक्रीट से भरी आर्च (2.8 मी. span) 25 kN तक का भार वहन कर सकती है जबकि कंक्रीट भरी दुफाड़ बांस आर्च की भार वाहक क्षमता 5.7 मी. span के साथ 17.8 kN, 2.84 मी. व 2.79 मी. span के साथ केवल 10 kN पाई गई। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि एक छोटे कमरे (3 मी. span) में पहली मंजिल का भार वहन करने के लिये छत की कुल भार वाहक क्षमता 3.5 kN/m^2 की जरूरत है। इस प्रकार उपर्युक्त जाँची गयी दुफाड़ा कंक्रीट भरी चार arches 10.5 kN भार को 3.5 वर्गमीटर क्षेत्रफल के लिये पर्याप्त मजबूती दे सकती है।

उपर्युक्त प्रयोगात्मक परिणाम (arches की भारवाहक क्षमता) यह विश्वास दिलाते है कि घर निर्माण में ये arches मुख्य भार वाहक के रूप में सफलतापूर्वक प्रयोग की जा सकती है।

6.0 उपसंहार

निष्कर्ष के रूप में यह स्पष्ट है कि दुफाड़ कंक्रीट भरी हुई आर्च (split infill arches) को बनाने की विधि अत्यन्त सरल है। गाँव के कारीगर ट्रेनिंग प्रोग्राम के माध्यम से इसे आसानी से सीख सकते हैं। बाँस के चटाईनुमा बोर्ड के उत्पादन की तरह इसके लिये किसी बड़े उद्योग व मशीन की जरूरत नहीं है। arches के उत्पादन के लिए बाँस को कम से कम प्रसंस्करण किया जाता है। अतः ऊर्जा की खपत अत्यन्त कम है। RCC छत की तुलना में सीमेंट–कंक्रीट की मात्रा भी बहुत कम लगती है। साथ ही इस अभिनव टेक्नोलोजी के द्वारा ग्रामीण क्षेत्र में दो मंजिले घर बाँस से बनाये जा सकते हैं।

जब बाँस का इस्तेमाल घरों में किया जाता है तब संरचना की अवधि तक कार्बन बाँस में समाहित रहता है। बांस प्रसंस्करण अपेक्षाकृत सरल है और इसमें कम ऊर्जा की खपत होती है। अतः प्रसंस्करित बाँस का इस्तेमाल गृह निर्माण का एक 'हरित' विकल्प एवं हरित उद्यमियों के लिये एक फलता–फूलता अवसर है।

सन्दर्भ

1. हाइडालगो–लोपईज, ओ, 2003; बैम्बू: दि गिफ्ट ऑफ दि गोड्स; सेल्फ पब्लिशिज्ड (bamboscar2@007mundo.com) कोलम्बिया।

2. काले, वी. 2000, बेणु भारती;ए कॉमप्रिहैन्सिव वोल्यूम ऑन बैम्बू अपरुप निर्मन, नागपुर।

3. रविन्द्रनाथ एन.एच. ऐन्ड सोमशेखर बी.एस. (1995); पोटेन्शियल ऐन्ड इकोनोमिक्स ऑफ फोरेस्ट्री–ऑप्शॅन्स फॉर कार्बन सीक्वैशट्रेशॅन इन इण्डिया, बायोमास ऐन्ड बायोएनर्जी 8(5)323–336।

4. रंगावाला के.एस. ऐन्ड रंगावाला, पी.एस. 2004;. इंजीनियरिंग मॅटिरियल्स (मॅटिरियल साइंस); चरोतार पब्लीशिंग हाउस, आनन्द, भारत।

5. SARMET (सोसाइटी फॉर एडवांस्मेन्ट ऑफ रिव्यूएॅबॅल मैटिरियल्स ऐन्ड एनर्जी टेक्नोलॉजीज), 1999; टेक्नीकल रिपोर्ट ऑन "बिल्डिंग्स विद बैम्बू आर्च प्रूफ इन हरिता इकोलॉजिकॅल इन्स्टिट्यूट, ए रिव्यू रिपोर्ट ऐन्ड रिकॉम्मेन्डेशॅन्स फॉर डिजाइन अपग्रेडेशॅन" इन्टरनेशॅनल नेटवर्क फॉर बैम्बू एवं रतन, बीजिंग, चीन।

6. सुधाकर पी., गुप्ता एस., भल्ला एस., कोर्डो सी., सत्या एस., (2007); कॉन्सेपच्युअॅल डिवेलपमेन्ट ऑफ बैम्बू कंक्रीट कम्पोजिट स्ट्रक्चर्स इन ए टिपिकल ट्राइबल बेल्ट, इण्डिया; दि फर्स्ट इन्टरनेशॅनल कांफ्रेन्स ऑन माडर्न बैम्बू स्ट्रक्चर्स (ICBS-2007), 28–30 अक्टूबर।

7. चुघ स्मिता, कान्ड्या ए., सिंह एस., कोर्डे सी., सुधाकर पी., ऐन्ड सत्या एस, 2009; बैम्बू ऐज ए ग्रीन इंजीनियरिंग मॅटिरियल फॉर रूरल हाउसिंग – ए न्यू प्रोस्पैक्टिव; इन द प्रॉसिडिंग्स ऑफ भारतीय विज्ञान सम्मेलन (BVS 2009). दिसम्बर, 1–3, इन्दौर, इण्डिया :ENV-33 (प्रकाशनाधीन)

वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए देशी केचुओं की दक्षता की खोज
(एक क्षेत्रीय अध्ययन)

पायल गर्ग, शोध छात्रा
प्रो. संतोष सत्या एवं **डॉ. सत्यवती शर्मा**
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 पृष्ठभूमि

विकासशील देशों में बदलती जीवन शैली व खेती का स्वरुप तथा उद्योगीकरण के साथ–साथ कार्बनिक अपशिष्ट पदार्थो की मात्रा भी विस्तृत रूप से बढ़ती जा रही है। इसलिए इन अपशिष्टों का प्रबन्धन तथा पुनर्चक्रण स्वस्थ पर्यावरण की दृष्टि से आवश्यक हो गया है। इस संदर्भ में, वर्मीकम्पोस्टिंग (Vermicomposting) के द्वारा इन कार्बनिक अपशिष्टों का कुशल प्रबंध एक महत्वपूर्ण कदम है। केंचुए तथा सूक्ष्मजीवों की नैसर्गिक प्रक्रिया द्वारा कार्बनिक पदार्थो के अपघटन से तैयार होने वाली खाद को वर्मीकम्पोस्ट कहते हैं। आजकल केंचुओं को विभिन्न प्रकार के कार्बनिक अपशिष्टों जैसे सीवेज, जानवरों का मलमूत्र, कृषि अवशेष एवं औद्योगिक अपशिष्ट पदार्थ आदि को वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के लिए इस्तेमाल किया जा रहा है।

वर्मीकम्पोस्टिंग प्रक्रिया के दौरान केंचुए कार्बनिक अपशिष्टों को तोड़कर उसमें सूक्ष्मजीवी गतिविधियों तथा मिनिरेलाइजेशन को बढ़ा देते हैं जो एक उत्तम किस्म की खाद में परिवर्तित हो जाता है। इस खाद (वर्मीकम्पोस्ट) को मृदा में मिलाने पर मृदा में वायु के आवागमन में वृद्धि तथा जल धारण क्षमता में बढोत्तरी होती है। खाद में नमी के कारण सूक्ष्मजीवों की गतिविधियाँ बढ़ने के साथ–साथ पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फास्फोरस तथा पोटाश) में भी वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त इसमें बायोमास वृद्धि हार्मोन्स तथा एन्जाइम होते हैं जो कि मृदा की उपजाऊ क्षमता को प्रतिकूल परिस्थितियों में भी बढाते हैं।

कुछ आम केंचुआ प्रजाति जैसे आइसिनिया फेटिड़ा (Eisenia fetida) यूड्रिलस यूजानिए (Eudrilus eugeniae), लुम्बरीकस रुबेल्स (Lumbricus rubellus) आदि वर्मीकम्पोस्टिंग में बहुतायत से इस्तेमाल की जाती है। साहित्य सर्वेक्षण से यह प्रकाश में आया है कि प्रयोगशाला स्तर पर तथा क्षेत्रीय कार्य के लिए आइसिनिया फेटिडा नामक विदेशी प्रजाति को बहुत अधिक इस्तेमाल किया जाता है। हाल में ही वैज्ञानिकों ने शोध के द्वारा यह निष्कर्ष निकाला कि हालांकि विदेशी केंचुऐं कार्बनिक अपशिष्टों को तेजी से खाद में परिवर्तित करते हैं परन्तु इन प्रजातियों का बहुत अधिक अनुपात में प्रयोग करने से दीर्घकालिक विपरीत पारिस्थितिकीय परिणाम हो सकते हैं, जिसके फलस्वरूप मृदा में स्थानीय जैवविविधता (Local biodiversity) का अनुपात कम हो सकता है। इसलिए वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए देशी केंचुओं के इस्तेमाल का गहन व विस्तृत अध्ययन आवश्यक है।

2.0 देशी केंचुआ–संक्षिप्त साहित्य सर्वेक्षण

देशी केंचुओं का वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए इस्तेमाल करने की आवश्यकता कुछ वैज्ञानिकों द्वारा बहुत पहले से महसूस की जा चुकी है। इस्माइल (1994) ने बताया कि चूंकि भारत की मृदा केंचुओं से सम्पन्न है तथा कुल प्रजातियों के लगभग 8 प्रतिशत के करीब भारतीय मृदा में पाई जाती हैं। सन्तोष सत्या व सह लेखक (1993) ने भी विदेशी केचुओं से होने वाली भावी दुष्परिणाम की ओर इशारा किया। जुल्का (1986) ने बताया कि दुनिया में लगभग 3000 केंचुआ प्रजातियाँ है जिसमें से 384 प्रजाति भारत में पाई जाती हैं इसलिए भारत में इन प्रजातियों को वर्मीकम्पोस्टिंग में इस्तेमाल करने की प्रबल संभावना है। कुछ भारतीय केंचुआ प्रजाति जैसे– लैम्पीटो मारुति (Lampito mauritii), पैरियोनिक्स एस्कावेटस (Perionyx excavatus), पैरियोनिक्स सेन्सबेरिक्स (Perionyx sansbaricus), डिचोगेस्टर बोलाई (Dichogastcr bolaui), एमीऐन्थस मोरेसाई (Amyanthus morasi) अपशिष्ट पदार्थों को वर्मीकम्पोस्ट में परिवर्तित करने के लिए दक्ष पाई गई है।

हबीबुल्ला तथा इस्माइल (1985) ने अपने शोध के आधार पर बताया कि लेम्पीटो मारुति compact मृदा के विखण्डन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। शान्ति व सहलेखक (1993) ने तीन प्रकार की केंचुआ प्रजाति (pheritimasp, Eisenia sp. and. P. excavtus) को वानस्पतिक अवशेषों की वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए उपयोग किया तथा यह निष्कर्ष निकाला कि पैरियोनिक्स एस्कोवेटस (देशी प्रजाति) वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए एक बेहतर प्रजाति है। मृदा–सर्वेक्षण के

द्वारा वाराणसी में पहली बार 11 देशी केंचुआ प्रजातियो की उपस्थिति दर्ज की गई। इनमे से डी. बोलाई (D. Bolavi), लेम्पीटो मारुति (Lampito mauritii) तथा ई. इनकोमोडस को मृदा उर्वरकता के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है (जनार्दन सिंह, 1997)। गर्ग तथा भारद्वाज (2001) ने पहली बार जयपुर क्षेत्र में पाई जाने वाली देशी केंचुआ प्रजाति ऐमिन्थस ऐल्सन्ड्रा (Amyanthus alexandri) की मदद से पार्थिनियम (Parthenium) तथा लेन्टाना (Lantana) नामक खरपतवार की वर्मीकम्पोस्ट बनाई तथा निष्कर्ष निकाला कि बनी हुई वर्मीकम्पोस्ट उर्वरकता से भरपूर थी। अभी हाल में (2010) कविराज व सहलेखक ने लैम्पीटो मारुति द्वारा नगरीय ठोस कचरे की उपयोगिता का मशरूम उत्पादन में भी अध्ययन किया है।

हालांकि उपर्युक्त विवरण से यह पता चलता है कि देशी केंचुओं का उपयोग वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए किया जा रहा है परन्तु कुछ ऐसी नई प्रजातियां हैं जिनकी पहचान तथा वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए इनकी विशेषता व दक्षता पर पूर्ण अनुसंधान अभी भी अत्यन्त कम है। अतः यह परम आवश्यक है कि देशी केंचुओं को इकट्ठा करके उनकी प्रजाति की पहचान की जाए तथा उन प्रजातियों को वर्मीकम्पोस्टिंग के दक्ष तरीके विकसित करने के लिए उपयोग किया जा सके।

3.0 क्षेत्रीय अनुसंधान कार्य

इस कार्य का मुख्य उद्देश्य स्थानीय केंचुओं को इकट्ठा करना, उनकी प्रजाति पहचानना तथा उनकी विस्तृत सूची तैयार करके वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए उपयुक्त प्रजाति का चयन करना था। अतः इस कार्य के लिए बिजनौर जिले के कुछ गाँवों को कार्यक्षेत्र के रूप में चुना गया। उसके पश्चात स्थानीय एन.जी.ओ. (जीवन विद्या प्रतिष्ठान) तथा भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली के माइक्रोमॉडल काम्पलेक्स में वर्मीकम्पोस्टिंग प्रयोग किए गए।

3.1 केंचुआ संग्रह, प्रजाति पहचान तथा विस्तृत सूची

कुल 8 केंचुआ प्रजातियो को बिजनौर जिले के चयनित गाँवों के कृषि क्षेत्र से इकट्ठा किया गया। केंचुओं को बरसाती मौसम में मृदा से 10–30 सेंमी. गहराई से एकत्रित किया गया। उसके पश्चात इकट्ठे किए गए केचुओं को डॉ. जुल्का (Zoological survey of India) की मदद से पहचाना गया।
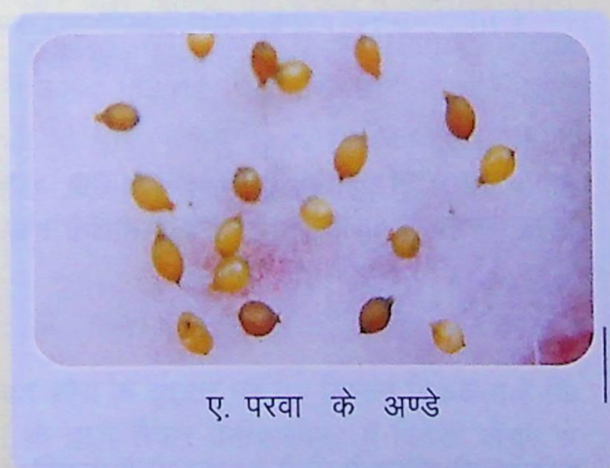
ए. परवा के अण्डे
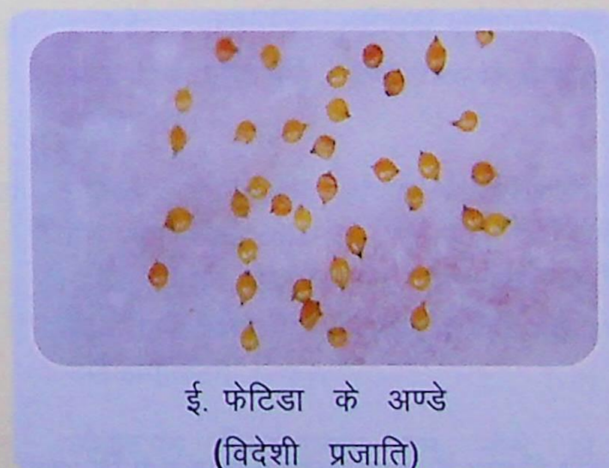
ई. फेटिडा के अण्डे (विदेशी प्रजाति)

चित्र 1 : केंचुआँ प्रजातियाँ और उनके अण्डे

तालिका 1: अध्ययन क्षेत्र में देशी केंचुआ प्रजातियों की सूची

टैक्सोनोमिक स्थिति (जाति और प्रजाति)	पर्यावरणीय वर्ग	मृदा के अभिलक्षण				प्राकृतिक वास
		pH	EC mmhos/cm	TOC %	TN %	
लुंबरीसीडाए एल्लोलोबोफोरा परवा Lumbricidae Allolobophora parva	एपिजेइक Epigeic	7.5	4.2	1.20	0.52	पौधो की जड़ो के आस–पास की भूमि, ग्रामीण मल जल निकास के पास मृदा
मेगास्कोलेसीडाए लंपीटो मारुति Megascolecidae Lampito mauritii	एनेसिक Anecic	7.2	4.50	1.70	0.53	घास के मैदानों, वन, फसल क्षेत्रों मे, खाद गडढे, घरेलू कूडा–करकट, ग्रामीण मल–जल सिस्टम, अत्यंत कम क्षारीय मृदा आदि
मेटाफाइर पोस्तूमा *Metaphire posthuma*	एन्डोजेइक Endogeic	8.3	3.40	2.30	0.22	10-20 से.मी.गहराई पर रेतीला मृदा उच्च कार्बनिक प्रतिशत के साथ, घास के मैदान, लॉन, घरेलू बगीचा
मेटाफाइर होलेती Metaphire holletii	एन्डोजेइक Endogeic	6.3	3.00	1.60	0.21	खाद ढेर, बागानों, बंजर पडी भूमि
ओकटोचेएतिडाए डीकोगास्टेर बोलोई Octochaetidae *Dichogaster bolaui*	एपिजेइक Epigeic	8.0	3.50	4.20	0.71	ऊपर 5 से.मी. मृदा उच्च कार्बनिक प्रतिशत के साथ
ओकटोचाएतोना बिएटरिक्ष *Octochaetona beatrix*	एपिजेइक Epigeic	8.0	1.20	1.10	0.21	रेतीला और चिकनी मृदा, कम कार्बनिक पदार्थ वाली मृदा
एउतीफोएस इनकोमोडस *Eutyphoeus*	एपिजेइक Epigeic	6.9	1.40	1.40	0.43	जलोढ भूमि, कृषि क्षेत्रों, संयंत्र नर्सरी, बागों, फलोद्यानो तथा घास के मैदान

आकृति विज्ञान के आधार पर यह पाया गया कि आकार में यह प्रजाति (एल्लोलोबोफोरा पारवा) बहुतायत में इस्तेमाल होने वाली विदेशी प्रजाति (आइसीनिया फेटिडा) की तुलना में छोटी है। इन दोनों प्रजातियों के आकार तथा कोकून में अन्तर चित्र 1 में स्पष्ट होता है।

सर्वे के आधार पर यह पता लगा कि एल्लोलोबोफोरा पारवा (Allolobophora parva) नामक केंचुआ प्रजाति इस क्षेत्र में बहुतायत में पाई जाती हैं इसलिए इस प्रजाति को शोधकार्य के लिए चुना गया। वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए पर्याप्त मात्रा में एल्लोलोबोफोरा पारवा की संख्या को बढ़ाने के लिए इस प्रजाति का संवर्धन किया गया।

कार्यक्षेत्र से इकट्ठा की गई देशी प्रजातियों का उल्लेख तालिका–1 में किया गया हैं।

4.0 वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए देशी केंचुए (Allolobophora) की दक्षता – संक्षिप्त विवरण

तालिका–1 में वर्णित Allolobophora parva प्रजाति बिजनौर क्षेत्र में बहुतायत में पायी जाती है। अतः इस प्रजाति द्वारा प्रयोगशाला तथा क्षेत्रीय स्तर पर वर्मीकम्पोस्टिंग के प्रयोग किए गए। आँकड़ो से स्पष्ट हुआ कि इस केंचुए की बढ़ोत्तरी (Growth) के लिए 30% मिट्टी आवश्यक है तथा प्राकृतिक वास में इसकी जनसंख्या भली प्रकार बढ़ती है। हालाँकि यह जनसंख्या गणना में विदेशी प्रजाति (E. fetida) से थोड़ा कम है। इस बाधा को दूर करने के लिए कुछ प्राकृतिक उत्प्रेरक (BD preparation, Homeo solution, bioinoculants) द्वारा इनकी बढ़ोतरी व जनसंख्या को बढ़ाने के प्रयोग किए गए। इसमें बहुत अच्छी सफलता मिली। इस वर्मीकम्पोस्ट की गुणवत्ता विदेशी प्रजाति (E. fetida) द्वारा बनाई गई वर्मीकम्पोस्ट से बेहतर मिली।

45 दिन के प्रयोग के दौरान केंचुए की वृद्धि उपचारित एवं कन्ट्रोल दोनों में पाई गई। कन्ट्रोल की तुलना में देशी केंचुएं का नम्बर, भार तथा कोकूनस (Cocoons) उपचारित प्रयोग में ज्यादा पाये गये। जबकि विदेशी केंचुओं की संख्या कन्ट्रोल में ज्यादा पाई गई। कुल कोकून की संख्या में एल्लोलोपोफोरा पारवा (A. parva) की तुलना आइसिनिया फेटिडा (E. fetida) में ज्यादा पाई गई। यद्यपि शुरुआती भार को देखते हुए A. parva का भार (4.5 गुना), E. fetida (3.6 गुना) की तुलना में ज्यादा पाया गया। केंचुएं के संवर्धन में यह अन्तर कार्बनिक पदार्थों की बायोकेमिकल गुणवत्ता पर निर्भर करती है।

उपसंहार

उपर्युक्त शोध के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि देशी केंचुओं के द्वारा तैयार वर्मीकम्पोस्ट में विदेशी केंचुऐ से तैयार वर्मीकम्पोस्ट की तुलना में ज्यादा पोषक तत्वों की मात्रा पाई गई है। जो कि ऊष्ण (Tropical) तथा तीसरी दुनिया के देशों की फसल पैदावार को बढाने एवं रोगों को नियन्त्रित करने के लिए एक आशाजनक एवं प्रभावकारी पद्धति सिद्ध हो सकती है। सारांश में देशी केंचुओं का अपशिष्ट प्रबन्धन के लिए प्रयोग इस दिशा में एक महत्वपूर्ण कदम है।

संदर्भ सूची

1. एडवर्ड,सी.ए., 1988; ब्रेकडाउन ऑफ एनीमल, वेजीटेबल ऐण्ड इन्डस्ट्रियल आर्गेनिक वेस्ट बाई अर्थवर्म्स इनः अर्थवर्मस इन पेस्ट एण्ड एन्वाइरनमेन्ट मैनेजमेन्ट, एसपीबी एकेडेमिक पब्लिशिंग, दी हाँग, 21–31।

2. एल्वीरा, सी., सेमपीडो, एल., बेनिटिज, ई, नोगालेस आर, 1998; वर्मीकम्पोस्टिंग ऑफ सल्ज फ्रॉम पेपर मिल ऐडं डेयरी इन्डस्ट्रीज विद आईसिनिया एन्ड्राई (Eisenia andrei); ए पायलट स्केल स्टडी बायोरिसोर्स टेक्नोलोजी, 63,205–211।

3. गर्ग, के. ऐंड भारद्वाज, एन. 2001; प्रोडक्सन ऑफ वर्मीकम्पोस्ट थ्रू वर्मीटेक्नोलॉजी यूजिंग टू आबनोक्सियस वीड. ज. एनवारन. पोल्यूशन 8 (I), 49-52।

4. गर्ग, पी., गुप्ता ए. ऐडं सत्या, एस. 2006: वर्मीकम्पोस्टिंग ऑफ डिफेरेन्ट टाइप ऑफ वेस्ट यूजिंग ई. फेटिडाः ए. कम्पेरिटिव स्टडी बायोरिसोर्ज टेक्नोलॉजी, 97, 391–395।

5. हबीबुल्ला, एम.ए. एण्ड इस्माइल, एस.ए. 1985: प्रीफिरेन्स टू सॉइल फ्रेक्सनस ऐडं द इफेक्ट ऑफ सॉइल कोम्वेक्सन ऑन दि कासटिंग ऐडं ब्रोइंग बिहेवियर ऑफ द अर्थवर्म लेम्पीटो मारुती (Lampito mauritii) ज. सोइल. बाओल. इकोलोजी, 5 (I). 26-32।

6. इस्माइल, एस.ए., 1994; द यूज ऑफ लोकल स्पीसीज ऑफ अर्थवर्मस. इनः एग्रीकल्चर चेन्जीन्ग बिलेजिस; 13,27–37।

7. जुल्का, जे.एम., 1986: अर्थवर्मस रीसोर्सज ऑफ इन्डिया इन प्रोसिडिंग नेशनल सेमीनार, आर्गेनिक वेस्ट यूटिलाइजेशन, वर्मीकम्पोस्ट, दास, आर.सी., सेनापति, बी.के. एण्ड मिश्रा, पी. सी. (एडि.) पार्ट बीः वर्म्स एण्ड वर्मीकम्पोस्टिंग, 1–7।

8. लोकेट,एम. विनसेसलास, एम., रौले, जे., 1984; सेल्यूजेसिक एक्टीविटी इन दि गट ऑफ आइसीनिया फेटिडा, एप्लाइड बायोकैमेस्ट्री, बायोटेक्नोलॉजी, 9, 377।

9. माथुर, बी.एस., सरकार, ए.के. एण्ड मिश्रा, बी. 1980; रिलीज ऑफ नाइट्रोजन ऐडं फास्फोरस फ्राम कम्पोस्ट चार्जड विद रॉक फास्फेट ज. इन्डियन सोसाइटी ऑफ सॉइल साइन्स, 28,206–207।

10. सन्तोष सत्या, आर्या,आर.एस., ऐडं वासुदेवन,पी. 1993; स्थाई कृषि की ओर..... (हिन्दी पुस्तिका), आई.आई.टी. दिल्ली।

11. शान्ति, एन.आर., भोचर, आर.वी. ऐडं भिडे, ए.डी. 1993: वर्मीकम्पोस्टिंग ऑफ वेजिटेबिल वेस्ट कम्पोस्ट साइन्स यूटिलाइजेशन; 1,27–30।

12. सिंह, जे. 1997; हेबीटेट प्रीफ्रिरेन्स ऑफ सेलेक्टीड इन्डियन अर्थवर्म स्पीसीज ऐडं देयर एफीसिएन्सी इन रिडक्सन ऑफ आर्गेनिक मेटिरियल्स. सोईल बायोलोजी बायोकेमिस्ट्री; 29,585–588।

सत्याग्रह की लड़ाई हमेशा दो प्रकार की होती है। एक जुल्मों के खिलाफ और दूसरी स्वयं की दुर्बलता के विरुद्ध।

– सरदार पटेल

जैविक सब्जी उत्पादन में वर्मीकम्पोस्ट का बढ़ता महत्व

डॉ. बलराज सिंह[1] एवं **डॉ. शिवानी चतुर्वेदी**[2]
[1]संरक्षित कृषि प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान दिल्ली
[2]ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

भारतवर्ष सब्जी उत्पादन में विश्व का दूसरा बड़ा सब्जी उत्पादक है तथा हमारी औसत उत्पादकता 16 टन प्रति हेक्टेयर है जो विकसित देशों की तुलना में कम है। परन्तु बढ़ती जनसंख्या को प्रस्तावित मात्रा में सब्जी उपलब्ध कराने हेतु सब्जी उत्पादन एवं गुणवत्ता बढ़ाने की आवश्यकता है। सामान्यतया सब्जी उत्पादन सिंचित क्षेत्रों में सधन फसल प्रणाली अपनाकर किया जा रहा है जिसमे खेतों में अनेक सूक्ष्म एवम् प्रमुख तत्वों की उपलब्धता में ह्रास हुआ है। हालांकि समय–समय पर किसानों को सब्जी उत्पादन में पर्याप्त मात्रा में जैविक खाद (गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट आदि) इस्तेमाल करने की सलाह दी जाती रही है परन्तु सधन खेती वाले क्षेत्रों में पशुओं द्वारा उत्पादित गोबर की खाद की उपलब्धता तथा इस्तेमाल में कमीं देखी गयी है क्योंकि गोबर का बहुत बड़ा भाग ईधन के रुप मे इस्तेमाल कर लिया जाता है तथा शेष गोबर का समुचित विघटन नही हो पाता है। वास्तव में किसान कई बार कच्ची अवस्था मे ही उसका खेतों में इस्तेमाल कर लेते है जिससे फसलों में दीमक के प्रकोप में वृद्धि होती हैं ।

सब्जी उत्पादन एवं उपलब्धता बढ़ाने के प्रयास में जैविक खादों का महत्वपूर्ण योगदान है। जैविक उर्वरकों में वर्मीकम्पोस्ट तथा वर्मीवॉश आदि का विशिष्ट स्थान है। वर्मीकम्पोस्ट तथा वर्मीवॉश के द्वारा उत्पादकता, उत्पाद गुणवत्ता, मृदा की जल धारण क्षमता बढ़ाई जा सकती है तथा यह अनेक मित्र सूक्ष्मजीवों के विकास में भी अत्यधिक उपयोगी है।

2.0 वर्मीकम्पोस्ट की उपयोगिताः

- यह सरल व कम समयावधि में तैयार की जा सकती है। भूमि की उर्वरता बढाने के साथ–साथ पर्यावरण के लिए सहयोगी है।
- इसमें भूमि के मित्र सूक्ष्मजीवी की संख्या बढ़ाने मे मददगार तथा पोषक तत्वों के साथ–साथ कार्बनिक पदार्थ भी अधिक होते है।
- एन. पी. के. (N.P.K) की मात्रा पर्याप्त होती है व एन्जाइम भी भरपूर पाए जाते है।
- इसमें सूक्ष्म पोषक तत्व भी प्रचुर मात्रा में होते है।
- कुछ प्रयोगों में इसके पेस्टीसाइडल (Pesticidal) गुणों का भी पता चलता है।
- इसे कम स्थान में भी छोटे संरचनाओं व उपलब्ध सीमित साधनों से बनाया जा सकता है।
- वर्मीकम्पोस्ट द्वारा उत्पादित सब्जियों की पौष्टिकता में सुधार होता है।

3.0 कम्पोस्टिंग एवं वर्मीवाशः

⇨ वर्मी कम्पोस्ट योग्य पदार्थ, सब्जियों के अनुपयोगी भाग, घास फूंस, फलों के छिलके, फसलों के अवशेष, सड़ा गोबर, इत्यादि हो सकते हैं।

⇨ वर्मी कम्पोस्ट बनाने वाले मुख्य केंचुओं की प्रजातियाँ – आइसीनिया फेटिड़ा, डाईकोगा एवीजेन्सिस, यूड्रिलस यूजिनी आदि है।

इस पद्धति में केंचुओं द्वारा भूमि की उर्वरता बढाई जाती है। सामान्यतः 1 ग्राम केंचुए 1 ग्राम कम्पोस्ट एक दिन में बना लेते है। अब यदि 1 वर्गमीटर में 1000 केंचुओं को डाला जाय तो लगभग 1 किलो वर्मीकम्पोस्ट एक दिन में तैयार कर लिया जायेगा। ये केंचुए न सिर्फ भूमि को उपजाऊ बनाते है बल्कि उसमें नत्रजन को स्थिर करते है, उपयोगी एन्जाइम, हार्मोन्स में भी वृद्धि करते हैं।

उपयुक्त तापमान, नमी, हवा व जैविक पदार्थ मिलने पर केंचुए अपनी संख्या बढाने के साथ–साथ गोबर व वानस्पतिक अवशेष को सड़ाकर जैविक खाद के रूप में परिवर्तित करते रहते हैं। केंचुए दो प्रकार के होते हैः

1. गहरी सुरंग बनाने वाले केंचुए : इस तरह के केंचुए माईट कालर्स (Endogic) कहलाते है। उनकी लम्बाई 8 से 10 इन्च तक होती है और 8 से 10 फुट गहरे तक नमी की

तलाश में भूमि में जाते है। यह 90 प्रतिशत तक मृदा और 10 प्रतिशत तक कार्बनिक पदार्थ का उपभोग करते है।

2. सतही केंचुए : ये केंचुए (Epegiec) जैसे आइसोनिया फेटिडा कहलाते हैं। इनकी लम्बाई 3 से 4 इन्च और वजन आधा ग्राम से 1 ग्राम तक होता हैं। ये लाल रंग के होते हैं जो मृदा कम व कार्बनिक पदार्थ ज्यादा खाते है। इसी वजह से वर्मीकम्पोस्टिंग के लिए इन्हीं को बेहतर माना जाता है।

उपयुक्त वातावरण व नमी मिलने पर एक केंचुआ एक सप्ताह में दो से तीन कोकून देता है और एक कोकून में तीन से चार अण्डे होते है। इस तरह एक प्रजनक केंचुआ लगभग छः महीने मे 250 केंचुए पैदा कर सकता है।

3.1 वर्मीकम्पोस्ट बनाने की सरल विधिः

- सर्वप्रथम 4–6 फुट ऊँचाई की एक शेड (छाया) बनाते है ताकि छाया व उपयुक्त तापमान बना रहे।
- भूमि पर 40 फुट लम्बी, 3 फुट चौड़ी व 3 इन्च ऊँची क्यारी बनाते है।
- इस क्यारी में तिनके, भूसा, जूट अथवा कृषि अपशिष्ट पदार्थ को फैला देते है।
- ये पदार्थ परत दर परत फैलाऐ जाते हैं जिनमें बीच–बीच में पानी का छिड़काव भी किया जाना चाहिए।
- पहली परत में कृषि अपशिष्ट पदार्थ व गोबर खाद बिछाया जाता है। उस पर पानी छिड़ककर दूसरी परत सूखा कम्पोस्ट या गोबर की 2 इन्च मोटी होती है। उस पर पुनः पानी का छिड़काव करना होता है। इस दूसरी परत पर 1 इन्च मोटी वर्मीकम्पोस्ट की परत फैलायी जाती है। वर्मी कम्पोस्ट वाली तीसरी परत पर 2 इन्च मोटी गोबर की खाद बिछाई जाती है। सबसे ऊपर खली, सूखी पत्तियॉ व कृषि अपशिष्ट पदार्थ डाल दिए जाते है। इस तरह चार या पांच परतों वाली लगभग डेढ फुट मोटाई की ढेरी बन जाती है।
- इसमें लगातार तीस प्रतिशत तक नमी बनाए रखनी चाहिए।
- इस प्रक्रिया में लगभग दो माह का समय लग जाता है।
- महक व काले रंग से पकी खाद (वर्मीकम्पोस्ट) के तैयार होने का अन्दाजा लगाया जा सकता है।
- जांच द्वारा इस तैयार वर्मीकम्पोस्ट खाद में नत्रजन, फास्फोरस, पोटाश, जिंक, कॉपर, कैल्सियम, मैग्नीशियम, सल्फर, कोबाल्ट व बोरोन की संतुलित •मात्रा पायी गयी।
- गोबर खाद की तुलना में वर्मीकम्पोस्ट में मुख्य व अतिरिक्त पोषक तत्व अधिक मात्रा में पाए जाते है।

3.2 वर्मीवॉश बनाने की विधिः

- वर्मीवॉश केंचुओं की सहायता से बनाया जाता है।
- यह किसी गहरे ड्रम या बाल्टी में बनाया जाता है जिसमें नीचे की सतह पर एक निकासी नल होना आवश्यक होता हैं।
- बाल्टी या ड्रम में नीचे 2.5–3.0 से. मी. तक ईट या पत्थर के टुकड़े बिछा दें जिस पर रेत या बालू की परत बिछाई जाती है।
- उस परत पर 3.0–4.5 से. मी. की मिट्टी की परत डाल दी जाती है।
- इस मिट्टी की परत पर 50–60 केंचुए डालकर गोबर की खाद फैला दी जाती है।
- इन केंचुओं पर 5–10 से. मी. ऊंची सूखी पत्तियाँ, पुआल या भूसे की परत डाल दी जाती है।
- हर परत में नमी को बनाये रखना चाहिए।
- लगभग 16–20 दिनों तक नमी का ध्यान रखते हुए वर्मीवॉश का उत्पादन पूरा होने लगता है।
- बाल्टी या ड्रम के निचले भाग मे निकासी से द्रव को एकत्रित कर लें ये ही वर्मीवॉश है। पुनः 2–3 लीटर पानी प्रतिदिन डालें जिससे वर्मीवॉश धीमी गति से संग्रहित किया जा सके।
- इस वर्मीवॉश का छः गुना पानी मिलाकर पौधों पर छिडकाव कर सकते है।

4.0 वर्मीकम्पोस्ट में पोषक तत्वों की उपलब्धता तथा फसलों के लिए अनुमोदित मात्रा

सामान्यतया वर्मीकम्पोस्ट से मिलनें वाले पोषक तत्वों की उपलब्धता की जानकारी न होने के कारण किसान इनके उपयोग करने में हिचकते हैं। हालाँकि वर्मीकम्पोस्ट से मिलने वाले पोषक तत्व गोबर की खाद की अपेक्षा अधिक मात्रा में होते हैं। वर्मीकम्पोस्ट तथा गोबर की खाद से मिलने वाले पोषक तत्वों की तुलना सारणी 1 मे की गई है।

डॉ. एस. पी. घोष तथा साथियों, भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (1998) द्वारा विभिन्न सब्जी फसलों में रासायनिक उर्वरको (N,P,K) की सिफारिश की है। अगर नत्रजन की मात्रा

सारणी 1: पोषक तत्वों की तुलनात्मक उपलब्धता

पोषक तत्व	खेत का कचरा	मुर्गी का बिछावन	वर्मीकम्पोस्ट	पशुओं का मूत्र	गोबर की खाद	बायोगैस स्लरी
नत्रजन :	0.50–0.60	3.03	2.5–3.00	0.80	0.5–0.93	1.80
फास्फोरस :	0.15–0.20	2.60	1.5–2.00	0.10–0.20	1.00	0.82
पोटाश :	0.50–0.70	1.40	1.5–2.00	0.50–0.60	1.31	0.80
पी. एच.	–	–	7.0–7.5	–	7.2–7.9	–

सब्जी फसलों में रासायनिक उरर्वको की अनुमोदित मात्रा तथा वर्मीकम्पोस्ट का विवरण सारणी 2 में दिया गया है:

को वर्मीकम्पोस्ट द्वारा दिया जाए तो यह मात्रा विभिन्न फसलों में 30–150 टन प्रति हेक्टेंअर बनती है (सारणी 2)। वर्मीकम्पोस्ट की यह मात्रा सुगमता से खेतों में बुवाई/रोपाई के 15–20 दिनों पूर्व दी जा सकती है। वर्मीकम्पोस्ट में उपलब्ध नत्रजन बड़ी सहजता से सब्जी फसल में पौधों को उपलब्ध हो जाती है। वर्मीकम्पोस्ट के इस्तेमाल से सब्जी फसलों की उपज एवं गुणवता में सुधार देखा गया है।

4.1 वर्मीकम्पोस्ट एवं अन्य पोषक तत्व

वमीकम्पोस्ट द्वारा अनमोदित नत्रजन की मात्रा को खेत में लगाने से वर्मीकम्पोस्ट में उपलब्ध फास्फोरस तथा पोटाश तत्व की पूर्ति हो जाती है, तथा ये पौषक तत्व धीरे–धीरे फसल

सारणी 2: सब्जी फसलों में रासायनिक उरर्वको की अनुमोदित मात्रा (कि.ग्रा. प्रति हे.) तथा वर्मीकम्पोस्ट की मात्रा।

फसल	किस्म	नत्रजन	फास्फोरस	पोटाश	वर्मीकम्पोस्ट (टन/हेक्टेअर)
मिर्च	पन्त सी – 1	90	60	60	36
	ज्वाहर मिर्च–218	120	30	10	48
	पूसा ज्वाला	120	60	–	48
फूलगोभी	पन्त शुभ्रा	120	60	–	48
	पूसा सिन्थेटिक	150	120	–	60
	आई जे	120	60	60	48
प्याज	पूसा रेड	150	60	60	60
लहसुन	जी – 1	150	60	–	60
पत्तागोभी	पूसा ड्रम हैड	150	80	75	60
	प्राइड आफ इंडिया	180	50	50	72
भिण्डी	पूसा सावनी	100	150	150	60
करेला	प्रिया	60	80	30	72
	जौनपुरी करेला	90	60	60	36
तरबूजा	सुगर बेबी	100	60	60	40
खरबूजा	दुर्गापुरा मघु	100	60	60	40
	हरा मघु	100	60	60	40
मूली	पूसा चेतकी	120	–	–	48

अवधि के दौरान पौधों को मिलते रहते हैं। वर्मीकम्पोस्ट द्वारा नत्रजन के अतिरिक्त उपलब्ध होने वाले पौषक तत्वों का विवरण सारणी 3 में दिया गया है।

5.0 जैविक रेपिड कम्पोस्टिंग विधि

जैविक खेती हेतु जैव उर्वरकों की आपूर्ति बढ़ाना एक महत्वपूर्ण समस्या है। इस आपूर्ति को पूरा करने में रेपिड कम्पोस्टिंग विधि एक बेहतरीन तरीका है। इस विधि में न सिर्फ खेतो व सब्जियों से जन्में अनुपयोगी पदार्थो का फायदेमंद तरीके से इस्तेमाल किया जा सकता है अपितु यह आर्थिक रूप से किसानों व उत्पादकों के लिए लाभप्रद सिद्व हो सकती है। इसमें इन पदार्थो को कुछ बायोइनोक्यूलेन्ट्स (Bioinoculants) जैसे एस्पेरजिलस नाइजर, ए. आवामोरी इत्यादि फंगस को उचित मात्रा मे मिलाकर त्वरित गति से कम्पोस्ट कम समय में प्राप्त किया जा सकता है। कम्पोस्टिंग की समयावधि घटकर 60 से 45 दिन तक रह जाती है। इनसे तैयार कम्पोस्ट में पोषक तत्व बाहुल्य में उपलब्ध होते है।

रेपिड कम्पोस्टिंग के दौरान कम्पोस्ट सामग्री का तापमान काफी बढ़ जाता है। ऐसे मे अधिक तापमान के चलते खरपतवार के बीज जो खेत के अपशिष्ट पदार्थो व घास में मिलकर आ जाते है वह बीज स्वतः ही नष्ट हो जाते है। इसी प्रकार हानिकारक कवक व जीवाणु की संख्या भी अधिक तापमान की वजह काफी धट जाती है। रेपिड कम्पोस्टिंग के माध्यम से जहाँ हम लाभकारी कवकों व जीवाणुओं की संख्या में बढ़ोतरी करते है वहीं इनकी वर्चस्व संख्या के कारण भूमि मे पहले से विद्यमान हानिकारक कवकों की संख्या को लाभकारी कवक दबा देते हैं।

सारणी 3: वर्मीकम्पोस्ट से उपलब्ध पौषक तत्व।

फसल	किस्म	वर्मीकम्पोस्ट (टन / हैक्टर)	वर्मीकम्पोस्ट से प्राप्त तत्व (कि.ग्रा. प्रति हैक्टर)	
			फास्फोरस	**पोटाश**
मिर्च	पन्त सी – 1	36	54	54
	ज्वाहर मिर्च–218	48	72	72
	पूसा ज्वाला	48	72	72
फूलगोभी	पन्त शुभ्रा	48	72	72
	पूसा सिन्योटिक	60	90	90
	आई जे	48	72	72
प्याज	पूसा रेड	60	90	90
लहसुन	जी – 1	60	90	90
पत्तागोभी	पूसा ड्रम हैड	60	90	90
	प्राइड आफ इंडिया	72	108	108
भिण्डी	पूसा सावनी	60	90	90
करेला	प्रिया	72	36	36
	जौनपुरी करेला	36	54	54
तरबूजा	सुगर बेबी	40	30	30
खरबूजा	दुर्गापुरा मघु	40	30	30
	हरा मघु	40	30	30
मूली	पूसा चेतकी	48	72	72

6.0 उपसंहारः

जैविक खेती किसानों में दिन–प्रति–दिन लोकप्रिय होती जाती है। इंटरनेशनल कंपिटिंग सेंटर फॉर आर्गेनिक एग्रीकल्चर (ICCOA) की रिपोर्ट के अनुसार हमारे देश में पिछले पांच वर्षो में जैविक खेती का प्रचलन सात गुणा से भी अधिक हो गया है। वर्ष 2007–2008 में करीब 15 लाख हेक्टेअर क्षेत्रफल में जैविक कृषि की गई। वर्ष 2003 में 7.3 करोड़ रूपये

सारणी 4 : सूक्ष्मजीव विश्लेषणं

	कुल बैक्टीरीयल संख्या	कुल फंगस संख्या	घुलनशील फास्फोरस सूक्ष्माणु	एकटीनोमाइसिटिस	राइज़ोबियम
	सी. एफ. यू. / ग्रा0				
मध्यम कम्पोस्ट	4.5×10^{12}	1.9×10^{5}	6.0×10^{4}	1.0×10^{6}	Nil
भा. कृ. अ. सं. कम्पोस्ट	8.0×10^{12}	1.0×10^{5}	1.0×10^{6}	6.0×10^{6}	Nil

का जैविक खाद्य उत्पाद निर्यात किया गया, जो बढ़कर 2008 में 30 करोड़ रुपये का हो गया है। एक आंकलन के अनुसार वर्ष 2021 तक यह बढ़कर 2500 करोड़ रुपयें का हो जाने की उम्मीद की जा रही है। विश्व में वर्ष 2000 में जैविक उत्पादों का सालाना कारोबार 18 अरब डॉलर था जिसकी अब लगभग 38.6 अरब डॉलर बढ़त पायी गयी है। इसी तरह बिक्री दर में बढ़ोतरी देखते हुये आने वाले 5 वर्षो में निर्यात लागत 6.7 गुनी बढेगी। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जैविक उत्पादों के वैश्विक बाजार में हमारे भारत देश की प्रतिभागिता 0.2 फीसदी है जिसकी वर्ष 2012 तक 2.5 फीसदी तक हो जाने की उम्मीद की जा रही है।

यह नितान्त स्वभाविक है कि जैविक कृषि का एक मुख्य घटक जैविक खाद है। जैविक खाद बनाने वाली विभिन्न विधियों में त्वरित वर्मी कम्पोस्टिंग व बायोगैस स्लरी का विशिष्ट स्थान है। वर्मीकम्पोस्ट बनाने के लिए स्थानीय केचुँआ प्रजाति का भी सफल प्रयोग किया जा सकता है। यह विधि सरल व सस्ती है। वर्मीकम्पोस्ट व वर्मीवाश में प्रचुर मात्रा में पोषक तत्व, विशेष एन्जाइम व हारमोन्स तथा कीट नियंत्रण गुण बढ़ जाते हैं। चार–पिट टेक्नौलोजी (Four Pit Technology) द्वारा इसकी प्रैक्टिकल व्यवहार्यता (feasibility) को अत्यधिक बढ़ाए जाने का प्रमाण मौजूद है।

संदर्भ

1. अतिये, आर.एम., एस. सुबलेर, सी.ए. एडवर्डस, जी. बचमेन, जे.डी. मेटजगेर, ऐन्ड डब्ल्यू शुस्टार, 2002 "इफैक्ट्स ऑफ कम्पोस्टस ऑन प्लॉन ग्रोथ इनहॉर्टिकल्चरल कन्टेनर मीडिया ऐन्ड सॉयल" इन पिडो बायोलोजिया, 44, पृ. 579- 590।

2. बीट्ज, अलीसी, 1999 "वर्मस ऑफ कम्पोस्टिंग (वर्मीकम्पोस्टिंग)" ATTRA-नेशनल सस्टे नएँ बॅ ल एग्रीकल्चर इन्फॉर्मेशॅन सर्विस,, लाइवस्टाक टेक्नीकल नोट, जून, 1999 बायोसाइकिल 2001 "वर्मीकम्पोस्ट ऐज इनसेक्ट रीपेल्लेन्ट" जनवरी, 01, पृ. 19।

3. बोदानोव, पीटर, 1996, कमर्शियल वर्मीकल्चरः हाऊ टू बिल्ड ए थराइविंग बिजनेस इन रेडवर्मस, वर्मीको प्रेस, ऑरेगॅन पृ. 83।

4. कैन्लस, एल. पी., एफ.एल. ऑलिवारेस, ए.एल. ओकोरोकोवा–फाकनहा, ऐन्ड ए. आर. फाकन्हा, 2002, "हुमिक एसिड्स आइसोलेटिड फ्रॉम अर्थवर्म कमपोस्ट एन्हॉन्स रूट एलॉगेशॅन, लेटेरल रु इर्मजेन्स, ऐन्ड प्लाज्मा मेम्बरेन H^{+}–Atpase एक्टिविटी इन माइजे रुट्स" इन प्लाट फिजियोलॉजि, संस्करण 130, दिसम्बर, पृ. 1951-1957

5. एडवर्डस, सी.ए. 1998, "दि यूज ऑफ अर्थवर्मस इन दि ब्रेकडाउन ऐन्ड मेनेजमेन्ट ऑफ ऑर्गेनिक वेस्टस" इनः एडवर्डस, सी.ए. (ed) अर्थवर्मस इकोलॉजि। सेन्ट लूसी प्रेस, बोका राटोन पृ. 327-354।

6. गर्ग पायल, सत्य सन्तोष, शर्मा सत्यवती, (2008); "लोकल स्पिसिज ऑफ अर्थवर्मस फॉर वर्मीकम्पोस्टिंग ऐन्ड वर्मी वाश, टेक्नॉलोजी मेन्यूल, ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली।

नागफनी (Opuntia): शुष्क एवं अर्द्धशुष्क क्षेत्र के लिए एक बहुउपयोगी पौधा

डॉ.विनिता जानू, डॉ.सत्यवती शर्मा
डॉ.अनुश्री मलिक एवं **प्रो.पद्मा वासुदेवन**
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

एन्जियोस्पर्म में कैक्टस एक सबसे विशिष्ट एवं सफल पादप प्रजाति है, विश्व में इसकी लगभग 1600 जातियां पायी जाती हैं। कैक्टस नाम ग्रीक शब्द 'कैक्टोस' से बना है जिसका अर्थ है कांटेदार। कैक्टस एक द्विबीजपत्री पौधा है। तना हरितलवक युक्त प्रकाश संश्लेषक होता है एवं पत्तियाँ काँटों में रूपान्तरित होती हैं। इसे विभिन्न नाम जैसे नागफनी, पत्ता थोर, ट्यूना, भारतीय फिग, ओपन्शिया एवं चौला से जाना जाता है तथा इसका वैज्ञानिक वर्गीकरण निम्नानुसार है :-

किंगडम	**प्लान्टी**
श्रेणी	**मंगालिओप्सिडा**
वर्ग	**क्रायोफिल्लेस**
कुल	**कैक्टेसी**
उप–कुल	**ओपन्टीएडी**
जाति	**ओपन्शिएसी**
गण	**ओपन्सिया**

नागफनी एक मरुद्भिदीय पादप है जो मुख्यतः शुष्क (250 मि.मी. वार्षिक वर्षा) एवं अर्द्धशुष्क (250–450 मि.मी. वार्षिक वर्षा) वाले क्षेत्रों में पाया जाता है। यह कैक्टस का सबसे बड़ा समूह है एवं इसकी 360 से अधिक प्रजातियां पाई जाती हैं। मुख्य रूप से यह अमेरिका, आस्ट्रेलिया, भारत, कनाडा, चिली और मेक्सिको में पाया जाता है।

आमतौर पर नागफनी दो समूहों में विभाजित होता है पहला समूह प्लेटी ओपन्शिया (Platy opuntia) है, इसमें वो पादप आते हैं जिनके तने चपटे होते हैं तथा ये काटों द्वारा घिरे रहते हैं। दूसरा समूह सिलेन्ड्रोओपन्शिया (Cylandropuntia) के नाम से जाना जाता है, इनका तना गोल एवं बेलनाकार होता है।

2.0 खेती पद्धति

यह शुष्क क्षेत्रों में पाए जाने वाला पौधा है। भारत में यह रेगिस्तानी इलाकों में पाया जाता है इसकी वृद्धि एवं फलन ग्रीष्म ऋतु की अवधि और मानसून पर निर्भर करती है। नागफनी के बीजों का अधिकतम अंकुरण 30°c–35°c के मध्य होता है। बालू और चिकनी मिट्टी में नागफनी आसानी से वृद्धि करता है। गंभीर लवणता और खारापन इसके बीजों के अंकुरण को कम कर देता है। वैसे तो ओपन्शिया अनेक प्रकार की भूस्थितियों में पनपने में सक्षम हैं।

भारत में नागफनी की वृद्धि ग्रीष्म ऋतु के दौरान होती है। नए पौधे कटिंग, ग्राफटिंग, मुकुलन एवं बीज अंकुरण से बनते हैं।

चित्र 1. नागफनी पादप समूह

चित्र 2. काँटे एवं एरिओल दर्शाता हुआ क्लडोड
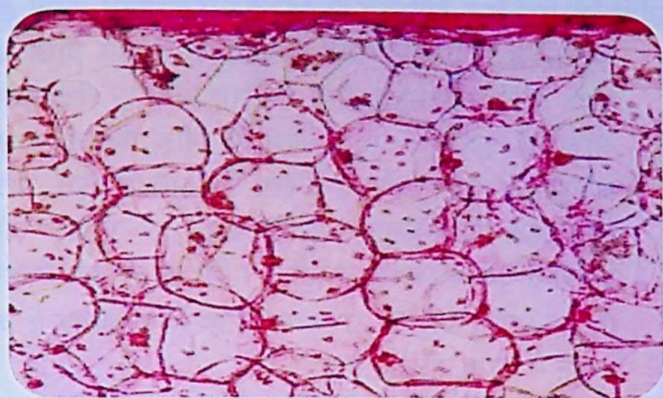
चित्र 3. पेरेन्काइमा एवं म्यूसीलेज कोशिकाएँ

चित्र 4. नागफनी परिपक्व फल

3.0 वानस्पतिक विशेषताएँ

नागफनी समूह (चित्र–1) में पाए जाने वाला पौधा है। यह कुछ इंच से लेकर 4–5 फीट तक विकसित होता है। इसका तना पत्ती के आकार का मोटा एवं मांसल होता है, एवं पानी की क्षति से बचने के लिए मोटी क्यूटीकिल एवं वैक्स से ढका रहता है, इसको क्लेडोड कहा जाता है। तने की लम्बाई 3.5–10 से.मी. एवं चौड़ाई 2–8 से.मी. होती है। इसकी दोनों सतहें चमकदार, गहरे हरे रंग की होती है। क्लेडोड की सतह पर नुकीले कांटे (चित्र–2) पाए जाते हैं। जिस सतह से कांटे निकलते हैं, उसको एरिओल कहा जाता है। नए क्लेडोड, फूल एवं कांटे इन्हीं ऐरिओल्स से निकलते हैं। नागफनी की दिलचस्प विशेषता इसमें ग्लोकिड्स का पाया जाना है। ग्लोकि्ड्स बाल के समान सफेद रंग की संरचना होती है जो एरिलोअल से निकलते हैं। जड़ें बहुत गहरी एवं जमीन की सतह पर फैली होती है ताकि पानी अधिक मात्रा में शोषित कर सकें।

फूल गुलाबी रंग के और दो भागों में बंटे होते हैं। निचला हरा भाग थैलेमस तथा ऊपरी रंगीन भाग पेरीएन्थ कहलाता है। फूल लगभग 4–6 से.मी. लम्बे होते हैं और सामान्यतः रात के समय खिलते हैं एवं इनमें परागकण होता है। फल सामान्यतः 2–3 से.मी. लंबा, अण्डाकार होता है तथा गहरे लाल रंग का होता है।

आंशिक परिपक्व फल (चित्र-4) का गूदा लाल, रसदार एवं हल्की खटास लिए होता है किंतु पूर्णतः परिपक्व फल ज्यादा रसदार एवं मीठे होते हैं। फल के केन्द्र में छोटे–छोटे काले रंग के अनेक बीज होते हैं। बीज कौमा के आकार (Comma shape) के 2–3 मि.मी. लम्बे एवं संख्या में अधिक होते हैं।

3.1 नागफनी की विशेषताएं तथा अनुकूलन

नागफनी के पौधे लम्बे समय तक बिना पानी के रह सकते हैं। ये अत्यन्त तेज गर्मी एवं उच्च तापमान सहन कर सकते हैं। पौधे बहुत धीरे–धीरे वृद्धि करते हैं ताकि पानी की आवश्यकता कम हो। पानी संग्रहित करने के लिए विकसित पेरेन्काइमा कोशिकाएं (चित्र-3) होती हैं। रंध्र रात के समय खुलते हैं एवं दिन में बंद रहते हैं। जिससे पानी का ह्रास नहीं होता है। नागफनी 60 प्रतिशत पानी की कमी पर भी जीवित रहते हैं जबकि अन्य पादप 20 प्रतिशत कमी पर ही मर जाते हैं। नागफनी में क्षतिग्रस्त ऊतक की शीघ्र मरम्मत कर लेने की क्षमता होती है।

3.2 नागफनी का रासायनिक संगठन

नागफनी में प्रचुर मात्रा में मिनरल्स (पोटेशियम, कैल्शियम, सोडियम एवं लोहा) शुगर, आर्गेनिक अम्ल (मैलोनिक अम्ल, सिट्रीक अम्ल एवं ऑक्सेलिक अम्ल), 18 प्रकार के ऐमिनो अम्ल (ग्लूटेमिक अम्ल, ल्यूसिन, एलानिन, वैलिन, प्रोलिन, लाइसिन, आर्जिनिन आदि), लिपिड, विटामिन (विटामिन–सी, राइबोफ्लेविन एवं नाइसिन) सैल्यूलोज, हैमिसैल्यूलोज और लिगनिन पाए जाते हैं।

4.0 विभिन्न उपयोग

(i) भोजन के रूप में

नागफनी के क्लेडोड में प्रोटीन लाइसिन मिथियोनिन, एवं ट्रीपटोफेन दालों के मुकाबले में अधिक मात्रा में पाये जाते हैं इसलिए नागफनी सब्जी के काम भी आता है।

इसके फल में विटामिन – सी, लिपिड, प्रोटीन, मिनरल्स, फाइबर्स एवं शर्करा प्रचुर मात्रा में पाए जाते हैं। फल का खाने योग्य हिस्सा गूदा (Pulp) होता है जिसमें 84–90 प्रतिशत पानी एवं 10–15 प्रतिशत शर्करा होती है। विश्व के कुछ हिस्सों में इसके ताजे फलों का सेवन किया जाता है एवं सूखे हुए फलों को अचार, जैम, कैन्डी और पेय पदार्थ बनाने के काम में लिया जाता है।

(ii) चारे के रूप में

सूखे के समय नागफनी पशुओं के लिए सहायक चारे के रूप में काम आता है। इसमें फिनोलिक एवं टैनिन कम

मात्रा में होने के कारण यह आसानी से पच जाता है एवं मीट की मात्रा को बढ़ाता है एवं दूध का रंग तथा स्वाद भी उत्तम होता है।

(iii) डाई उत्पादन में

नागफनी पर डाई उत्पादन करनेवाला कीड़ा (Cochineal insect) वृद्धि करता है इससे कार्मिन स्टेन (Carmine stain) बनाया जाता है जो गुणसूत्र (Chromosome) को रंगने के काम आता है।

(iv) सौन्दर्य प्रसाधन में

नागफनी का जूस शैम्पू, कण्डीशनर, लोशन एवं साबुन बनाने के काम आता है।

(v) बाड़ बनाने में

काँटों की उपस्थिति के कारण नागफनी की कुछ जातियाँ खेतों के चारों तरफ बाड़ बनाने के काम आती हैं।

(vi) ईंधन के रूप में

विश्व के कुछ हिस्सों में सूखी हुई नागफनी को ईंधन के रूप में काम लेते हैं।

(vii) औषधि के रूप में

नागफनी में पीड़ाहर (Analgestic), डाइबिटीक रोधी (Antidiabetic), मूत्रवर्धक (Diuretic), विषाणुरोधी (Antiviral) एवं कोलेस्ट्रोल कम करने की क्षमता होती है। ओपन्शिया फाइकस इन्डिका के क्लेडोड से इथेनोलिक निष्कर्षण, एसिटाइल सेलिसिलिक अम्ल के समान एनालजेसिक प्रभाव दर्शाता है। यह डाइबिटीज मिलेटस टाइप–II के उपचार के काम आता है। नागफनी का जूस सिरम ग्लूकोज की मात्रा को कम करता है। नागफनी के मिथेनालिक निष्कर्षण को क्लोरोफार्म एवं पैट्रोलियम ईथर के साथ मिलाने से यह चूहों में एन्टी स्पर्मेटिक गुण दर्शाता है। नागफनी का जूस कुछ डी.एन.ए. (DNA) एवं आर.एन.ए. (RNA) वाइरस के गुणन को रोकता है।

उदाहरण : हरपिस सिमपलेक्स वाइरस टाइप –2 हरपिस वाइरस एवं इन्फ्लूएन्जा वाइरस।

(viii) अन्य उपयोग

नागफनी से निष्कर्षण द्वारा प्राप्त जूस म्यूसिलेज कहलाता है। यह म्यूसिलेज चिली एवं मैक्सिको में पानी शुद्धीकरण एवं जल प्रतिरोधी पुताई करने के काम आता है। म्यूसिलेज में एल्यूमिनियम सल्फेट के समान पानी को साफ करने की क्षमता होती है। यह पानी से गंदलापन, सी.ओ.डी. एवं कुछ धातुओं जैसे कि लौह, फ्लोराइड एवं आरसेनिक का निष्काषन करता है। चूने में कुछ मात्रा म्यूसिलेज की मिलाकर पुताई करने से दीवारे जल प्रतिरोधी एवं चमकदार बनती है। विदेशों में इस मिश्रण (चूना+म्यूसिलेज) का उपयोग ऐतिहासिक इमारतों को बचाने में किया जा रहा है।

आभार:– लेखक गण महिला वैज्ञानिक फैलोशिप स्कीम विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी विभाग नई दिल्ली (भारत सरकार) का आर्थिक सहयोग के लिए आभार प्रकट करते हैं।

संदर्भ

1. नोबल, पि. एन्डरडे, जे.एल. 1992; म्यूसीलेज इन कैक्टाई; जरनल ऑफ एक्सपेरिमेन्टल बोटनी 43 (250); 641–648।
2. मेयर, बि.एन.; मैकल्यूगिलिन, जे.एल.; इकोनोमिक यूजेज ऑफ ओपन्शिया, कैक्टस एवं सक्यूलैन्ट; जं. 1981 53;107–112।
3. रुसेल; सी., फ्लेकर, पी.; 1987 'द प्रिकली पियरः ए सोर्स ऑफ हयुमन एन्ड एनिमल फूड इन सेमी एरिड रिजनस'; इकोनोमिक बोटनी 41; 433–445।
5. मैक ग्रोव, डी.; पेरोलिस, पी.एच.; 1979, द म्यूसिलेज ऑफ ओपन्शिया फाइकस इन्डिका, कोर्बोहाइड्रेट रिसर्च 69; 171–179।
6. मैक ग्रोव, डी. पोरोलिस, पी.एच. 1981; मिथाइलेशन एनालासिस ऑफ म्यूसिलेज ऑफ ओपन्शिया फाइकस इन्डिका; कार्बोहाइड्रेट रिसर्च 88; 305–314।
7. गोल्डस्टीन, जी., नोबल, पी., 1991; चेन्जेज इन ऑस्मोटीक प्रेशर एन्ड म्यूसीलेज ड्यूरिंग लो–टेम्परेचर एसिलेमेशन ऑफ ओन्शिया फाइकस इन्डिका प्लान्ट फिजियोलोजी, 97; 954–961।
8. फरटी मूनरी, ए., जिमनेज, ई., एरिजा, सी.आर., 1990; हारपोग्लाइसिमिक इफैक्ट ऑफ ओपन्शिया फाइकस–इन्डिका इन नॉन–इन्सूलिन–डिपेन्डेन्ट डाइबिटिज मिलेटस पेशेन्ट, फाइटोथैरेपी रिसर्च 40 (5); 197-201।

जैव विविधता संरक्षण में परम्पराओं का योगदान

श्री प्रशांत कुमार मिश्र, श्री हरि शंकर लाल, सुश्री श्वेता रानी
गणपति अपार्टमेंट, सरायढेला, धनबाद, झारखंड

प्रस्तावना

जैव विविधता के महत्व को आज हर वर्ग के लोग भलीभांति समझ चुके हैं। यह स्पष्ट हो चुका है कि मानव जाति का अस्तित्व स्वस्थ पर्यावरण एवं जैव विविधता पर सीधे–सीधे निर्भर है। दूसरी ओर कई कारणों से जैव विविधता का ह्रास हो रहा है। जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि हो रही है जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का दोहन तीव्र गति से हो रहा है। शहरीकरण तथा औद्योगिकीकरण भी तेजी से बढ़ रहा है, जिसके परिणामस्वरूप प्राकृतिक संसाधनों का क्षरण तीव्र गति से हो रहा है, जंगल एवं अन्य प्राकृतिक आवास नष्ट हो रहे है। जैव विविधता एवं पर्यावरण का एक दूसरे से समेकित संबंध है तथा मानव जीवन के लिए भी अति आवश्यक हैं। अतः वर्तमान स्थिति में हमारे लिए यह अनिवार्य हो गया है कि हम जैव विविधता संरक्षण के प्रति सचेत हो जाएं एवं इस दिशा में उचित कदम उठाया जाए।

पिछले लगभग दो दशकों से सरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थानों में जैव विविधता के संरक्षण की दिशा में कई कदम उठाये गये हैं। विश्वविद्यालय एवं शैक्षणिक संस्थान भी अपना योगदान दे रहे हैं परंतु अभी तक के अनुभव से यह स्पष्ट होता है कि अपेक्षित सफलता प्राप्त नहीं हो पायी है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण यह है कि समस्या इतनी विकराल हो गयी है कि इसका समाधान कुछ संस्थानों एवं वैज्ञानिकों के प्रयास से ढूंढा जाना संभव नहीं है। वास्तव में समाज के हर वर्ग के लोगों के योगदान के बिना हमें पर्याप्त सफलता नहीं मिल सकती है। इसके लिए यह भी जरूरी है कि हम जनसाधारण को जागृत करें और उन्हें इस दिशा में अग्रसर होने के लिए प्रेरित करें। जनमानस के सहयोग के बिना हम इस समस्या से नहीं लड़ पाएंगे।

जैव विविधता संरक्षण के कुछ नवीन उपाय

(I) **धार्मिक आस्था आधारित विधि** – आज से करीब डेढ़ दशक पूर्व वर्ल्ड वाईड लाइफ फंड (WWF) ने एक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी का आयोजन किया, जिसका प्रमुख उद्देश्य जैव विविधता संरक्षण के विभिन्न उपायों पर चर्चा करना था। इस संगोष्ठी का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष यह था कि इसमें विभिन्न धर्म एवं संप्रदाय के धर्म गुरुओं को ही आमंत्रित किया गया था। लीक से हटकर इस सम्मेलन में कोई भी वैज्ञानिक आमंत्रित नहीं थे। इस संगोष्ठी में धर्म गुरुओं से यह आग्रह किया गया कि वे उनके अनुयायियों को जैव विविधता संरक्षण के लिए प्रेरित करें। ऐसा अनुभव रहा है कि धार्मिक आस्था अक्सर वैज्ञानिक तथ्यों से ज्यादा प्रभावशाली हो जाती है और वह जनमानस को सहज स्वीकार्य होता है। व्यवहारिक तौर पर ऐसे कई उदाहरण पाये गये हैं, जहां धार्मिक आस्था ने किसी पौधे अथवा जीव का संरक्षण सुनिश्चित किया। Ginkgo biloba एक ऐसा ही पौधा है जिसकी उत्पति अति प्राचीन काल में हुई और इसके समकक्ष पाए जाने वाले पौधे विलुप्त हो चुके है। परंतु चीन तथा एशिया के कुछ अन्य देशों में यह पौधा पूजा जाता था। अतः यह आज भी उपलब्ध है। हमारे देश में भी तुलसी, पीपल, बरगद इत्यादि पौधों की पूजा करना सर्वविदित है। अतः इनका संरक्षण स्वतः ही हो जाता है। दक्षिण भारत के मंदिरों में यह परंपरा है कि एक वृक्ष को उस क्षेत्र में पूजनीय माना जाए, तथा इनका संरक्षण किया जाए। इन वृक्षों को 'स्थल वृक्ष' कहा जाता है। यह परंपरा भी जैव विविधता संरक्षण में काफी सहयोगी साबित हुई है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि धार्मिक मान्यताओं के समावेश से आम जनता को जैव विविधता के संरक्षण के प्रति जागरूक किया जा सकता है।

(ii) **पारम्परिक तीज–त्यौहार के माध्यम से** – धर्म के अतिरिक्त ऐसी अनेक परंपराएं एवं तीज–त्यौहार है, जिनसे जैव विविधता संरक्षण को काफी बल मिलता है। झारखंड में अत्यधिक प्रचलित 'करमा' एवं 'सरहुल पर्व' विशेष तौर पर प्रकृति पर्व ही माना जाता है तथा इनका महत्व संरक्षण के दृष्टिकोण से काफी अधिक होता है। झारखंड के वन क्षेत्र में कुछ ऐसे पूजा स्थलों को चिन्हित

किया गया है, जिन्हें स्थानीय लोग 'सरना स्थल' कहते हैं। ऐसी मान्यता है कि इन स्थलों पर देवताओं का वास होता है। अतः यहां से एक पत्ता भी तोड़ना निषिद्ध है। स्पष्ट है कि ऐसी मान्यता जैव विविधता संरक्षण में काफी सहायक होती है तथा इनका उपयोग व्यापक स्तर पर किया जा सकता है।

(iii) **अन्य अभिनव विधियां**

(अ) **रक्षाबंधन के द्वारा पौधों का संरक्षण** :– झारखंड के हजारीबाग जिले में टाटी झरिया स्थित वन क्षेत्र में रक्षाबंधन के माध्यम से वन संरक्षण का एक अत्यंत ही

चित्र–1

चित्र–2

चित्र–3

चित्र–4

सफल प्रयास किया गया है। सन 1990 ई. में इस क्षेत्र के कुछ जागरूक लोगों ने 'वन्य प्राणी संरक्षण दल' गठन किया तथा इसके माध्यम से पर्यावरण एवं जैव विविधता संरक्षण का प्रयास शुरू किया गया। सभाओं, बैठकों, पदयात्राओं एवं नुक्कड़ नाटकों से लोगों को जोड़ने का आह्वान किया गया। परंतु इन सारे प्रयासों का अपेक्षित परिणाम प्राप्त नहीं हो सका। तब एक स्थानीय शिक्षक श्री महादेव महतो ने 7 अक्टूबर, 1995 को कुछ ग्रामीणों के सहयोग से वृक्षों के रक्षाबंधन का एक कार्यक्रम प्रारंभ किया (चित्र संख्या 1, 2, 3)।

इसमें वृक्षों की रक्षा करने का संकल्प लिया गया तथा वृक्षों के चारों ओर लाल धागा बांध कर इन्हें विशिष्ट रूप से चिन्हित किया गया। धागा तीन से.मी. से चार से.मी. चौड़ा रखा गया तथा इनकी लम्बाई आवश्यकतानुसार रखी गयी। रक्षा सूत्र की तैयारी में यथासंभव पवित्रता निभायी गयी। स्थानीय वनों से प्राप्त फलों एवं अन्य पादप सामग्रियों से पूजन सामग्री तैयार की गई तथा श्रद्धापूर्वक नृत्य गीत के साथ वृक्षों का रक्षाबंधन सम्पन्न किया गया। इसके पश्चात् प्रतिवर्ष 7 अक्टूबर, को इस कार्यक्रम को दुहराते हुए रक्षाबंधन की वर्षगांठ मनायी जाती है। रक्षाबंधन किए हुए वन क्षेत्र से पौधों को किसी भी प्रकार से नुकसान पहुंचाना सर्वथा वर्जित है, तथा इनके देखभाल की जिम्मेवारी स्थानीय निवासियों के ऊपर है। यहां भूमि के ऊपर गिरे हुये सूखे पत्तों एवं शाखाओं को भी नहीं हटाया जाता है जो कि

अंततः सूक्ष्म जीवियों एवं अन्य कीड़े–मकोडो़ के संवर्धन में सहायक होता है। इस प्रकार लगभग 40 वर्ग एकड़ का वन्य क्षेत्र अत्यंत ही स्वस्थ अवस्था में देखा जा सकता है। इस प्रयास की सफलता को देखते हुए कुछ अन्य क्षेत्रों में संरक्षण की इस विधि को अपनाया जा रहा है। जिसका अत्यंत ही सुखद परिणाम निकलता है। 30 अप्रैल, 1997 को बौधा जिला हजारीबाग के लगभग 40 वर्ग एकड़ क्षेत्र में; 8 मई 1998 को भेलवारा में 100 वर्ग एकड़ क्षेत्र में; 12 अक्टूबर 1998 को ही केरेडारी के 125 वर्ग एकड़ क्षेत्र में रक्षाबंधन के कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ। वहां भी यह कार्यक्रम जैव विविधता संरक्षण में महत्वर्पूण योगदान दे रहा है।

(ब) **तिलक समारोह** :– तिलक समारोह (चित्र संख्या 4) के द्वारा भी पौधों के संरक्षण को बढ़ावा दिया जा रहा है। इसके अंतर्गत स्थानीय ग्रामीण समारोह में भक्तिपूर्वक वृक्षों को लाल तिलक लगाते हैं तथा उनकी सुरक्षा की शपथ लेते हैं। रांची के वन लोटवा, कोडरमा का सिमरकुड़ी, गुमला का उपकाचट्टान एवं चतरा का पुरैनी वन क्षेत्र में तिलक समारोह काफी सफल हुआ है एवं इसके सुखद परिणाम सामने आये हैं।

निष्कर्ष

ऊपर वर्णन किए गए अनुभवों से यह स्पष्ट हो जाता है कि धर्म, परंपरा, रीति–रिवाज एवं पर्वों के माध्यम से पर्यावरण एवं जैव विविधता का संरक्षण काफी सफलतापूर्वक एवं आसानी से किया जा सकता है। आम जनता का रुझान इन मान्यताओं के प्रति काफी अधिक होता है तथा इनके आधार पर उनका सहयोग जैव विविधता संरक्षण में लिया जा सकता है। मात्र वैज्ञानिक कारणों एवं विश्लेषण के आधार पर हम जनमानस को सरंक्षण से जोड़ नहीं पाएगें। अतः आवश्यकता इस बात कि है कि संरक्षण के गैर पारम्परिक तरीकों का उपयोग अधिक से अधिक करें।

संदर्भ

1. कोठारी, ए., 1995, कन्जर्विंग लाइफ, कल्पवृक्ष, नई दिल्ली।
2. गाडगिल, माधव, 1993 इनडिजिनस नॉलेज फॉर बायोडाइवर्सिटी कन्जर्वेशन,

   एम्बिओ 22 (2–3), 151–155।
3. मिश्र, पी.के., 2006 बायोडाइवर्सिटी कन्जर्वेशन ऐन्ड ट्रेडिशनल नॉलेज इन बायोडाइवर्सिटी एसेसमेन्ट ऐन्ड कन्जर्वेशन, एग्रोबायोज, इंडिया।
4. डब्ल्यू.डब्ल्यू.एफ. 2000, दि लिविंग प्लैनेट रिपोर्ट, www.panda.org

भाग—V

स्वास्थ्य एवं चिकित्सा विज्ञान

योग एवं स्वास्थ्य – वैज्ञानिक पक्ष

स्वामी रामदेव
पतंजलि योगपीठ–दिव्य योगमंदिर (ट्रस्ट)
हरिद्वार, उत्तराखंड

योग एक मात्र वैकल्पिक चिकित्सा पद्धति नहीं अपितु योग का प्रयोग परिणामों पर आधारित एक ऐसा प्रमाण है जो व्याधि को निर्मूल करता है। अतः यह एक सम्पूर्ण विधा का शरीर रोगों के लिए ही नहीं बल्कि मनस रोगों का भी चिकित्सा शास्त्र है। हमने अष्टचक्रों की वैज्ञानिक पृष्ठभूमि का जब अन्वेषण किया एवं प्राचीन सांस्कृतिक शब्दों का जब आधुनिक चिकित्सा विज्ञान के साथ तुलनात्मक अध्ययन किया तो पाया कि मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, हृदय, अनाहत, आज्ञा एवं सहस्त्रार चक्र क्रमशः प्रजनन (Reproductory), उत्सर्जन (Excretory), पाचन (Digestive), कंकाल (Skeletal), परिसंचरण (Circulatory), श्वसन (Respiratory), तंत्रिका (Nerves) एवं अंतःस्त्रावी (Endocrine) तंत्र से संबद्ध हैं। मूलाधार से सहस्रार चक्र तक अष्टचक्रों का जो कार्य है वही कार्य रिप्रोडक्टरी से लेकर एन्डोक्राइन तंत्र का है। क्रियात्मक योगाभ्यास के सात प्राणायाम इन्हीं अष्टचक्रों अथवा आठ तंत्रों को सक्रिय एवं संतुलित बनाते हैं।

सिम्टोमैटिक एवं सिस्टेमिक ट्रीटमेन्ट आधुनिक चिकित्सा विज्ञान सिस्टमस पर आधारित चिकित्सा प्रणाली का संवाहक है, वहीं योग एवं आयुर्वेद सिस्टम को संतुलित करके समस्त रोगों को निर्मूल करने का विज्ञान है। मलेरिया एवं टी.बी. आदि बीमारियों को छोड़कर एलोपैथी में हाइपरटेंशन, डायबिटीज, अस्थमा व थायरॉयड आदि व्याधियों को मेन्टेन (नियंत्रित) करने के लिए दवा दी जाती है। इन बीमारियों का स्थाई उपचार (परमानेन्ट क्योर) एलोपैथी में नहीं है जबकि योग एवं प्राकृतिक जीवन शैली के द्वारा बी.पी., थायरॉयड व अस्थमा जैसी बीमारियां ठीक हो जाती हैं। प्राणायाम को यदि हम दो भागों में विभक्त करते हैं, एक अनुलोम–विलोम के पहले व दूसरा अनुलोम–विलोम के बाद तो भस्त्रिका, कपालभाति वाह्य प्राणायाम की प्रक्रियाएं हमारे रिप्रोडक्टरी, एक्सक्रेटरी, डाइजेस्टिव, स्केलेटल सिस्टम को समग्र रूप से संतुलित व स्वस्थ बनाती हैं वहीं अनुलोम–विलोम, भ्रामरी, उद्‌गीथ व प्रणव प्राणायाम सर्कुलेटरी, रेस्पिरेटोरी, नर्वस व एण्डोक्राइन सिस्टम को पूर्णतः संतुलित कर हमें सम्पूर्ण आरोग्य देते हैं। योग की तरह आयुर्वेद की भी जड़ी–बूटियां एवं अन्य औषधीय प्रक्रियाएं हमारे आठों सिस्टम के ऊपर ही कार्य कर उनकी अन्तः प्रणाली को संतुलित करती हैं। उदाहरण के लिए शिलाजीत समस्त रोगों में काम करती है। चरक संहिता मे भी कहा गया है – **'न सोऽस्ति रोगो भूवि'** अर्थात् दुनिया में कोई ऐसा रोग नहीं है जो शिलाजीत से ठीक नहीं होता हो क्योंकि शिलाजीत का रिप्रोडक्टिव सिस्टम से लेकर रेस्पिरेटोरी सिस्टम तक प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। अर्थात् इससे स्पर्म काउंट बढ़ता है व अन्य यौन विकार दूर होते हैं। मूत्र सिस्टम की विकृतियां मिटती हैं साथ ही डाइजेस्टिव सिस्टम को भी संतुलित करके यकृत व अग्नाशय के विकारों को दूर करने में शिलाजीत उपयोगी है। हड्डियों एंव मांसपेशियों को सुदृढ़ करके स्केलेटल व सर्कुलेटरी सिस्टम को ठीक कर शरीर का ट्रांसपोर्टेशन सिस्टम पूरी तरह ठीक कर देती हैं। फेफड़ों को ताकत देकर शिलाजीत रेस्पिरेटोरी सिस्टम की तमाम बीमारियों को दूर कर देती है। जब ये छः सिस्टम ठीक से कार्य करते हैं तो हमारा ऑटोनोमिक व वोलेन्टरी नर्वस सिस्टम भी नियन्त्रित रहता है।

इसी प्रकार शरीर की सम्पूर्ण अन्तः प्रणाली जब संतुलित रहती है तो अन्तःस्रावी ग्रंथियों अर्थात् हमारा एण्डोक्राइन सिस्टम भी ठीक रहता है। इस प्रकार परोक्ष रूप से शिलाजीत आठों सिस्टमों को ऊर्जा व आरोग्य देती हैं। अतः अकेली शिलाजीत सब रोगों को ठीक करती है। शिलाजीत की तरह ही अन्य एकल औषधि व एकल जड़ी बूटी (एक–एक औषधि व एक–एक जड़ी–बूटी) अनेकों रोगों को दूर करती है। एलोपैथी में ऐसा नहीं है। वहां प्रत्येक रोग की अलग दवा है क्योंकि वह दवा कुछ लक्षणों (सिम्पटम्स) को नियन्त्रित करती है, सिस्टम पर काम नहीं करती इसलिए एलोपैथी की एक दवा अनेक रोगों पर काम नहीं करती। हम योग व आयुर्वेद से लाक्षणिक

* यह लेख स्वामी रामदेव जी के योग संदेश में प्रकाशित दो लेख–'योग- एक जीवन दर्शन' व 'चिकित्सा विज्ञान के दो सिद्धान्त' पर आधारित है।

चिकित्सा न करके कारण का निवारण करते हैं। मूल को ठीक करते है अर्थात् मूलाधार से लेकर सहस्त्रार तक अष्टचक्र या आठ सिस्टमों को स्वस्थ व ऊर्जावान बनाते हैं। यही सैद्धांतिक भेद है–हमारी परम्परागत प्राचीन चिकित्सा पद्धति व आधुनिक चिकित्सा पद्धति में। इसलिए दोनों चिकित्सा विधाओं का दर्शन ही अलग–अलग है। अतः चिकित्सा को लेकर मतभेदों को मिटाना है तो अज्ञान, पूर्वाग्रह, स्वार्थ व अहंकार से ऊपर उठकर दोनों चिकित्सा विधाओं के सैद्धान्तिक मान्यताओं को ठीक से समझना होगा।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का यह सर्वमान्य सिद्धान्त है कि शरीर में होने वाले समस्त मानसिक एवं शारीरिक रोग तनाव की अवस्था में शरीर में स्त्रावित होने वाले स्ट्रैस हारमोन्स की अधिकता एवं गुड हारमोन्स के कम स्रावित होने के कारण होते हैं। स्वामीजी महाराज के योग–विज्ञान शिविरों में अनेकों व्यक्तियों पर किये गये वृहत् परीक्षणों से यह बात सिद्ध हो गयी है कि आज की दौड़–भाग भरी जिंदगी में प्राणायाम करने से तनाव कम होता है, परिणामतः स्ट्रैस हारमोन्स कम स्रावित होते हैं तथा गुड हार्मोस का स्राव अधिक होता है। गुड हार्मोन्स के अधिक स्रावित होने से प्राणायाम करने वाले लोगों के अधिकांश भयानक असाध्य एवं आज के चिकित्सा विज्ञान के लिए पहेली बने रोग जैसे मधुमेह, मोटापा, उच्चरक्तचाप, अवसाद, अनिद्रा, माइग्रेन, थायराइड, पार्किंसन, हृदयरोग, अस्थमा, ब्रोनकाइटिस, सफेद रोग, आर्थराइटिस, स्पेण्डोलाईटिस, विभिन्न प्रकार की हैपेटाइटिस, गुर्दे की भयंकर समस्या, लीवर की समस्या, गैस, अम्लता आदि ठीक हो जाते हैं। आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो प्राणायाम से साधक को दिव्य आनंद की प्राप्ति होती है। यही कारण है कि प्राचीन काल में ऋषि प्राणायाम की विभिन्न विधियों का अभ्यास करते थे। महर्षि पतंजलि के अनुसार

'त्त क्षीयते प्रकाशावरणम्'

(योगदर्शन : 2.52)

अर्थात् प्राणायाम की दक्षता प्राप्त करने पर चित्त निर्मल हो जाता है, और मस्तिष्क में ज्ञान का प्रकाश भर जाता है।

यद्यपि प्राणायाम की विभिन्न विधियाँ शास्त्रों में वर्णित हैं और प्रत्येक प्राणायाम का अपना एक विशेष महत्व है। तथापि सभी प्राणायामों का व्यक्ति प्रतिदिन अभ्यास नहीं कर सकता। अतः हमने गुरुओं की कृपा व अपने अनुभव के आधार पर प्राणायाम की एक सम्पूर्ण प्रक्रिया को विशिष्ट वैज्ञानिक रीति व आध्यात्मिक विधि से आठ प्रक्रियाओं में क्रमबद्ध व समयबद्ध किया है। प्राणायाम के इस पूर्ण अभ्यास को करने से व्यक्ति को इनके शारीरिक व मानसिक लाभ होते हैं।

एक–एक सिस्टम के असन्तुलन से अनेक प्रकार की व्याधियाँ या विकार उत्पन्न होते हैं। भाषा कुछ भी हो भाव विज्ञान एवं अध्यात्म का एक ही तात्पर्य है। भाषा तो मात्र भावों की अभिव्यक्ति का माध्यम है लेकिन चार सौ वर्षों की गुलामी की आत्मग्लानि के दौर से हम कुछ ऐसे गुजरे कि हमें वात, पित्त व कफ की बजाय Anabolism, Catabolism, Metabolism ठीक से समझ आने लगे। अपनी परम्परा, संस्कृति व ज्ञान को हम अज्ञानवश आत्मगौरव के रूप में न देखकर आत्मग्लानि से भर गये। 'चक्र' पढ़कर चक्कर में पड़ गये परन्तु System शब्द को पढ़कर हम अपने आप को Systematic कहने लग गये जबकि प्राचीन चिकित्सा ज्ञान व आधुनिक चिकित्सा ज्ञान का तात्पर्य एक ही था।

'प्रज्ञापराधो हि सर्वरोगणां मूलकारणम्' (चरक) के आयुर्वेदोक्त सिद्धान्त के बजाय 'Stress is the main cause of all diseases' हमें अधिक वैज्ञानिक लगने लगा। अब तो आग्रह एवं अज्ञान छोड़ें एवं सत्य से नाता जोड़ें। उदाहरण के लिए एण्डोक्राइन सिस्टम के असन्तुलन से तनाव व तनाव जनित हृदय रोग, उच्च रक्तचाप, अवसाद, मोटापा व मधुमेह आदि अनेक जटिल रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसी तरह से स्केलेटल सिस्टम के असंतुलन से शताधिक प्रकार का (सौ से अधिक प्रकार का) तो आर्थराइटिस होता है एवं मासंपेशियों की विकृतियों का भी व्यक्ति शिकार हो जाता है। कहने का तात्पर्य है कि आन्तरिक सिस्टम में आया किसी भी तरह का असंतुलन ही रोग है जबकि भीतर का संतुलन ही आरोग्य है।

लाखों करोड़ों लोगों पर योग के प्रत्यक्ष एवं परोक्ष प्रयोग से हमने ये पाया है कि मुख्यतः आठ प्राणायामों के विधिपूर्वक एक सुनिश्चित समय एवं संकल्पबद्ध अभ्यास से हमारे आठों चक्र या आठों तंत्र (सिस्टम) पूरी तरह से संतुलित हो जाते हैं। परिणामतः हम एक निरामय जीवन योग से पाते हैं। साथ ही हम दवा के रूप में जो कैमिकल साल्ट या हार्मोन बाहर से ले रहे थे, धीरे–धीरे उसकी आवश्यकता नहीं रह जाती क्योंकि जो हम बाहर से ले रहे थे वो सारे कैमिकल साल्ट या हार्मोन्स हमें भीतर से ही प्राप्त हो जाते हैं।

योग एलोपैथी की तरह एक पिजन होल ट्रीटमेन्ट न होकर आरोग्य की एक सम्पूर्ण संकल्पना है। आपातकालीन चिकित्सा व शल्य चिकित्सा को छोड़कर शेष चिकित्सा के सभी क्षेत्रों में योग एक श्रेष्ठतम चिकित्सा विधा है। योग के साथ कुछ जटिल रोगों में यदि आयुर्वेद का भी संयुक्त प्रयोग होता है तो

उपचार का असर अत्यधिक प्रभावी हो जाता है।

उक्त आरोग्य पक्ष के साथ–साथ योग का आध्यात्मिक पक्ष बहुत ही विराट है। यद्यपि योग का मुख्य लक्ष्य समाधि की प्राप्ति या स्वरूप की उपलब्धि या परम सत्य का साक्षात्कार है। साथ ही योग से समाधि की प्राप्ति की इस यात्रा में बीच के अवरोध रोग तो स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं अर्थात् योग से व्याधि की परिसमाप्ति तो योग का बायो प्रोजेक्ट है। मुख्य लक्ष्य तो समाधि ही है, यह हमें कभी भी नहीं भूलना चाहिए। योग के बारे में ये विचार मात्र बौद्धिक व्यायाम नहीं, कोई सपना, प्रलोभन या आश्वासन नहीं अपितु योग के प्रयोग का यथार्थ है। मैं आश्वस्त हूँ कि आगे आने वाले समय में विश्व आग्रह रहित होकर योग को आत्मसात करेगा और योग से एक शान्त, स्वस्थ, संवेदनशील व समृद्ध राष्ट्र व विश्व का निर्माण होगा। साइंस ऐन्ड स्प्रीच्युलिटी, भौतिकवाद व अध्यात्मवाद के समन्वय से पूर्ण विकास होगा।

मानव–देह ही सर्वश्रेष्ठ देह है एवं मनुष्य ही सर्वोच्च प्राणी है क्योंकि इस मानव–देह तथा इस जन्म में ही हम इस सापेक्षिक जगत से संपूर्णतया बाहर हो सकते हैं– निश्चय ही मुक्ति की अवस्था प्राप्त कर सकते हैं और यह मुक्ति ही हमारा चरम लक्ष्य है!

–स्वामी विवेकानन्द

मध्य हिमालय की दिव्य औषधि (यरचागुम्बा) कार्डिसेप्स साइनेनसिस

श्री कैलाश कोठारी
सदस्य–भारतीय विज्ञान लेखक संघ (ISWS)
निवास 78, नदी रिस्पना रोड, ब्लाक–II
देहरादून, उत्तराखण्ड

1.0 प्रस्तावना

जीवन को बचाये रखने के लिए दिव्य औषधियों के दिलचस्प तथ्य हमारे पौराणिक शास्त्रों में भी उजागर होते हैं। प्राचीन काल से ही पूर्वज विद्वानों के गहन ज्ञान, सूझ–बूझ और चरणबद्ध प्रयासों से विभिन्न रोगों के उपचार के लिये जिन प्राकृतिक तत्वों का प्रयोग किया जाता था उनका विस्तृत विवरण तथा विलक्षण जानकारियाँ हमारे आयुर्वेद, चरक संहिता, वैदिक शास्त्रों आदि में स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। मूर्छित या मृतक शरीर में प्राण फूंकने का विचित्र दर्शन या प्राकृतिक चिकित्सा से होने वाले लाभों की पुष्टि हमारे प्राचीन ग्रन्थों से होती है। आयुर्वेद के पारंपरिक नुस्खे और विभिन्न प्राकृतिक चिकित्सा पद्धतियों का आज भी आदर और सम्मान होता है। भारतीय जनमानस के करीब होने के कारण घरेलू दवाइयों का मूल आधार भी आयुर्वेद ही है। आयुर्वेद की वैदिक परम्पराएँ अगर असरदार नहीं होती तो आज तक यह प्रचलन मे नहीं रहता। शरीर में विषैले तत्वों के प्रभाव को खत्म करने के लिये प्राकृतिक चिकित्सा एक कारगर प्रणाली है। जिसका दर्शन आयुर्वेद पर आधारित है। वेद–पुराणों में संजीवनी, सोम, लक्ष्मणा, आदि जैसी दुर्लभ औषधियों के चमत्कारी गुणों का विस्तृत विवरण मिलता है। महर्षि चरक की प्रमाणिक कृति 'चरक संहिता' की रचना बुद्ध के जीवन काल से भी 800 ई. पूर्व हो चुकी थी जिसमें असाध्य रोगों के निदान के लिये 300 प्रकार के पादप पदार्थ और जन्तु पदार्थ एवं खनिज लवणों का विवरण मिलता है।

इन्हीं में से हिमालय की उच्च श्रेणियों में पाई जाने वाली एक विचित्र औषधीय प्रजाति जिसे तिब्बती भाषा में 'यरचागुम्बा' कहते हैं, पिछले कुछ वर्षों से उत्तराखंड के पर्वतीय क्षेत्रों पिथौरागढ़ और चमोली जिलों में कौतुहल का विषय बनी हुई है। अपने आकार और स्वरूप में यह विचित्र प्रजाति आधा जन्तु और आधा वनस्पति है। स्थानीय लोग इसे कीड़ा घास के नाम से भी जानते हैं। मध्य हिमालय में लगभग 13 से 16 हजार फीट की ऊँचाई पर पाये जाने के कारण इसका संग्रह अत्यन्त दुर्लभ है। उत्तराखंड में जिला पिथौरागढ़ के धारचुला क्षेत्र में चिपला केदार एक धार्मिक आस्था से जुड़ा स्थान है यहां यह प्रजाति प्रचुर मात्रा में पाई जाती है। स्थानीय लोग इसे एकत्रित करने के लिए कई दिनों तक तम्बू लगाकर डेरा डाले रहते हैं। वे अभी इसके औषधीय गुणों से अनभिज्ञ हैं। लेकिन अच्छी कीमत पर बिकने के कारण इसका संग्रहण करके अवैधानिक तौर तरीकों से नेपाल, तिब्बत एवं चीन के व्यापारियों तक पहुंचा देते हैं। इन देशों में इसका व्यापक बाजार हैं। चीन के बाजारों में कॉर्डिसेप्स एसिड देशी औषधियों का प्रमुख आधार है। जो इसी प्रजाति से प्राप्त होता है।

2.0 ऐतिहासिक परिचय

इस विचित्र औषधीय प्रजाति का सर्वप्रथम विवरण तिब्बती साहित्य मे देखने को मिलता है। एक उल्लेख के अनुसार सर्वप्रथम तिब्बत की ऊँची पहाड़ियों में वहां के चरवाहों ने अपने पालतू पशुओं याक, जब्बू आदि को जमीनी घास के साथ इसे खाते हुए देखा और पाया कि दुर्बल पशु भी हृष्ट–पुष्ट होने लगे। समकालीन चीनी वैद्यों ने इसके उपयोगी औषधीय तत्वों की पहचान की और अनेकों शारीरिक विकारों के निवारण के लिए इसका प्रयोग किया। विभिन्न शारीरिक रोगों के निवारण के लिए इसका घोल बनाकर पेय के रूप में प्रयोग होने लगा। तत्कालीन राजकीय वैद्य एवं चिकित्सक हरी चाय की पत्तियों के साथ, बत्तख एवं चिकन के सूप के साथ इसका घोल

यरचागुम्बाः औषधीय पौधा

बनाकर वृद्ध एवं जीर्ण–शीर्ण शरीर के रोगों के उपचार में इसका प्रयोग करते थे। धीरे–धीरे यह प्रजाति चमत्कारी औषधि के रूप में प्रयोग होने लगी।

नेपाल, तिब्बत, इण्डोनेशिया आदि देशों में भी इसका प्रयोग जीवनदायी औषधि के रूप में होने लगा। वैज्ञानिक परीक्षणों से ज्ञात होता है कि शरीर में जैव ऊर्जा के स्तर को बढ़ाने के लिए यह अद्वितीय है। प्राचीन चीन वासी प्राकृतिक चिकित्सा एवं जड़ी–बूटियों से असाध्य रोगों का इलाज करने में माहिर थे। चीनी लोग प्राचीन काल से स्वास्थ्य सेवाओं में जटिल रोगों के निदान के लिए विभिन्न प्रकार के तत्वों, जड़ी–बूटियों ओर छत्रक (कवकों) का प्रयोग करते थे। इस प्रजाति का पेय जीवन का संचार करने वाली कोशिकाओ को पुनः जीवित करने की क्षमता रखता है। यह अनेक शारीरिक बीमारियों की कारगर औषधि है। मिंग वंश के लोग भी अतिथि सत्कारों एवं धार्मिक अनुष्ठानों में पारंपरिक पेय के रूप में इसका घोल बनाकर परोसा करते थे। चीन, ताईवान एवं इण्डोनेशिया आदि देशों में यह घरेलू औषधि के रूप में बड़े पैमाने पर प्रयोग किया जा रहा है। क्योंकि यह शरीर के ऊर्जावर्धक तत्वों को विकसित करने की महत्वपूर्ण क्षमता रखता है।

3.0 संरचना

आयुर्वेद की तरह चीन का चिकित्साशास्त्र मेट्रियामेडिका जो कि 1757 में लिखा गया था, में यरचागुम्बा का विस्तृत विवरण चीन की पारम्परिक औषधि के रूप में मिलता है। इसके आधा जन्तु एवं आधा वनस्पति होने के कारण तिब्बती भाषा में यह यरसाद–गम्बू कहलाता है। जिसका अर्थ है ग्रीष्म ऋतु में घास और शीत ऋतु में जन्तु इस प्रजाति के जीवन चक्र का अदभुत संयोग हैं। सामान्यतः यह एक पतली जड़ की तरह दिखाई देता है जो शीत ऋतु में बर्फ के नीचे दब जाता है और ग्रीष्म ऋतु में बर्फ पिघलने के बाद इसके सिर के ऊपरी भाग से एक सफेद फफूंद जमीन से प्रकाश की ओर उग आता है। आधुनिक कीट वैज्ञानिकों के अनुसार यह एक कैटरपिलर है, जिसके सिर के ऊपर लहसुन की कोमल कपोल की तरह कवक उग आता है। बनस्पति शास्त्रियों ने इसे कॉर्डिसेप्स साइनेनसिस नाम दिया। जिसमें अत्यधिक बायोएक्टिव कम्पाउन्ड मौजूद होते हैं।

4.0 रासायनिक संगठन

चाइनीज एकेडमी ऑफ मेडिकल साइंसेज के विषय विशेषज्ञों ने इस प्रजाति पर अनेक अनुसंधान किये और पाया कि इसमें एस्पार्टिक एसिड, ग्लूटेनिक एसिड, ग्लाइसीन जैसे अनेक महत्वपूर्ण अमीनों अम्ल के साथ–साथ कैल्शियम, सोडियम, मैग्नीशियम लवण भी प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। जिससे इसे कार्डिसेप्स मशरूम के नाम से जाना जाता है। मार्चेला एस्कूलेटा एवं कार्डिसेप्स मशरूमों में वीटा–ग्लूकॉन अवयव पाये जाने के कारण यह स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त उपयोगी है। कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय के एग्रीकल्चर स्टेशन में भी इस विचित्र औषधीय गुणों वाली प्रजाति पर अनेक शोध एवं अनुसंधान हुए हैं। अनेक शारीरिक व्याधियों जैसे हृदय, यकृत, गुर्दे और फेफड़ों के रोगों में इसका प्रयोग लाभकारी सिद्ध हुआ है। यह रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाता है और एक महत्वपूर्ण औषधि के रूप में प्रचलित हुआ है। शरीर के इम्यून सिस्टम को शक्तिवर्द्धक बनाने में यह मशरूम अत्यन्त प्रभावकारी है। यह लैंगिक विकारों के अलावा शरीर में कोशिकाओं की कार्यक्षमता विकसित करके श्रम के लिए ऊर्जा स्तर बढ़ाने में भी कारगर है।

चीन के खेल प्रशिक्षक दावा करते हैं कि हमारे खिलाड़ियों के लिए हैल्थ फूड टॉनिक के रूप में इसका प्रयोग किया जाता है, जिसमें कोई स्टेरायड नहीं होता हमारे खिलाड़ी इसका खूब प्रयोग करते हैं। वैज्ञानिक अध्ययनों से पता चलता है कि नशीले पदार्थों की आदतों को छुड़वाने में भी इस प्रजाति से अप्रत्याशित परिणाम मिले हैं। वर्तमान में वानस्पतिक औषधियों के बढते प्रचलन के कारण इसे आयुरोधक औषधि के रूप में भी देखा जा रहा है। बीटा ग्लूकॉन वर्ग के रसायन मशरूम प्रजातियों में भरपूर मात्रा में पाये जाते हैं। स्वास्थ्य सेवाओं के लिये चीन में इन मशरूमों का उत्पादन, संग्रहण तथा भण्डारण प्रचुर मात्रा में किया जा रहा है। चीन की जैव विविधता पर आधारित औषधीय व्यापार एवं बाजार काफी समृद्ध एवं परिष्कृत हैं। वे वन सम्पदा एवं आधुनिक विज्ञान के संयोजन से हर्बल का विश्व बाजार स्थापित कर रहे हैं। कैलिफोर्निया में औषधीय मशरूम के उत्पादन में विश्व स्तरीय प्रतिष्ठित इकाई हैं जोकि चीन के साथ कॉर्डिसेप्स मशरूम पर कई महत्वाकांक्षी योजनाओं पर कार्य कर रही हैं।

चीन तथा जापान ने भी इस प्रजाति से सार्स और एड्स जैसे घातक रोगों के इलाज में इसके सफल प्रयोग किये हैं। कैंसर, अस्थमा और फेफड़ों के रोगों में इसका प्रयोग अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुआ है। जैव ऊर्जा का संचार कर यह वृद्ध अवस्था के दुष्प्रभावों को दूर करने में अत्यन्त सहायक है। परीक्षणों से यह भी सिद्ध हुआ है कि यह कॉर्डियोवस्कुलर तंत्र को भी पुष्ट करता है। आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकियों के जरिये चीन, जापान, अमेरिका एवं दक्षिण अफ्रिका देशों में भी इस अद्वितीय प्रजाति के संरक्षण, संवर्द्धन और प्रजनन हेतु अनेक महत्वकांक्षी प्रयोग हो रहे हैं। विभिन्न प्रौद्योगिकी के जरिये इसके संवर्द्धन के प्राकृतिक मापदण्ड जैसे धूप, जल व

तापमान एवं लवण संरचना आदि पर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। दक्षिण अफ्रीका घाना में एच.आई.वी. से ग्रस्त मरीजों पर इसके काफी क्लीनिकल प्रयोग किये जा रहे हैं। एड्स जैसे घातक रोग के निदान के लिए इससे प्राप्त बीटा ग्लूकॉन और चाय की हरी पत्ती के संयोग से एम्यून ऐस्टिस–247 नाम की दवा विकसित की गई है, जो कि संक्रमित रोगियों पर प्रयोग की गई और जिसके आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हो रहे हैं। कार्डिसेप्स मशरूम से एंटीरेड्रोवायरस कम्पाउन्ड प्रचुर मात्रा में प्राप्त किया जा रहा है। नगोची इन्स्टिट्यूट ऑफ मेडिकल रिसर्च, थाना ने इस प्रजाति से प्राप्त वीटा ग्लूकॉन अवयवों से स्वास्थ्य सेवाओं के लिए आश्चर्यजनक एवं अप्रत्याशित परिणाम प्राप्त किये हैं।

इस वर्ग के अधिकांश मशरूम शरीर के ऊर्जा स्तर को बढ़ाने के लिए माईट्रोकांड्रिया को सक्रिय करते हैं और कोशिकाओं व प्रतिवेदी कोशिकाओं को विकसित करते हैं जिससे शारीरिक प्रतिरोध क्षमता विकसित होती है। ये कोशिकाएं शरीर को संक्रमण से बचाती हैं इसीलिए एड्स जैसे घातक रोगों के निवारण के लिए औषधीय मशरूमों का प्रयोग किया जा रहा है क्योंकि इनमें अत्यधिक प्रोटीन, अमीनों अम्ल की मात्रा होती है। अब हमारे यहां भी इस प्रजाति पर शोध एवं अनुसंधान किये जा रहे हैं। भारतीय वन अनुसंधान परिषद, देहरादून के वैज्ञानिकों ने भी शैड समिति देहरादून के सहयोग से इस प्रजाति को प्रयोगशाला में कल्चर कर लिया है। डी.आर.डी.ओ. पिथौरागढ़ एवं पंत विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक संयुक्त रूप से इस परियोजना पर कार्य कर रहे हैं। औषधीय कवकों के उत्पादन के लिये उत्तराखंड राज्य और यहां की जलवायु अत्यन्त लाभकारी है। मध्य हिमालय क्षेत्रों में इस तरह की कई अन्य दिव्य औषधीय प्रजातियों पर वैज्ञानिक शोध एवं अनुसंधान अभी भी नहीं हुए हैं। इन दिव्य औषधीय प्रजातियों पर वैज्ञानिक अध्ययन से मंडराते संकटों को पकड़ने में मदद तो मिलेगी ही उन खतरों का भी मूल्यांकन होगा जिनसे यह प्रजातियाँ विलुप्त होने के कगार पर हैं।

कष्ट ही तो वह प्रेरक शक्ति है जो मनुष्य को कसौटी पर परखती है और आगे बढ़ाती है।

–वीर सावरकर

कृत्रिम अंग के डिजाइन के लिए चक्रीय व्यति सहसंबंध (circular cross correlation) तथा फेज लैग के अनुप्रयोग का अध्ययन (घुटने के कोण का आकलन)

दीपक जोशी, शोध छात्र एवं **प्रो. स्नेह आनंद**

जैव चिकित्सा अध्ययन केन्द्र

भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, दिल्ली

सारांश

यह पत्र व्यति सहसंबंध गुणांक (CCC-cross correlation cofficient) द्वारा घुटने के कोण का अनुमान एवं एकतरफा ट्रान्सफेमोरल कृत्रिम अंग के डिजाइन की विधि का अध्ययन प्रस्तुत करता है। यह चरण अंतराल जिस पर सर्वोच्च CCC परिकलित होता है, कोण को अनुमानित करने के लिए प्रयोग किया गया है। एक नमूना टी. परीक्षण इस विधि के लिए 95% सांख्यिकीय प्राचल (confidence interval) के साथ 4.9–7.9 डिग्री तक की त्रुटि दर्शाता है जो कि कृत्रिम अंग के डिजाइन के लिए स्वीकार्य है।

विशिष्ट शब्दः पार सहसंबंध गुणांक, एकतरफा ट्रान्सफेमोरल, एक नमूना टी. परीक्षण।

1.0 प्रस्तावना

क्रास सहसंबंध का प्रयोग बड़े पैमाने पर समन्वय आकलन, मांसपेशियों के सक्रियण तुल्यांकन और चाल विश्लेषण में संयुक्त युग्मन के लिए हुआ है। संयुक्त कोण पूर्वानुमान के लिए शोधकर्ताओं ने ज्यादातर तंत्रिका नेटवर्क का प्रयोग किया है। पार सहसंबंध का प्रयोग इस दिशा में अभी सीमित है। हालांकि चाल विश्लेषण में इसका प्रयोग काफी पुराने समय से किया जा रहा है। मानव गति एवं चलन निचले जोड़ों का जटिल समन्वय है, जो शैशव / बचपन के विकास के साथ शुरु होता है और धीरे–धीरे विकसित होता है।
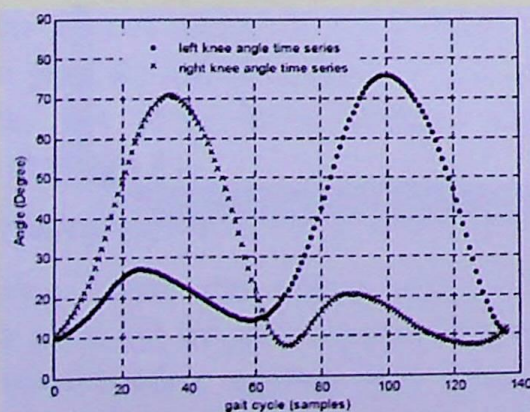
चित्र–1 : घुटने (दाँया व बाँया) के कोण का प्रोफाइल

पार सहसंबंध दो बिन्दुपथ के मिलान की तीव्रता की जानकारी देता है। चित्र–1 दोनों घुटने के बिन्दुपथ को दर्शाता है और दोनो बिन्दुपथ एक दूसरे से निर्दिष्ट समय अन्तराल में एक समान प्रतीत होते हैं। दोनों बिन्दुपथ का यह विशिष्ट गुण इस प्रस्तुत शोध में काम में लाया गया है।

2.0 डाटा (आँकड़ा) संकलन एवं विश्लेषण

इस नैदानिक प्रयोग में सोलह स्वस्थ वयस्क पुरुष, बिना किसी स्पष्ट स्नायविक कमियों के (22–27 वर्ष) ने स्वयं सेवकों के रूप में भाग लिया, सभी प्रतिभागियों ने लिखित अनुमति प्रदान की। डाटा एक 3D गति विश्लेषण प्रणाली में एकत्रित किया गया है। ईवा (EVA) 7.0 और आर्थोट्रेक (orthotrak) 6.2 तथा छह सीसीडी (CCD) कैमरे का प्रयोग किया गया है ; पच्चीस क्लीवलैंड मार्कर को शरीर पर लगाकर डाटा एकत्रित किया गया। सम्पूर्ण प्रयोग डिफेन्स इन्स्टीट्यूट ऑफ फीजियोलोजिकल एप्लाइड साइन्स (DIPAS) तिमारपुर, नई दिल्ली में किये गये हैं। रक्षा मंत्रालय की नीति की वजह से डाटा के दौरान खींची गई तस्वीरें प्रस्तुत नहीं की जा सकती हैं। पार संहसंबंध का अवकलन निम्नलिखित समीकरण को प्रयोग करके किया गया है।

$$C(K)=\sum_{K=1}^{N} a(n)*b(n=k)\mathrm{I}[norm(b)] \quad \text{.........(1)}$$

जहाँ b बिन्दुपथ k सैम्पल से स्थान्तरित किया गया है और norm बिन्दुपथ की यूक्लिडिन लम्बाई है।

त्रुटि विश्लेषण निम्नलिखित समीकरणों के प्रयोग से अवकलित किया गया है–

$$E=\left(\frac{1}{N}\right)*\sum\frac{N}{n=1}abc(e_n) \quad \text{..............(2)}$$

$$\sqrt{\frac{1}{N}\sum\frac{n}{i=1}} \quad Xi^2 \quad \text{..............(3)}$$

जहाँ N नमूनों की संख्या, Xi, e_n वास्तविक तथा अवकलित कोण के बीच का अन्तर है। समीकरण (2) औसत त्रुटि और समीकरण (3) आर. एम. एस. (root mean square) त्रुटि को दर्शाता है। समग्र त्रुटि अवकलित करने के लिए एक नमूना टी. परीक्षण किया गया है।
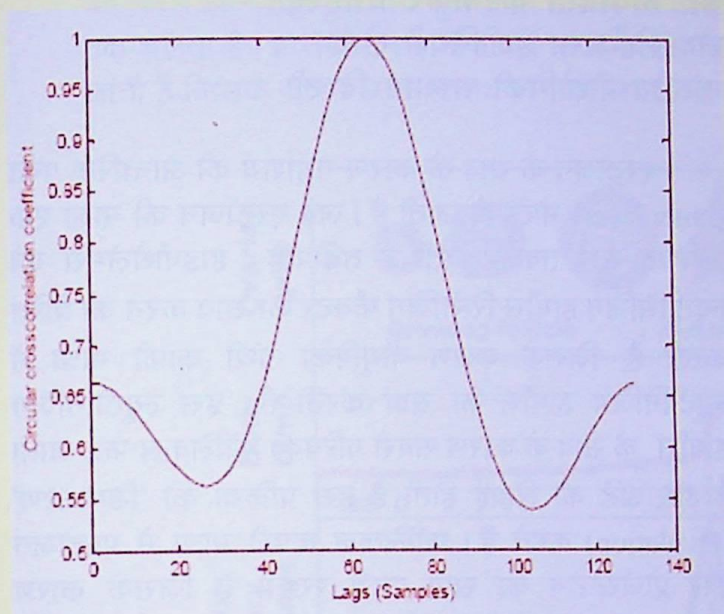
चित्र–2: दोनों घुटनों के बीच का परिपत्र सह संबंध गुणांक।

3.0 विवेचन व निष्कर्ष

चित्र–2 घुटनों के बीच अवकलित पार सहसंबंध को दर्शाता है जो कि समीकरण (1) को प्रयोग करके अवकलित किया गया है। चित्र–2 से स्पष्ट है कि सर्वोच्च CCC 91 नमूना यानि कि 0.76 सैकेण्ड के अंतराल पर होता है। इस चरण अंतराल को प्रयोग करके 95% सांख्यिकी प्राचल के साथ 4.9–7.9° तक की औसत त्रुटि तथा 6.2–9.6° तक की आर. एम. एस. त्रुटि अवकलित हुई। ये त्रुटि इमादी व अन्य (2004) द्वारा तंत्रिका नेटवर्क प्रयोग करके अवकलित त्रुटि के बराबर है जो कि पार सहसंबंध का इस दिशा में योग्य प्रदर्शन दिखाता है। परिणाम दिखाते हैं कि पार सहसंबंध और प्रचलित तकनीक सामान्य प्रतिगमन तंत्रिका नेटवर्क और के.एन.एन. (K-neural network) के समान यथार्थ है। इस शोध में सिर्फ मापन, घुटने कोण का प्रयोग किया गया है जो इस दिशा में एक उपलब्धि है। यह इस तकनीक की सार्थकता कम लागत के कृत्रिम अंगों के डिजाइन व निर्माण को सिद्ध करता है।

आभार– लेखक इस प्रयोग को सफलतापूर्वक संचालन में सहयोग करने के लिए तथा डाटा उपलब्ध एवं एकत्रित करने के लिए डॉ. सुरेश देवाश्याम, सी एम सी, वैल्लोर, डॉ. डी. मजूमदार, डिपास, न्यू दिल्ली तथा प्रयोगशाला सहयोगियों का आभार प्रकट करते हैं।

संदर्भ

1. कैलोऊ, एन.ई.टी.एल.; "एक जटिल संतुलन के अधिग्रहण के दौरान सहज पैटर्न का समन्वय,"; कनाडियन जर्नल ऑफ एक्सपैरिमेन्टल साइकोलॉजी; खण्ड 56, पृष्ठ संख्या 284–294।

मासिक धर्म चक्र, एन्डोमेट्रियम और संबंधित बीमारियां

बिकेश कुमार निराला, एवं
डॉ. निवेदिता करमाकर गोहिल,
जैव–चिकित्सा इंजीनियरी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

माहवारी या मासिक धर्म चक्र केवल महिलाएँ और कुछ करीबी Primate में पाई जाती है। यह एक catabolic प्रक्रिया है और यह अन्तःस्रावी तंत्र (Endocrine System) के द्वारा नियंत्रित होती है, इसमें मूलतः हाइपोथेलेमस (Hypothalmus), पीयूषिका ग्रंथी (Pituitary Glands), डिम्बग्रंथी (Ovary) और अर्न्तगर्भाशयकला (Endometrium) भाग लेते हैं। यह चक्र 9–13 साल के उम्र में शुरू होता है और 45–50 साल के उम्र तक चलता है। यह गर्भाशय और योनि के सफाई की एक प्रक्रिया है। यह चक्र महिलाओं के पूरे प्रजनन काल चलता है, केवल गर्भावस्था के समय बंद रहता है। इस चक्र का नियंत्रण कई सारे हॉर्मोन्स जैसे, ल्यूटीनीजिंग हार्मोन्स (Luteinizing hormones) फॉलिकल स्टिम्युलेटिंग हार्मोन (Follicle stimulating hormones), और महिला सेक्स हॉर्मोन एस्ट्रोजन एवं प्रोजेस्टेरोन (Estrogen and Progesterone) की आपसी क्रिया के द्वारा होता है (चित्र-1)। सामान्य मासिक धर्म चक्र 28 दिन का होता है परन्तु 21–35 दिन के अन्तराल को भी सामान्य माना जाता है जब तक कि यह चक्र अनियमित न हो। प्रजननकाल के शुरुआत और अंत में इस चक्र के अनियमित और अप्रत्याशित होने की संभावना ज्यादा होती है।

2.0 मासिक धर्म चक्र और उसका नियंत्रण

सामान्यतः मासिक धर्म चक्र अग्र पीयूषिका (Anterior pituitary) द्वारा स्रवित गोनेडोट्रोफिन (Gonadotrophin) हार्मोन द्वारा नियंत्रित होता है। हाइपोथेलेमस, गोनेडोट्रोफिन रिलीजिंग हार्मोस (Hypothalamus, Gonadotrophin releasing hormones) (GnRH) का स्राव करती है जो अग्र पीयूषिका को फॉलिकल स्टिम्यूलेशॅन हार्मोन्स और ल्यूटीनिजिंग हार्मोन्स के उत्पादन और स्राव को प्रेरित करती है। ये दोनो हॉर्मोन FSH और LH डिम्बग्रंथी (ovary) को लक्ष्य करती है और फॉलिकल (Follicles) को परिपक्व बनाती है, परिपक्व फॉलिकल एक दूसरा हॉर्मोन एस्ट्रोजन का स्राव करती है। फॉलिकल लगभग सात दिनों तक परिपक्व होता है और ज्यादा से ज्यादा एस्ट्रोजन हार्मोस का स्राव रक्त प्रवाह में करती है।

एस्ट्रोजन के स्राव के कारण गर्भाशय की आन्तरिक परत (inner layer) मोटी हो जाती है। जब एस्ट्रोजन की मात्रा एक निश्चित स्तर तक पहुंचती है तब यह हाइपोथेलेमस को ल्यूटीसिजिंग हार्मोस रिलीजिंग फैक्टर का स्राव करने को प्रेरित करती है, जिसके कारण पीयूषिका ग्रंथी काफी मात्रा में ल्यूटीनिजिंग हार्मोस का स्राव करती है। इस ल्यूटीनिजिंग हार्मोस के स्राव के कारण सबसे परिपक्व फॉलिकल फट जाता है और अंडे की रिहाई होती है इस प्रक्रिया को 'डिम्बक्षरण' (Ovulation) कहते हैं। फॉलिकल काफी मात्रा में एस्ट्रोजन और प्रोजेस्टेरोन का स्राव जारी रखती है जिसके कारण अर्न्तगर्भाशयकला की आन्तरिक परत और मोटी हो जाती है। जब स्रावित हॉर्मोन का स्तर एक निश्चित स्तर तक पहुंच जाता है तो हाइपोथेलेमस GnRH का स्राव बंद कर देती है, जिसके कारण अग्र पीयूषिका भी FSH और LH का निर्माण और स्राव बंद कर देती है और फिर चक्र बंद हो जाता है। तत्पश्चात दूसरा चक्र हाइपोथेलेमस द्वारा GnRH के स्राव के बाद शुरू होता है।

2.1 मासिक धर्म चक्र के चार चरण

मासिक धर्म चक्र को चार चरणों में अलग–अलग भागों में बाँटा जाता है: (चित्र-1)

- **प्रफली चरण** (Proliferative phase)

  यह चरण करीब 14 दिन का होता है। इसमें अन्तर्गभाशयकला की मोटाई बहुत कम होती है जो रजोधर्म चक्र (menstrual cycle) में तन्तु हानि (tissue loss) पर आधारित होती है और धीरे–धीरे इसकी मोटाई बढ़ती जाती है। एस्ट्रोजन का स्तर काफी अधिक होता है।

- **डिम्बका चरण** (Ovulatory phase)

  यह चरण करीब 16–32 घंटे तक रहता है। इस चरण में

ल्युटिनिजिंग हार्मोस का स्तर काफी अधिक होता है, जिसके कारण एक परिपक्व फॉलिकल फट जाता है और अंडे का उत्सर्जन होता है। अन्तर्गभाशयकला की मोटाई में कोई परिवर्तन नहीं होता है।

- **स्रावी चरण** (Secretory phase)

  यह चरण डिम्बक्षरण के बाद शुरू होता है और 14 दिनों तक चलता है। प्रोजेस्टेरोन हार्मोन की मात्रा काफी बढ़ जाती है जिसके कारण अन्तर्गभाशयकला की मोटाई भी काफी बढ़ जती है।

- **रजोधर्म चरण** (Menstrual Phase)

  इस चरण में गर्भाशय का आंतरिक अस्तर पूरी तरह से बह जाता है। यह चरण लगभग 4–7 दिनों तक चलता है।

3.0 मासिक धर्म चक्र और बीमारियाँ :-

मासिक धर्म से संबंधित कुछ सामान्य बीमारियाँ तालिका–1 में दी गई हैं–:
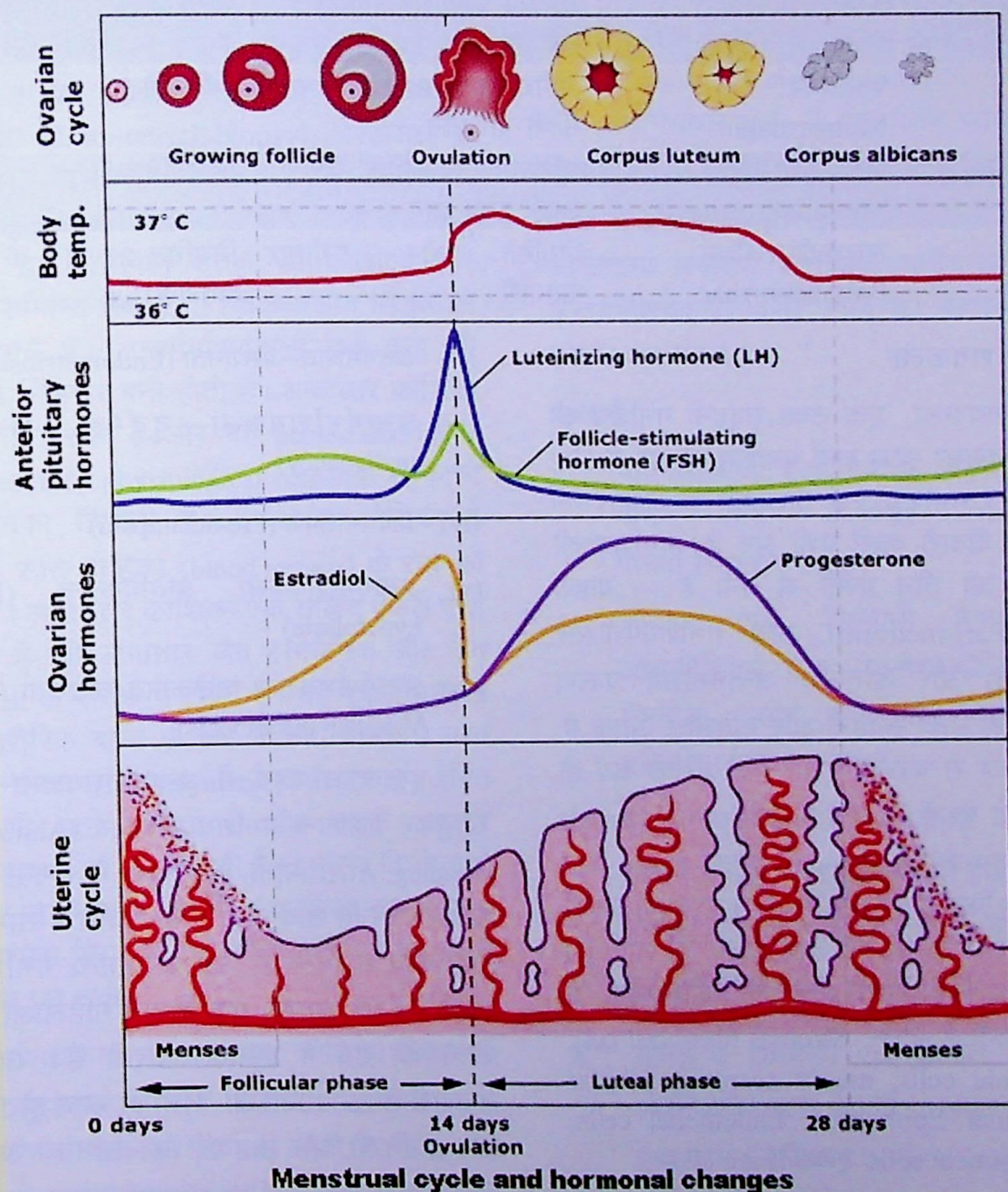
चित्र–1 रजोधर्म चक्र एवं हार्मोन्स में परिवर्तन

तालिका–1 मासिक धर्म चक्र की प्रकृति व बीमारियाँ

क्र.सं.	बीमारियाँ	परिभाषा	रक्त स्राव का पैटर्न
1	दीर्घचक्री रजोधर्म Oligomenorrhae	कम मात्रा में रक्त का स्राव होना	36–40 दिन के अन्तराल में
2.	अन्तः रजोधर्म रक्त स्राव Intermenstrual bleeding	अवधि के बीच में रक्त का स्राव होना	दो सामान्य अवधि के बीच में रक्त का स्राव
3.	अत्यार्वत Menorrhagia	अत्यधिक (>80 ml/चक्र) या लंबे समय (> 7 दिन) तक स्राव	नियमित अंतराल में होता है।
4.	रक्तप्रदर Metrorrhagia	अनियमित अंतराल और मात्रा में भी परिवर्तन	अनियमित
5.	अत्य रक्त प्रदर Menometrorrhagia	अनियमित, अत्यधिक और काफी लंबा स्राव	अनियमित
6.	लघुचक्री रजोधर्म Polymenorrhae	नियमित और लगातार माहवारी	नियमित 21 दिन के अंतराल पर

3.1 अन्तर्गर्भाशयकला

अन्तर्गर्भाशयकला एक उच्च संवहनी गर्भाशय की भीतरी परत है, इसका मुख्य कार्य गर्भाशय को गर्भ के लिए तैयार करना है। गर्भाशय एक नाशपाती के आकार की खोखली, मोटी दीवारों वाली पेशी अंग है। गर्भाशय की दीवार उतकों की तीन परतों से बनी है :– बाहरी परिगर्भाशय (Peri-metrium), मध्य गर्भाशयपेशीस्तर (myometrium) और आंतरिक अर्न्तगर्भाशय कला। अर्न्तगर्भाशयकला उच्च संवहनी और गतिशील ऊतक है, यह नियमित रूप से बढ़ता है और फिर इसका क्षय हो जाता है। यह दो परतों की बनी होती है, आधार (Basal) परत और क्रियात्मक (functional) परत। आधार परत माहवारी के बाद फिर से अन्तर्गर्भाशयकला परत को बनाती है और क्रियात्मक परत का पूरी तरह से क्षय हो जाता है। अन्तर्गर्भाशयकला कई सारी तरह की कोशिकाओं से मिलकर बनी होती है जैसे– Stromal fibroblast cell, Smooth muscle cells, mucus secreting tubular gland, columnar Epithelium, Endothelial cells, Immune component cells इत्यादि।

3.2 अन्तर्गर्भाशय कला संबंधित बीमारियाँ

(I) असामान्य गर्भाशय रक्तस्राव (Abnormal Uterine Bleeding)

(ii) अंतर्गर्भाशय–अस्थानता (Endometriosis)

(iii) अन्तर्गर्भाशयकला दुर्दमता (Endometrial malignancy)

(iv) प्राक्गर्भाक्षेपक (Pre-eclampsia)

(v) अन्तर्गर्भाशयकला अतिविकसन (Endometrial hyperplasia)

(vi) अन्तर्गर्भाशयकला वाहिकामय घनास्रता (Endometrial Vascular thrombosis)

इस शोध कार्य में अन्तर्गर्भाशयकला का अध्ययन खासकर असामान्य गर्भाशय रक्तस्राव (Abnormal uterine bleeding, AUB) रोगी के सापेक्ष में करना है। कोई भी असामान्य रक्त स्राव मात्रा में या अवधि में सामान्य माहवारी रक्त स्राव से भिन्न हो उसे असामान्य गर्भाशय रक्तस्राव कहते हैं। यह लगभग एक तिहाई महिलाओं में बच्चे पैदा करने की उम्र में प्रभावित करती है। सामान्यतः एक माहवारी में 25–70 मि.ली. खून का स्राव होता है, औसतन 35–40 मि.ली. और माहवारी का सामान्य अवधि 28 ± 7 दिन होता है। यदि कोई भी माहवारी इस स्तर से अधिक या कम होता है या फिर ज्यादा या कम समय में होता है तो उसे असामान्य गर्भाशय रक्तस्राव कहते हैं।

4.0 उपचार के लिए अनुसंधान कार्य

उपचार उम्र, भावनात्मक और सामाजिक पृष्ठभूमि के आधार पर किया जाता है। हार्मोनल उपचार AUB मरीजों के लिए सबसे आम उपचार है।

माहवारी से संबंधित रोग महिलाओं के कार्यक्षेत्र, घर, सेक्स जीवन सब को प्रभावित करती है। पिछले कुछ दशकों में वैज्ञानिकों ने इन रोगों के पीछे अंतर्निहित कारणों का पता लगाने की कोशिश की है। इन बीमारियों में अन्तर्गर्भाशयकला आकारिकी (Endometrial morphology) और क्रिया में काफी विषमता पाई गई है। अन्तर्गर्भाशयकला को समझने के लिए अन्तर्गर्भाशयकला जैवऊति परीक्षा (Enometrial biopsy), अल्ट्रासाउण्ड (ultrasound) गर्भाशय स्राव का परीक्षण, (Histopathological) अध्ययन आदि किया जाता है। परन्तु ये तकनीकें इस गतिमान उत्तक की कोशिका स्तर गतिविधि को सामान्य स्थिति या चिकित्सकीय स्थिति को नहीं बतला पाते हैं। अन्तर्गर्भाशयकला कई तरह की कोशिकाओं से मिलकर बनी होती है। अन्तःस्तर कोशिका रक्त वाहिका का स्तर है और यह hemostasis, blood vessel permeability physiological response में काफी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। अन्तःस्तर कोशिका में असामान्यताएँ रक्त वाहिका (blood vessels) के रोग को बढ़ावा देता है। अन्तःस्तर कोशिका एक सक्रिय एकल परत (monolayer) है जो लगातार जैव रसायनिक और जैव यांत्रिक stimuli के संपर्क में रहती है। यह एकल परत न सिर्फ एक शारीरिक बाधा के रूप में कार्य करती है वरन यह हेमोडायनेमिक (hemodynamic) और रक्त जनित संकेतों का भी पता लगाती है और उसके अनुसार Vasoactive पदार्थों का स्राव करती है। इन सब विशेषताओं को देखते हुए लेखकगण अन्तःस्तर कोशिका का अध्ययन कर रहे हैं जिससे कि इससे संबंधित बीमारियों को अच्छी तरह से समझा जा सके।

अन्तर्गर्भाशयकला से अन्तःस्तर कोशिका निकालना एक बहुत ही मुश्किल काम है, क्योंकि अन्तर्गर्भाशयकला बहुत तरह की कोशिकाओं से बनी होती है। हम लोग अन्तर्गर्भाशय से अन्तःस्तर कोशिका को अलग करने की और उनकी गुणीपहचान (characterization) करने की एक तकनीक विकसित कर रहे हैं। अन्तःस्तर कोशिका पृथक्करण का सिद्धांत आर्कषण बंधन (Affinity binding) पर आधारित है। अन्तःस्तर कोशिका अपने विशेष गुण के कारण लेक्टिन (Lectin) के अणुओं से जुड़ जाती है और इसका उपयोग हम लोग अन्तःस्तर कोशिका को बाकी कोशिका से अलग करने में करते हैं। हम लोग इनविट्रो कल्चर तंत्र (in-vitro culture system) भी विकसित कर रहे हैं, जिससे कि कोशिका के अंदर होने वाले जैव आण्विक परिवर्तन (Biomolecular changes), आण्विक संकेत घटनाओं (molecular signal events) का अध्ययन कर सकें और अन्तर्गर्भाशयकला व अन्तःस्तर कोशिका के शरीर विज्ञान (physiology) और जैवयांत्रिकी (biomechanic) को अच्छे से समझ सकें और इससे संबंधित बीमारियों जैसे कि आसामान्य गर्भाशय रक्तस्राव, अर्न्तगर्भाशय–अस्थानता, अन्तर्गर्भाशयकला कैंसर आदि का बेहतर रोकथाम और इलाज कर सकेंगे।

सन्दर्भ

1. ग्यानोकोलॉजी इल्यूस्ट्रेटिड; डेविड मैकी हार्ट,जने नॉर्मन, रोबिन कैलेण्डर, लान रामसदीन;, पांचवाँ संस्करण, 2000।
2. बोनसन ऐन्ड पीरनोल्स हैण्ड बुक ऑफ ऑब्सटिट्रिक्स ऐन्ड ग्यानोकोलॉजि; मार्टिन एस. पीरनोल; दसवां संस्करण; मैक्ग्रॉहिल मेडिकल पब्लिशिंग डिविजन, 2001।
3. निकिटेनको एल एल, मेकेन्जी IZ , रीज mcp ऐन्ड बिकनील आर. एडरिनोमिडुलिन इज एन ऑटोसरीन रेग्युलेटर ऑफ एन्डोथिलियल ग्रोथ इन ह्यूमन एन्डोमिट्रियम मुलैक हम रिप 2000; 6:811–9।
4. रोजस ए, फिग्युराव एच; री एल, मोरालिस MA; ऑक्सीडेटिव स्ट्रेस ऐट दि वास्क्युलर वॉल मशीनिस्ट ऐन्ड फार्माक्लोजिकल एस्पेक्ट्स आर्च मेड रेज; 2006; 37; 436-48।

भारत में मलेरिया नियंत्रण का परिदृश्य

प्रो. वी.पी. शर्मा,
नासी–मेघनाद साहा प्रतिष्ठित फेलों,
ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र
भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान दिल्ली

1.0 प्रस्तावना

भारत में मलेरिया एक अति प्राचीन रोग के रूप में व्याप्त रहा है। राष्ट्रीय मलेरिया उन्मूलन कार्यक्रम एन.एम.ई.पी. (NMEP) के अन्तर्गत डी.डी.टी. के छिड़काव से देश के तीन चौथाई भू-भाग से मलेरिया का उन्मूलन सम्भव हुआ परन्तु 1960 के दशक में कीटनाशकों की कमी एवं प्रचालन की बाध्यताओं के कारण एन.एम.ई.पी. को एक बड़ा झटका सहना पड़ा। रोगवाहकों में प्रतिरोधकता के कारण डी.डी.टी. की चमत्कारिक शक्ति में कमी आई तथा परिवर्तित कीटनाशकों के प्रभावक स्वरूप का सूक्ष्म आयाम ही मिल पाया। मलेरिया उन्मूलन को संशोधित, एम.पी.ओ. (M.P.O.) योजना के अन्तर्गत नियंत्रण के स्वरूप में बदल दिया गया और इसका प्रारम्भ 1977 में हुआ। एम.पी.ओ. (M.P.O.) के माध्यम से देश में मलेरिया के सम्पूर्ण संख्या में तो कमी आई परन्तु बहुतायत में यह कमी वास्तव में प्लाज्मोंडियम वायवेक्स (Plasmodium vivax) (रिलैप्स प्रकार) के कारण आयी। पी. फैल्सीपेरम (P. falciparum) [घातक परजीवी] तो अपने उसी स्तर पर रहा और इसका प्रतिशत धीरे-धीरे 15 से 50 प्रतिशत तक पहुंच गया। पी. फैल्सीपेरम (P. falciparum) ने एकल और बहु औषधीय प्रतिरोधक स्वरूप को भी विकसित कर लिया। यह परजीवी सम्पूर्ण देश में अलग-अलग अनुपात में पाया जाता है तथा उच्च मलेरिया बाहुल्य क्षेत्र में तो यह एक प्रभावी संक्रमण के रूप में भी मिलता है। राष्ट्रीय रोगवाहक जनित रोग नियंत्रण कार्यक्रम (N.V.V.D.C.P.) पूर्व में एन.एम.ई.पी., के माध्यम से 1.6 से 2.0 मिलियन (दशलक्ष) रोगी और लगभग 1000 मलेरिया रोगी की मृत्यु दो दशकों से रिपोर्ट की जाती रही है। विभिन्न अन्तराल पर एन.एम.ई.पी. के गहराई से किए गए मूल्यांकन में यह तथ्य दृष्टिगोचर हुआ कि मलेरिया संक्रमण के आंकड़ों को निम्न सीमा ही दी जा रही है! वर्तमान मलेरिया स्थिति का स्वरूप और नियंत्रण परिदृश्य का विवरण इस लेख में प्रस्तुत है।

2.0 मलेरिया स्थिति तथा मुख्य कारण

एक आकलनानुसार 1 बिलियन (एक अरब) भारत की जनसंख्या मलेरिया के जोखिम पर है। वास्तविक मलेरिया प्रभाव का चित्रण आज भी छिपा हुआ है क्योंकि मलेरिया निगरानी तंत्र पूर्णतया अनुपलब्ध है। उदाहरण के लिए भारत में मलेरिया की उच्च संख्या गर्भवती महिलाओं में पाई जाती थी। एक वर्तमान अध्ययन के अनुसार मलेरिया से 2,00,000 मृत्यु का आकलन प्रतिवर्ष किया गया है। मलेरिया महामारी का स्वरूप एक नियमित लक्षण के रूप में कार्यक्रम का भाग सा हो गया तथा वार्षिक रूप में यह महामारी मलेरिया स्थानिक राज्यों में मिलती रही है। N.V.V.D.C.P. भी मलेरिया के आंकड़ों में आयु एवं लिंग अनुसार रोगियों का उल्लेख अंकित नहीं करता है। इस प्रकार विगत अनेक वर्षो से गर्भावस्था में मलेरिया का चित्रण रहस्यमय एवं छिपी हुई अवस्था में ही मिलता रहा है तथा वर्तमान में यह एक महत्वपूर्ण विषय है।

मलेरिया रोगियों की वास्तविक संख्या का आकलन मलेरिया नियंत्रण की वैज्ञानिक स्तर पर योजना हेतु आवश्यक है। इस सूचना के अभाव में दीर्घकालिक मलेरिया नियंत्रण केवल दिवास्वप्न समान है। मलेरिया का प्रकोप समाज के गरीब जनसंख्या में अधिक है। मलेरिया के उपचार का लागत खर्च प्राइवेट सेक्टर में अधिक है तथा रोगी को चिकित्सालय में भर्ती करने का खर्च तो सीमा से परे है। जिस देश की 26 प्रतिशत जनसंख्या गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करती है वहां पर इसके उपचार का खर्च उठा पाना दुरूह है। पी. फैल्सीपेरम (P. falciparum) अधिक घातक परजीवी है तथा मलेरिया से होने वाली प्रत्येक मृत्यु हेतु भी उत्तरदायी है। दुर्भाग्यवश पी. फैल्सीपेरम में सामान्य मलेरिया रोधी औषधियों के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न होने के कारण इसके निदान मे काफी समस्याए आ रही है एवं उपचार जटिल होते जा रहे हैं। क्लोरोक्वीन (chloroquine) की प्रतिरोधकता का प्रथम दृष्टान्त 1973 में आसाम के कर्वी आगँलाग में पाया गया।

धीरे-धीरे इसका विस्तार होता गया और सम्पूर्ण देश में यह प्रसारित हुआ। उन क्षेत्रों में जहां पर उच्च कोटि की औषधि प्रतिरोधकता मिलती है वहां पर राष्ट्रीय औषधि नीति में परिवर्तन करते हुए क्लोरोक्वीन से सल्फाडाक्सीन (sulfadoxine), पायरीमेथामीन (pyrimethamine), एस.पी. (s.p.) को प्रथम स्तर की औषधि के रूप में मान्यता दी गयी। अन्य मलेरिया रोधी औषधियों के प्रति भी प्रतिरोधकता का विकास हुआ जैसे अमोडियाक्वीन (amodiaquine), मेफ्लाक्वीन (mefloquine) और कुनैन (quinine), परन्तु इनका वितरण सीमित है। सौभाग्यवश हस्तक्षेप के इस काल में आर्टिमिसीनीन (artimisinine), जो कि चीनी शाक

(हर्ब) है, इसकी भी खोज की गयी तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्लू.एच.ओ.) के संरक्षण मे इसका विकास एक प्रमुख मलेरिया रोधी औषधि के रूप में हुआ। विश्व स्वास्थ्य संगठन (W.H.O.) की संस्तुति अनुसार समस्त पी. फैल्सीपेरम संक्रमण के उपचार में आर्टिमिसीनीन (artimisinine) आधारित संयुक्त थिरेपी (A.C.T.) का प्रयोग किया जाना है।

भारत में अल्फा, बीटा आर्टिथीथर, जिसको आर्टिमिसिया एनुआ से प्राप्त किया जाता है और इसका विकास सी.डी.आर.आई./सिमैप के द्वारा किया गया और विभिन्न क्षेत्रों में प्रायोगिक परीक्षण एन.आई.एम.आर. (NIMR) के सहयोग से किया गया है। यह जीवन रक्षा करने वाली औषधि है और मलेरिया स्थानिक राज्यों में सम्पूर्ण विश्व से आयतित की जाती है। पी. वायवेक्स के प्रति भी कुछ रोगियों में क्लोरोक्वीन के प्रति प्रतिरोधकता उत्पन्न हुई है और इन रोगियों को (A.C.T.) अथवा कुनैन से ही उपचारित किया जाना चाहिये। अब चूंकि प्रतिरोधकता की समस्याएं बढती जा रही है इसलिये रोगग्रस्तता के काल वृद्धि के दृष्टान्त प्रकट हो रहे है तथा अन्य जटिलतायें भी उत्पन्न हो रही है जिसमें विशेष रूप से वृक्क का अक्रियाशील होना प्रमुख है। जब तक मलेरिया को प्रभावी ढंग से दीर्घकालिक रूप में अवरोधित नही किया जा सकेगा तब तक औषधि प्रतिरोधकता के क्रम को परिवर्तित कर पाना कठिन होगा।

विगत चार दशकों में मलेरिया ने नवीन पारिस्थितिकी 'निच' (niche) में प्रवेश किया है। इसके लिए स्थिति अनुसार विशिष्ट नियंत्रण की रणनीति की आवश्यकता होगी तथा घरों के अंदर अवक्षेपी कीटनाशक छिड़काव (I.R.S.) से अकेले नियंत्रण सम्भव न होगा।

रोगवाहकों के द्वारा नवीन मलेरिया 'इकोटाइप्स' का उदय और इसके भौगोलिक विस्तार की सीमाओं का फैलाव भी होता जा रहा है। इसके कुछ उदाहरण तालिका-1 में दिए गए हैं। सिंचित मलेरिया (ऐना. क्यूलिसिफेसीज, ऐना. फ्लूवायटिलिस) नगरीय मलेरिया (ऐना. स्टीफेसाई और ऐना. क्यूलिसिफेसीज), वनीय मलेरिया (ऐना. डायरस) जो कि घने जंगलों में मिलते है तथा (ऐना. क्यूलिसिफेलीज, मैदानी भागों में) वनीय सीमान्त (फ्रिंज) मलेरिया (ऐना. मिनिमस और ऐना. फ्लूवायटिलिस) जो कि परिधीय एवं उजड़े (डिग्रेडेड) जंगलों में जिनमें जल धाराएं पायी जाती हैं) वहां मिलता है। औद्योगिक मलेरिया (ऐना. स्टीफेसाई और ऐना. क्यूलिसिफेसीज) सीमावर्ती मलेरिया, अन्तर्राष्ट्रीय सीमाओं पर (ऐना. डायरस, ऐना. मिनिमस ऐना. फ्लूवायटिलिस) तथा विभिन्न राज्यों की सीमाओं पर मलेरिया (ऐना. क्यूलिसिफेसीज), तटवर्ती मलेरिया (ऐना. सण्डाइकस) तथा प्रवजक (माइग्रेशन) मलेरिया जो कि सभी इकोटाइप्स को पार करने के उपरान्त मलेरिया पारेषण के माध्यम से महामारी तथा आउटब्रेक हेतु उत्तरदायी है।

तालिका 1: विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में मच्छर प्रजातियाँ

क्र.सं.	मलेरिया के प्रकार	उदाहरण
1	सिचित मलेरिया	ऐना. क्यूलिसिफेसीज *(An. Culicifacies)*, ऐना. फ्लूवायटिलिस (An. fluviatilis)
2	नगरीय मलेरिया	ऐना. स्टीफेसाई *(An. stephensi)* और ऐना क्यूलिसिफेसीज *(An. Culicifacies)*
3	वनीय मलेरिया	ऐना. डायरस *(An. dirus)*
4	मैदानी मलेरिया	ऐना. क्यूलिसिफेलीज *(An. Culicifacies)*
5.	वनीय सीमान्त मलेरिया	ऐना. मिनिमस *(An. minimus)* और ऐना. फ्लूवायटिलिस (An. fluviatilis)
6.	औद्योगिक मलेरिया	ऐना. स्टीफेसाई *(An. stephensi)* और ऐना. क्यूलिसिफेसीज *(An. Culicifacies)*
7.	सीमावर्ती मलेरिया	ऐना. डायरस *(An. dirus)*, ऐना. मिनिमस *(An. minimus)*, ऐना. फ्लूवायटिलिस (An. fluviatilis)
8.	तटवर्ती मलेरिया	ऐना. क्यूलिसिफेसीज *(An. Culicifacies)*
9.	प्रवजक मलेरिया	ऐना. सण्डाइकस *(An. sundaicus)*

सम्पूर्ण देश में इसके अनेक प्रमाण मौजूद उपलब्ध है कि आर्थिक क्षेत्र के विभिन्न समूहों में विकास युक्त गतिविधियों के कारण ही मलेरिया का प्रकोप हुआ। यद्यपि ये सारे विकास के कार्य राष्ट्रीय विकास के लिए भी आवश्यक हैं जिनसे खाद्य, आवास, गमन तथा आर्थिक विकास (राष्ट्रीय जी.डी.पी. में वृद्धि) की पूर्ति होती है परन्तु वह विकास जो पर्यावरण को नुकसान पहुँचाता हो उसका परिणाम मानव निर्मित मलेरिया ही होगा। यदि स्वास्थ्य प्रभाव मूल्याँकन तथा प्रतिविधिक (remedial) विधियों को विकास वाले प्रोजेक्ट्स के प्रारम्भ होने के पूर्व सम्मिलित कर लिया जाए तो अनेक दुःखदायी एवं खतरनाक स्थितियों से बचा जा सकता है। इन उदाहरणों में उन प्रतिविधिक विधियों का समावेश है जो कि कोंकण रेलवे प्रोजेक्ट्स (मुम्बई से गोवा) के निर्माण के समय किए गए हैं।

विगत पांच दशकों में मलेरिया ने इन नये, इकोटाइप्स में अपने को स्थापित किया है। उदाहरणार्थ - भारत में सिंचित क्षेत्र में वृद्धि 28 मी. हेक्टेयर से 95 मी. हेक्टेयर तथा इसके आगे वृद्धि 130 मी. हेक्टेयर तक पाई गई। सिंचाई के माध्यम से मलेरिया रोगवाहकों के जनन के असंख्य अवसर भी प्राप्त हुए। ऐना. क्यूलिसिफेसीज, जो सिंचित जल स्थानों पर बहुतायत में जनन करता है और जहां भी सिंचाई के कारण मलेरिया की घटनाओं में वृद्धि हुई तो वह कई गुना हुई।

फसलों को हानिकारक कीटों के बचाव हेतु कीटनाशकों के छिड़काव का परिणाम मलेरिया रोगवाहक ऐना. क्यूलिसिफेसीज में मैलाथियान (malathion) के प्रति प्रतिरोधकता आन्ध्र प्रदेश एवं गुजरात में स्पष्ट रूप से उजागर हुई। यह क्षेत्र अब संश्लेषित पाइरीथ्रॉयड के छिड़काव से आच्छादित है। ऐना. स्टीफेसाई स्वच्छ जल में जनन करने के कारण नए क्षेत्रों में भी फेल रहा है तथा कस्बों में भी इसकी वृद्धि हो रही है। कस्बों में भवन निर्माण की गतिविधियों के कारण मलेरिया स्थानिक राज्यों से श्रमिक वहाँ से आते है जिसके द्वारा मलेरिया तथा पी. फैल्सीपेरम के नए स्ट्रेन्स (strains) का अभ्युदय, परिणामस्वरूप मलेरिया आउटब्रेक होता है। कस्बों की तरफ प्रवजन अधिक होने के कारण यह प्रवजन परिधीय नगरीय आवासों में मलेरिया संक्रमण के उचित अवसर भी प्रदान करता है और ये क्षेत्र मलेरिया बाहुल्य के रूप में विकसित होते हैं। ये परिधीय नगरीय क्षेत्र अब लगभग 30-40 प्रतिशत जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। खतरनाक एवं जानलेवा रोगों के रोगवाहक (मलेरिया एवं डेंगू ज्वर) जो ऐना. क्यूलिसिफेसीज, ऐना. स्टीफेसाई और ऐडीज एजेप्टाई (Aedes aegypti) है, जो कि अनेक अन्य निवास स्थानों पर भी जनन करते है तथा मलेरिया एवं डी.एफ. (D.F.) पारेशण के अनुरक्षण को प्रदान करते है। तराई की हरित क्रान्ति ने उस क्षेत्र की पारिस्थितिकी को भी परिवर्तित किया है। इसका परिणाम मलेरिया रोगवाहकों का पारिस्थितिकी अनुक्रमण (Succession) फलस्वरूप स्थायी मलेरिया स्थितियों को अस्थाई मलेरिया में परिवर्तित कर दिया। वनों के औद्योगिकीकरण तथा कृषि भूमि ने ऐना. क्यूलिसिफेसीज तथा ऐना. स्टीफेसाई के सतत वृद्धि के लिए अनेक अवसर प्रदान किए। इन रोगवाहकों की प्रविष्टि से मलेरिया उन क्षेत्रों में प्रवेश कर गया जो क्षेत्र मलेरिया से मुक्त थे। मलेरिया आउटब्रेक/महामारी उन क्षेत्रों में अधिक मिलती है जो क्षेत्र खनन, जलाशयों के निर्माण, वनों के विनाश एवं कटाई वाले क्षेत्र से सम्बंधित है और जहाँ अनुक्रमण रोगवाहकों का अधिक होता है तथा रेल व सड़क निर्माण की गतिविधियां निरन्तर चलती रहती हैं। मलेरिया स्थानिक क्षेत्र गरीबी से आक्रान्त वाले क्षेत्र हैं।

मलेरिया से रक्ताल्पता, बच्चों एवं गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य पर दुष्प्रभाव, इसका परिणाम कम भार वाले बच्चों का जन्म जो कि बच्चों में संज्ञानात्मक (cognitive) विकास को भी प्रभावित करता है। मलेरिया, कृषि एवं आर्थिक विकास को अवरुद्ध करता है तथा मलेरिया अकेला गरीबी एवं भुखमरी का अतिमहत्वपूर्ण कारण है।

3.0 मलेरिया नियंत्रण रणनीति

एन.वी.वी.डी.सी.पी. (N.V.V.D.C.P.) राज्यों एवं नगरीय क्षेत्रों में मलेरिया नियंत्रण को दिशा निर्देश प्रदान करता है। ग्रामीण मलेरिया नियंत्रण का आधार घरों के अन्दर अवक्षेपी कीटनाशक छिड़काव आई.आर.एस. (I.R.S.) जो कि डी.डी.टी. मैलाथियान और संश्लेषित पाइरीथ्रायड के द्वारा किया जाता है। चार से पांच दशक तक छिड़काव ने रोगवाहकों की जनसंख्या में बहु-कीटनाशक प्रतिरोधकता विकसित की है। कुछ रोगवाहक कीटनाशकों के प्रति सुमेद्य तो है परन्तु बाह्यविश्रामी (exophilic) और अपने अन्तःभोजी (endophagy) व्यवहार के कारण छिडकाव वाली दीवार पर ये मच्छर नही बैठते है अर्थात परिवर्जन (avoidance) को व्यक्त करते है। डी.डी.टी. का प्रयोग सीमान्तर्गत है(अधिकतम 10000 मी.टन प्रतिवर्ष है)। इसका कारण पर्यावरणीय तथा मानव स्वास्थ्य पर प्रतिकूलता है। ए.सी.एच. (A.C.H.) को प्रतिबंधित किया जा चुका है। मैलाथियान की तीक्ष्ण गन्ध के कारण लोगों के द्वारा छिड़काव की अनिच्छा व्यक्त की जाती है। संश्लेषित पाइरीथ्रायड (डेल्ट्रामेथ्रिन, साइफ्लूथ्रिन, डेल्ट्रासाइहैलोथ्रीन) का छिडकाव चयनात्मक रूप में मलेरिया के महामारी नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है। कोई दूसरा कीटनाशक आई.आर.एस. (I.R.S.) के लिए उपलब्ध नहीं है। रोगवाहकों के नियंत्रण को सुदृढ़ीकृत किया जा सकता है, अगर गुप्पी और गेम्बुसिया मछलियों का प्रयोग किया जाय। इसके अतिरिक्त कीटनाशक संशिक्त मच्छरदानी आई.टी.एन. (I.T.N.) को भी कुछ क्षेत्रों में प्रयुक्त किया गया जिनसे मानव मच्छर सम्पर्क में कमी हो सके।

नगरीय क्षेत्रों में मलेरिया नियंत्रण का आधार मच्छर जनन स्रोतों में कमी करना है, लार्वानाशक का छिड़काव टेमीफास/फेनिथयान अथवा बायोलार्वीसाइडस (बैसिलस थिरुनजिनासिस अथवा बैसिलस स्फेरीकस) गेम्बुसिया एवं गुप्पी मछलियों का प्रयोग, विधायी विधियों के द्वारा तथा आई.आर.एस. का परिधीय-नगरीय आवासों में छिडकाव है। रोग की पहचान के लिये सक्रिय एवं निष्क्रिय निगरानी तंत्र ग्रामीण क्षेत्रों में तथा निष्क्रिय निगरानी तंत्र नगरीय क्षेत्रों में उपलब्ध है। मलेरिया का उपचार एन.वी.वी.डी.सी.पी. की राष्ट्रीय मलेरिया रोधी औषधि नीति पर

आधारित है तथा मलेरिया के जटिल रोगी चिकित्सालयों में उपचारित किए जाते है। मलेरिया नियंत्रण का कार्य राज्य सरकारों के द्वारा किया जाता है। स्वास्थ्य मंत्रालय, भारत सरकार, एन.वी.वी.डी.सी.पी. के माध्यम से तकनीकी सहायता तथा 100 प्रतिशत का आर्थिक सहयोग पूर्वोत्तर के राज्यों के लिए तथा मलेरिया नियंत्रण के लिये अन्य राज्यों में 50 : 50 प्रतिशत आधारित आर्थिक व्यवस्था कार्यरत है।

4.0 मलेरिया निदान

मलेरिया निदान का आधार रक्तपट्टिका (स्मीयर) परीक्षण पर आधारित है जिसके द्वारा मलेरिया परजीवी की पहचान माइक्रोस्कोप द्वारा की जा सकती है। माइक्रोस्कोप परीक्षण के लिए रक्त स्मीयर का संग्रह तथा प्रयोगशाला सेवाओं का प्रभावी अनुरक्षण आवश्यक है। रक्तपट्टिका परीक्षण में सप्ताह तक का विलम्ब पारेशण काल की उच्च प्रावस्था में प्रायः मिलता है। इसी के साथ परिणामों में विभिन्नता प्रयोगशाला प्रविधिज्ञों के कौशल पर निर्भर करती है। उद्योगों के शोध एवं विकास प्रभाग द्वारा ''त्वरित नैदानिक परीक्षण'' (आर.डी.टी.) जो कि रक्त में एच0आर0पी0-2 ऐण्टीजिन के अभिज्ञान/पहचान पर आधारित है उसका विकास किया है। त्वरित नैदानिक परीक्षण (आर0डी0टी0) की संवदेनशीलता एवं विशिष्टता में 95 प्रतिशत या उससे अधिक का संशोधित /उन्नत स्वरूप उपलब्ध है।

विश्वस्वास्थ्य संगठन ने मलेरिया निदान में आर.डी.टी. (R.D.T.) की संस्तुति की है। एक संयुक्त परीक्षण 'डिप स्टिक' भी व्यापारिक स्तर पर उपलब्ध है जो कि समस्त प्लाज्मोडियम संक्रमण को पहचानने में सक्षम है। ''डिप स्टिक' परीक्षण उन स्थितियों में अधिक उपयोगी है जहां पर प्रयोगशाला सुविधायें अपर्याप्त है अथवा नहीं हैं अथवा दुर्गम क्षेत्रों में स्थित हैं। ये आपातकालीन स्थितियां है और जहाँ पर प्रयोगशाला सुविधाओं को प्रयोग नही किया जा सकता है अथवा प्राइवेट सेक्टर में है या विशेष अध्ययन वाले क्षेत्र है। इसके माध्यम से समस्त ज्वर पीड़ित रोगियों का परीक्षण किया जा सकता है यहां तक कि जो दुर्गम क्षेत्रों में स्थित है, और उनको भी मलेरिया रोधी औषधियां समय से दी जा सकती हैं। आर.डी.टी. की सामान्य जनमानस में स्वीकार्यता बढ़ती जा रही है जिसके माध्यम से मलेरिया का निदान सार्वजनिक एवं प्राइवेट सेक्टर दोनों में किया जा रहा है। एक आकलनानुसार अफ्रीका में 676 मिलियन आर.डी.टी. का उपयोग वार्षिक रूप में किया जा रहा है और इसकी मांग लगातार बढती ही जा रही है।

5.0 मलेरिया नियंत्रण का सुदृढ़ीकरण

शोध एवं विकास के माध्यम से मलेरिया नियंत्रण की नवीन तकनीक वैश्विक स्तर पर उपलब्ध है। इन तकनीकों को निम्नवत व्यक्त किया जा सकता है।

5.1 रोगवाहक नियंत्रण

रोगवाहक नियंत्रण का आधार विश्व स्वास्थ्य संगठन की नीति के अनुसार ''समन्वित रोगवाहक प्रबंन्धन'' पर आधारित है। उच्च पारेशण वाले क्षेत्रों में घरों के अन्दर अवक्षेपी कीटनाशक का चयनात्मक छिड़काव तथा महामारी को नियंत्रित करने हेतु छिड़काव की निरन्तरता रहेगी। कीटनाशक संशिक्त मच्छरदानियाँ प्रारम्भ काल में भी प्रयुक्त की जाती थी परन्तु अब दीर्घकालिक कीटनाशक संशिक्त मच्छरदानी (L.L.I.N.S.) की व्यवसायिक उपलब्धता भी है। W.H.O.P.E.S. ने L.L.I.N.S. का व्यवस्थित परीक्षण मलेरिया स्थानिक देशों में प्रारम्भ किया और इन विभिन्न क्षेत्रों में किये गये परीक्षण के परिणामों के आधार पर परमानेंट[R] और ओलिसेट नेट[R] की संस्तुति मलेरिया नियंत्रण कार्यक्रमों हेतु की है।

इन मच्छरदानियों के द्वारा मच्छरों को भगाने/ मारने की प्रभावक क्षमता कम से कम तीन वर्ष तक क्षेत्र की स्थितियों में विद्यमान रहती है। एल.एल.आई.एन.एस. 20 स्टैण्डर्ड धुलाई को सहने में सक्षम है और इसकी जैविक सक्रियता में कोई ह्रास नही होता है। G.F.A.T.M. का अनुदान सम्पूर्ण उच्च मलेरिया जोखिम क्षेत्रों को ए.एल.आई.एन.एस. के माध्यम से बचाव प्रदान करता है।

गर्भवती महिलायें एवं अल्पवयस्क/तरुण बच्चे (पांच वर्ष से कम) अत्यधिक जोखिम पर है इसलिए इस समूह को एल.एल.आई.एन.एस. के वितरण में प्राथमिकता दी जानी चाहिए। अफ्रीका में आई0टी0एन0 (I.T.N.) के माध्यम से गम्भीर मलेरिया रोगियों में 45 प्रतिशत, समय पूर्व प्रसव में 42 प्रतिशत तथा शिशु मर्त्यता में 17-63 प्रतिशत की कमी पायी गयी। मछलियाँ जो कि मच्छरों के डिम्बकों का भक्षण करती है उनको भी एल.एल.आई.एन.एस. में समन्वित व्यवस्था से दीर्घकालिक कीटनाशक संशिक्त मच्छरदानियों का प्रभाव भी बढ़ाया जा सकता है। स्थानीय मलेरिया आधारित जनपदकीय अध्ययन, ज्ञान एवं समन्वित हस्तक्षेप की सहायता से रोगवाहक जनसंख्या में कमी / उन्मूलित किया जा सकता है।

5.2 मलेरिया उपचार

आर्टिमिसीनीन आधारित औषधियाँ पी. फैल्सीपेरम के उपचार में एवं औषधियाँ प्रतिरोधक मलेरिया में अधिक प्रभावकारी है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन की संस्तुति अनुसार आर्टिमिसीनीन आधारित एकल (मोनो) थिरेपी के प्रयोग को प्रतिबंधित कर रखा है जिससे इस जीवन रक्षक औषधि के विरुद्ध प्रतिरोधकता विकसित न हो सके। चार औषधि सम्मिश्रण की संस्तुतियाँ की गयी हैं ये हैं - आर्टिमीथर/लुमफैनट्राइन, आर्टिसुनेट + अमोडियाक्वीन (उन क्षेत्रों के लिए जहां पर उपचारित दर 80 प्रतिशत अमोडियवीन से अधिक है) आर्टिसुनेट + मेफ्लोक्वीन और आर्टिसुनेट + सल्फाडाक्सीन /पाइरीमेथामीन (उन क्षेत्रों के लिये जहां उपचारित रोगमुक्ति दर 80 प्रतिशत एस.पी. से अधिक हो)। ए.सी.टी. का उपचार रोगियों की संक्रमणशीलता तथा अनकाम्पिलेटेड फैल्सीपेरम मलेरिया में कमी करता है। इस प्रकार पारेशण के प्रभाव में ए.सी.टी. उपयोगी हो सकता है।

वर्तमान में ए.सी.टी. का उपयोग अधिकतर सब सहारा अफ्रीकी देशों में होता है। इसके परिणामस्वरूप ए.सी.टी. की वार्षिक माँग अफ्रीका में प्रतिवर्ष लगभग 538 मिलियन मात्रा (डोज) बच्चों के लिये 288 मिलियन डोज प्रौढ़ो के लिए है। भारत में इसका प्रयोग विलम्ब से प्रारम्भ हुआ। उन क्षेत्रों में जहां पर सीक्यू एवं एस.पी. की प्रतिरोधकता है, वहां पर ए.वी. वी.डी.सी.पी. ने औषधि नीति में परिवर्तन कर आर्टिमिसीनीन + एस. पी. के प्रयोग को प्रारम्भ किया।

औषधि प्रतिरोधकता के अनुश्रवण का अपर्याप्त होना, ए.सी.टी. की ओर परिवर्तन धीमी गति से होना तथा सीमित क्षेत्रों में इसके माध्यम से उपचार कुछ क्षेत्रों में समस्याओं के रूप में हो सकता है जहाँ पर एस. पी. का प्रतिरोध हो। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि भारत में जहाँ कही भी आर्टिसुनेट. एस.पी. का प्रयोग किया गया वहाँ पर पी. फैल्सीपेरम के प्रभाव में पर्याप्त कमी पाई गई। सभी परीक्षणों के सम्मिलित मेटाट्रायल से यह स्पष्ट है कि 3 दिनों के ए.सी.टी. उपयोग की तुलना जब स्टैण्डर्ड मलेरिया रोधी उपचार से की गयी तो पर्याप्त मात्रा में उपचार की असफलता, पुनः प्रकोप (रिक्रूडेस) तथा गेमिटोसाइट के भार वहन में कमी परिलक्षित हुई।

6.0 भावी रास्ता

वैश्विक अनुदान मलेरिया नियंत्रण के सुदृढ़ीकरण हेतु एड्स, ट्यूबरकुलोसिस और मलेरिया (जीएफएटीम) से निपटने के लिए उपलब्ध है। वर्तमान तिथि तक जीएफएटीएम के माध्यम से यू.एस. $ 19.3 विलियन की धनराशि 144 देशों में वृहत स्तर पर बचाव के लिए, उपचार एवं रोगोन्मूलन कार्यक्रमों के अन्तर्गत इन तीन रोगों के लिये उपलब्ध है। भारत सरकार ने यू.एस. $ 161,718,949 की धनराशि तीन रोगों के लिये प्राप्त की है तथा अभी यू.एस. $ 83,071,591 की धनराशि अवशेष अवमुक्त होनी है। मलेरिया नियत्रंण तकनीकी अप-स्कालिंग के द्वारा 80% जनसंख्या में पारेषण को प्रभावी ढ़ंग से नियंत्रित किया जा सकेगा। इसलिए उचित प्रकार का आच्छादन- आई.आर.एस. (I.R.S.), एल.एल.आई.एन. (L.L.I.N.), आर.डी.टी. (R.D.T.), ए.सी.टी. (A.C.T.) के माध्यम से मलेरिया नियंत्रण के उद्देश्य की पूर्ति की जा सकती है तथा जी.एफ.ए.टी.एम की धनराशि मलेरिया स्थानिक देशों के लिए उपलब्ध है।

जेफिरि.डी. साच (2008) के शब्दों में "2010 तक अफ्रीका में रोग नियंत्रण की चुनौती मूलतः संगठनात्मक है न कि तकनीकी। आज आवश्यकता है कि उन प्रमाणित हस्तक्षेपों को उपयोग में लाकर उच्च आच्छादन प्राप्त किया जाय। यहाँ इसका उल्लेख अधिक प्रासंगिक होगा कि अफ्रीका में भी मलेरिया से मुक्ति की गति काफी तेज है तथा जनमानस स्वस्थ एवं उत्पादक जीवन की तरफ अग्रसर हो रहा है। 100 देशों में जहाँ मलेरिया व्याप्त है तथा उनमें से 36 देशों ने मलेरिया उन्मूलन का संकल्प किया है। डब्ल्यू.एच.ओ. के दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों में श्रीलंका, भूटान और नेपाल ने प्रभावी ढ़ंग से मलेरिया को नियंत्रित किया है, लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। भारत के लिए यह आवश्यक है वह पूर्ण, व्यवस्थित तरीके से रोग आक्रमण को रोकने के लिए चिरस्थायी प्रोग्राम बनाकर क्रियान्वित करें जब तक कि मलेरिया से पूर्ण मुक्ति न मिल जाय। हम आशान्वित हैं कि आने वाले भविष्य में पुनर्स्थापित/प्रख्यापित मलेरिया नियंत्रण की रणनीति को उचित स्थान मिलेगा, शनैः शनैः मलेरिया का सफाया भारत से हो सकेगा। एक वृहत आधारित सहयोगात्मक व्यवस्था जिसमें सिविल समुदाय, पंचायतीराज संस्थाओं, डब्ल्यू.एच.ओ. एवं अन्य यू.एन. (U.N.) की अन्तरराष्ट्रीय संस्थाओं, NGOs सी.वी.ओ. मानव संसाधन विकास, अन्तर्राज्यीय एवं अन्तरदेशीय, क्रास सीमान्तर्गत मलेरिया नियंत्रण, नगरपालिकायें एवं नगरनिगम, प्राइवेट सेक्टर, औद्योगिक घरानें, अन्तरसेक्टोरल के समन्वय एवं सतत अनुश्रवण एवं पुनर्कार्यक्रम की व्यवस्था ही मलेरिया उन्मूलन का आधार है। यह निश्चित रूप से जटिल समस्या का निष्पादन है, परन्तु इसके लाभ असंख्य एवं अनमोल है।

आभार:

लेखक इस आलेख को तैयार करने के लिए ग्रामीण विकास एवं प्रौद्योगिकी केन्द्र, भा.प्रौ.सं. दिल्ली के श्री पीयूष कुमार (शोध छात्र) एवं श्री सपना मिश्रा (शोध छात्रा) के प्रति अपना आभार प्रकट करते हैं।

संदर्भ

1. शर्मा, वी.पी. (1999); करन्ट सिनारिओ ऑफ मलेरिया इन इण्डिया पैरासिटोलोजिया।

2. एन.एम.ई.पी. (1985); इन डेप्थ इवैल्यूएशॅन रिपोर्ट ऑफ दि मॉडिफाइड प्लान ऑफ आपेर्शन अण्डर NMEP ऑफ इण्डिया; MMEP डायरेक्टरेट पब्लिकेशॅन, 22 शाम नाथ मार्ग, नई दिल्ली–110054

3. भारत में मलेरिया का राष्ट्रीय परिदृश्य (1995-2007) http://www.whoindia.org /linkfiles/Malaria country Profile- Malaria.pdf.webcite

4. नारायण, जे.पी. (2009) मलेरिया इन साउथ ईस्ट एशिया रीजन; मिथ ऐन्ड दी रियलिटि इण्डिया ज न ल ऑफ मलेरिया रिसर्च 128: 1–3।

5. डायमण्ड स्मिथ एन. सिंह, एन. दासगुप्ता आर.के., दस.ए. , थिमसरन के. ऊना एम.आर. कैम्पवेल, चन्द्रमोहन डी. (2009); एस्टिमेटिंग दि बर्नर ऑफ मलेरिया इन प्रेग्नेन्सि: ए कोल स्टडी फ्रांम रूरल मध्य प्रदेश इण्डिया मालार जे; 8; 1-3।

6. शर्मा, वी.पी. (2009); हिडन बर्डन ऑफ मलेरिया इन इण्डिया वूमेन; मलेरिया जनरल 8: 28 doi; 10 1186/1475-2875-8-281

7. धींगरा नीरज, प्रभात झा, वी.पी. शर्मा, एलेन सी कोहेन एवं अन्य सहयोगी (2010); एडल्ट ऐन्ड चाइल्ड मलेरिया मॉर्टिलिटि इन इण्डिया दि LANCET एक्सेप्टिड।

8. शर्मा, वी0पी0 (2009); एक्केलेरिंग दि पेस ऑफ रोल बैक मलेरिया इन इण्डिया; प्रो. नेशनल एकडेमी ऑफ साइन्स इण्डिया सेक्शन वी 79; (स्पेशल इश्यू) 13-21।

9. डब्लू. एच. ओ. -पोजिशॅन स्टेटेमेन्ट ऑन इन्टिग्रेटिड वेक्टर मैनेजमेन्ट (http://www.google.co.in/seach? hl =en & q = IVM+WHO+Position+statement & btnG = search & meta.

10. लैग्लर–सी (2000); इनसेक्टिसाइड ट्रीटिड बैडनेटस ऐन्ड कर्टेन फॉर प्रिवेन्टिंग मलेरिया; कोक्रेन डाटा बेस सिस्टम। रिव्यू; 2: सीडी 000363।

11. सिंह एन, सक्सेना ए. (2005); यूजफुलबेस ऑफ रेपिड ऑन साइट प्लाजमेडियम फेल्सिपरयम डाइग्नोसिस (पैरा चैक Rpf) इन फोरेस्ट माइग्रेन्ट्स ऐन्ड ॲमंग्ग इनडाइग्नोअॅस इन सेन्ट्रल इण्डिया ए.एम.जे. ट्रोप med Hyg 2005, 72;26-29।

12. डब्लू.एच.ओ. (2005), ए इन्ट्रिम नोट्स ऑन सिलेकशॅन ऑफ टाइप ऑफ मलेरिया रेपिड डाइग्नोस्टिक टेस्ट इन रिलेशॅन टू दि ऑक्यूरेन्स ऑफ डिफ्रेन्ट परसाइड स्पीशिज; गाइडेन्स फॉर नेशॅनल मलेरिया कन्ट्रोल प्रोग्राम्स RBM, 2005 जेनेवा।

एकाग्रता सीखो, और जिस ओर इच्छा हो उसका प्रयोग करो। ऐसा करने पर तुम्हें कुछ खोना नही पड़ेगा।

–स्वामी विवेकानन्द

बढ़ती उम्र का रोग अस्थि क्षीणता

डॉ. जे.एल. अग्रवाल
प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, मानव विज्ञान
एस.आई.एम.एस., हापुड़ (गाजियाबाद)

1.0 प्रस्तावना

आयु बढ़ने के साथ ही हड्डियाँ कमजोर व खोखली हो जाती है, ये मामूली झटके, चोट से भी टूट सकती है। यह समस्या अस्थिक्षीणता, या अस्थि सुषिरता या आस्टियोपोरोसिस (Osteoporosis) कहलाती है। तकनीकी रूप से हड्डी के प्रति इकाई आयतन में सापेक्ष संयोजन की कमी (Reduced bone mass per unit of bone) को आस्टियोपोरोसिस कहते है।

बचपन में हड्डियाँ मुलायम, लचीली होती है, हड्डियों में कैल्सियम के लवण जमा होने से यह कठोर होने लगती है। करीब 30 वर्ष आयु में हड्डियाँ अधिकतम सघनता (density) प्राप्त कर लेती है फिर धीरे–धीरे हड्डियों की सघनता, मजबूती कम होती जाती है।

पहले अस्थिविरलता रजोनिवृत्ति के बाद महिलाओं का रोग माना जाता था। पर अध्ययनों से सिद्ध हुआ है कि यह युवा, वृद्ध पुरूष, नारी किसी में भी हो सकती है। पर इसका प्रकोप मिनोपॉज के बाद महिलाओं में व्यापक रूप से होता है। रजोनिवृत्ति के पश्चात् करीब 30 प्रतिशत महिलाएँ इसके चंगुल मे आ जाती है। 70 वर्ष आयु के बाद तो ज्यादातर स्त्री, पुरुष विभिन्न रूप में इस बीमारी से ग्रस्त हो जाते हैं। आस्टियोपोरोसिस वृद्धावस्था में अपंगता, फैक्चर आदि का प्रमुख कारण है।

चिकित्सा विज्ञान में हो रही लगातार उन्नति से औसत आयु बढ़ने के साथ ही समाज में वृद्धों का अनुपात और कुल संख्या में तेजी से बढ़ोत्तरी हो रही है जिसके कारण आस्टियापोरोसिस ग्रस्त मरीजों की संख्या भी तेजी से बढ़ रही है।

2.0 आस्टियोपोरोसिस के प्रकार व लक्षण

आस्टियोपोरोसिस मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है।

- **प्राथमिक आस्टियोपोरोसिस :** अनेक मरीजों में इसका कारण अज्ञात रहता है और यह बचपन, वयस्क, पौढ किसी भी अवस्था में हो सकता है। रजोनिवृत्ति के पश्चात महिलाओं में एस्ट्रोजन हार्मोन का स्राव न होने के कारण आस्टियोपोरोसिस अत्यन्त गंभीर समस्या बन जाती है। वृद्धों में चाहे पुरुष हों या स्त्री, किसी में भी अस्थिविरलता (Senile steoporrosis) हो जाती है।
- **द्वितीयक आस्टियोपोरोसिस :** जब अस्थि क्षीणता किसी ज्ञात कारण जैसे–थायॅरायड, पैराथॉयरायड, ग्लूकोकार्टिक्याइड हार्मोन की अधिकता, दवाईयों के सेवन (स्टीरायड, मिर्गी की दवाईयाँ) अंगों के अत्यधिक आराम करने, निष्क्रिय व आराम परस्त जीवन व्यतीत करने इत्यादि के कारण होती है तो द्वितीयक आस्टियोपोरोसिस कहलाती है।
- **लक्षण :** सामान्यतः इस बीमारी के कारण शुरुआत में कोई समस्याएँ नही होती हैं। कुछ में शारीरिक कमजोरी, हड्डियों में दर्द, पीठ दर्द की समस्याएं हो सकती है। यदि 40 वर्ष आयु के पश्चात लम्बाई कम होती है, तो संभवतः यह आस्टियोपोरोसिस के ही कारण है। अधिकांश में रोग का पता मामूली चोट लगने, झटका लगने से कलाई, कूल्हे, रीढ़ की हड्डी टूटने के बाद ही लग पाता है। रीढ़ की हड्डी टूटने से अचानक असहनीय दर्द होता है, जो पैरों तक पहुँचता है, स्नायुओं पर दबाव पड़ने से पैरों में कमजोरी या लकवा हो सकता है, संवेदनाएँ कम हो सकती है। आस्टीयोपोरोसिस के कारण कमर झुक सकती है। वृद्धावस्था में इसके कारण कूल्हे की हड्डी टूटना अति सामान्य है।

3.0 वृद्धावस्था में कशेरूकाओं की आर्थराइटिस

वृद्धों में कमर, पीठ, गर्दन में दर्द अति सामान्य हैं। प्रायः दर्द कशेरूकाओं के जोड़ों तथा कशेरूकाओं को आपस में जोड़ने वाले तन्तुओं पेशियों में बदलाव, क्षय होने के कारण होते है।

कशेरूकाओं के जोड़ों में आर्थ्राइटिस या/और कशेरूकाओं से निकलने वाली स्नायुओं पर दबाव पड़ने के

कारण रीढ़ की हड्डी में और आसपास दर्द हो सकता है। स्नायु पर दबाव पड़ने के कारण दर्द कंधे, हाथों, पेडू, जांघों में फैल सकता है।

यदि स्नायुओं पर दबाव पड़ता है तो हाथ–पैरों की संवेदनाओं में बदलाव आ सकता है, झुनझुनाहट होती है, छूने, पिन चुभाने, चोट लगने पर दर्द का अहसास नही होता है, गर्म, ठंडा पता नही लग पाता, पेशियों में कमजोरी हो सकती है।

आदर्श रूप से 60 वर्ष की आयु के बाद हर व्यक्ति को पीठ का एक्स–रे कराना चाहिए जिससे कशेरूकाओं के जोड़ों की आथ्राइटिस का निदान हो कर समय से समुचित उपचार हो सके। कशेरूकाओं में बदलाव के कारण ही मेरु दण्ड की वक्रता में बदलाव आने लगता है। वृद्धावस्था में लम्बाई कम होने लगती है, कमर झुक सकती है।

4.0 आस्टियोपोरोसिस का निदान व उपचार

निदान : – आस्टियोपोरोसिस की पहचान एक्स–रे से हो सकती है। रीढ़ की हड्डी के एक्स–रे में हड्डियों में विरलता नजर आती है, यह धुंधले शीशे की तरह दिखाई देती है। कशेरूकाओं के मध्य की गद्दी फूल जाती है। अस्थि क्षीणता की पुष्टि और इसकी गंभीरता का पता अस्थि घनत्व मापक (Bone mineral densitometery, B.M.D.) द्वारा होता है। रजोनिवृत्ति के बाद हर महिला की बी.एम.डी. जॉच नियमित अंतराल पर होनी चाहिए, जिससे रोग का पता प्रारम्भिक चरण में ही लग जाए।

उपचारः– आस्टियापोरोसिस से बचाव के प्रयास बचपन, युवावस्था से ही शुरू कर देने चाहिए। अब शोध से सिद्ध हुआ है कि यदि युवाओं में अस्थि अधिकतम सघनता प्राप्त कर लेती है तो भविष्य में आस्टियोपोरोसिस का खतरा कम होता है। अतः सक्रिय रहें, नियमित रूप से व्यायाम करे। भोजन संतुलित करे, जिसमें प्रोटीन कैल्सियम पर्याप्त मात्रा में मौजूद हो। **विटामिन डी** भी हड्डियों को मजबूत बनाने के लिए आवश्यक है, इसका निर्माण सूर्य की अल्ट्रा वायलेट किरणों के प्रभाव से त्वचा में हो सकता है। अतः कुछ समय सूर्य की रोशनी में भी टहलें।

वृद्धों को नियमित व्यायाम करना चाहिए। रोजाना 2–3 कि.मी. घूमने, साइकिल चलाने, टेनिस, बैडमिंटन खेलना इत्यादि से हड्डियाँ सघन व मजबूत होती है। भोजन में एक ग्राम कैल्सियम प्रतिदिन होना चाहिए। यह दूध, हरी पत्ते वाली सब्जियो, काला चना, बादाम, पनीर, गोश्त में पाया जाता है। धूम्रपान, तम्बाकू, गुटखा, मदिरा सेवन हड्डियों का दुश्मन है, इनका सेवन न करे। यदि अस्टियोपोरोसिस से ग्रस्त है तो सावधानी से चलना–फिरना चाहिए ताकि फ्रैक्चर न हो।

आस्टियोपोरोसिस ग्रस्त होने पर कैल्सियम, विटामिन डी व इसके अन्य अवयव जैसे अल्फा कैल्सिराल या कैल्सिट्रियाल, के अतिरिक्त कुछ अन्य दवाइयाँ जैसे कैल्सिटोनिन, टेस्टोस्ट्रान, हार्मोन, बाइफोस्फोनेट आदि का सेवन करने से भी हड्डियां मजबूत होती है। रजोनिवृत्ति के पश्चात महिलाएँ यदि एस्ट्रोजन हार्मोन का सेवन करती है तो भी आस्टियोपोरोसिस की संभावना कम हो जाती है।

सन्दर्भ

हैरिसन'स प्रिन्सिपल ऑफ इंटरनल मेडिसिन; सं. ब्रौनवाल्ड, फैसी, हैजर लोंगो, जेमसन, 15वां संस्करण, पृष्ठ 2239–2240, मैक्ग्रा हिल प्रकाशन।

क्लोरोफिल और स्वास्थ्य

डॉ. ए.के. चतुर्वेदी
26 कावेरी एन्क्लेव फेज–II
स्वर्ण जयन्ती नगर के पास
रामघाट रोड, अलीगढ़ – उ.प्र.

प्रकृति में अपार हरियाली विद्यमान है। प्रत्येक मनुष्य को हरियाली मनमोहनी लगती है। यह हरियाली पेड़–पौधों की पत्तियों के हरे रंग के कारण होती है। यह हरा रंग प्रकृति की देन है। इस कारण पत्तियों में उपस्थित हरे रंग को प्राकृतिक पिगमेन्ट कहते हैं। इस हरे रंग के पिगमेन्ट का रासायनिक नाम क्लोरोफिल है। क्लोरोफिल के बिना न पेड–पौधों का और न ही मनुष्य का जीवन है। अतः जीवन के लिए क्लोरोफिल आवश्यक है।

क्लोरोफिल को हरा सोना या हरा रक्त के नाम से भी जानते हैं। क्लोरोफिल प्राकृतिक प्लान्ट पिगमेन्ट है। प्रकृति में क्लोरोफिल ग्रीनरी प्रदान करता है। 1818 में पेलोटीयर (Pellotear) और कावेनटोर (Caventor) ने सर्वप्रथम हरे रंग के पिगमेन्ट का नाम क्लोरोफिल दिया। 1864 में स्टोक्स (Stokes) ने बताया कि क्लोरोफिल में दो अवयव क्लोरोफिल 'अ' और क्लोरोफिल 'ब' होते हैं। 1911 में विल्सटेटर ने क्लोरोफिल की संरचना दी। इनके अनुसार क्लोरोफिल में चार पायरोल रिंग होती है जो आपस में (=CH-) बन्ध द्वारा जुड़े रहते हैं। पायरोल रिंग पर मिथायल, इथायल, विनायल समूह जुड़े होते हैं। पाइरोल की एक रिंग पर एस्टर समूह भी होता है। कीटोन समूह भी होता है। नाइट्रोजन से मैग्नीशियम धातु दो कोओर्डीनेट बन्ध और दो सह संयोजक बन्ध द्वारा जुड़े रहते हैं। क्लोरोफिल का अणु सूत्र $C_{55} H_{72} O_5 N_4 Mg$ है। संरचना निम्न प्रकार से प्रदर्शित करते हैं:

क्लोरोफिल 'अ' नीले–काले रंग का होता है। प्रायः हरे पेड़–पौधों में पाया जाता है। इसका अणु सूत्र $C_{55} H_{72} O_5 N_4 Mg$ है। क्लोरोफिल 'ब' गहरे हरे रंग का होता है। यह भी हरे पेड़–पौधों में पाया जाता है। इसका अणु सूत्र $C_{55} H_{70} O_6 N_4 Mg$ है। पत्तियों में क्लोरोफिल 'अ' और 'ब' होता है। हरी सब्जियों में भी क्लोरोफिल 'अ' और 'ब' होता है। हरी सब्जी पालक में सर्वाधिक क्लोरोफिल होता है। पेड़–पौधों में भोजन बनाने में क्लोरोफिल की अहम भूमिका है। भोजन बनाने की प्रक्रिया प्रकाश संश्लेषण क्लोरोफिल के द्वारा सम्पन्न होती है।

वैज्ञानिक डॉ. रिचर्ड मार्टिन विल्सटेटर ने क्लोरोफिल और मनुष्य के रक्त में उपस्थित हीमीन में समानता बतलाई। उनके अनुसार क्लोरोफिल और हीमीन की संरचना समान है। दोनों में चार पायरोल रिंग होती हैं। चारों पायरोल रिंग (-CH=) बन्ध से जुड़े रहते हैं। दोनों में पायरोल रिंग पर मिथायल, इथायल, विनायल, एस्टर, कीटोन समूह होता है। दोनों में अन्तर यह है कि क्लोरोफिल में नाइट्रोजन से मैग्नीशियम धातु जुड़ी होती है जब कि हीमीन में आयरन धातु होती है।

क्लोरोफिल और हीमीन में समानता होने के कारण पेड़–पौधों और मनुष्य में भी सह–संयोजकता पाई जाती है। ये दोनों एक–दूसरे के पूरक हैं। एक–दूसरे पर निर्भर करते हैं। क्लोरोफिल को पेड़–पौधों का रक्त भी कहते हैं। जिन पदार्थों में क्लोरोफिल होता है उनके खाने से रक्त की मात्रा बढ़ती है। पेड़–पौधों में विभिन्न उपापचय क्रियाओं के द्वारा कार्बोहाइड्रेट, विटामिन्स, एन्टी ऑक्सीडेन्ट व अन्य सहायक रसायनिक पदार्थों का निर्माण होता है। इन पदार्थों के निर्माण में क्लोरोफिल सहायक है जब कि मनुष्य के शरीर में विभिन्न जीव–रसायन क्रियाओं के द्वारा विभिन्न पदार्थों का निर्माण होता है। विभिन्न उपापचय क्रियाओं द्वारा कार्बोहाइड्रेट विशेषकर
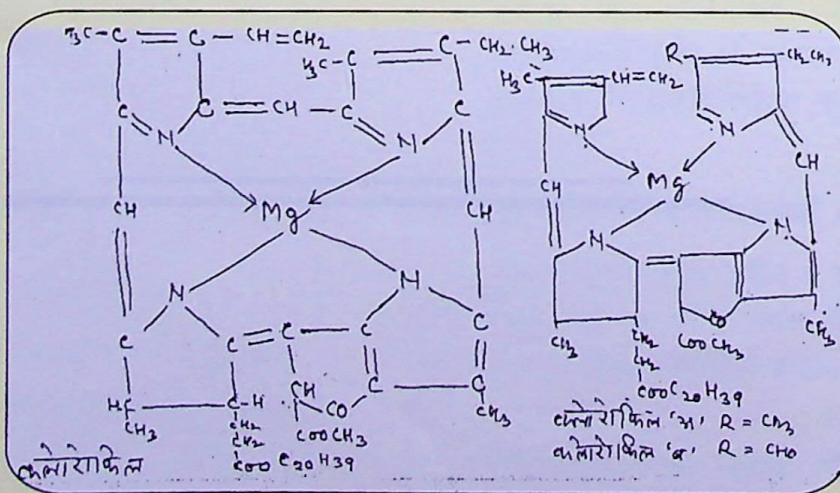
चित्रः क्लोरोफिल की रासायनिक संरचना

ग्लूकोज का निर्माण होता है। ग्लूकोज ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है। क्लोरोफिल भी ऊर्जा प्रदान करता है। जीवन को बनाए रखता है। इसीलिए क्लोरोफिल जीवन के लिए आवश्यक है।

क्लोरोफिल सरलता से मनुष्य के शरीर में समायोजित हो जाता है। साथ ही हीमीन में परिवर्तित हो जाता है। अतः क्लोरोफिल रक्त की मात्रा को बढ़ाता है। रक्त में हीमोग्लोबिन होता है। क्लोरोफिल सरलता से हीमोग्लोबिन में परिवर्तित हो जाता है।

क्लोरोफिल संवेदनशील है। सूर्य के चमकीले प्रकाश में क्लोरोफिल स्थर नहीं है। पराबैंगनी किरणों की अधिकता में प्रकाश संश्लेषण क्रिया दर्शाता है। इस प्रक्रिया में मुक्त मूलक उत्पन्न होते है। अन्धेरे में मुक्त मूलक शान्त हो जाते हैं। क्लोरोफिल डिस्क के समान झिल्ली में रहता है। इसे क्लोरोप्लास्ट कहते हैं। एक पत्ती में 5,00,000 प्रति वर्ग मिली मीटर क्लोरोप्लास्ट होते हैं। ये सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में कार्बन–डाई–आक्साइड और जल से क्रिया कर कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करते हैं। यह कार्बोहाइड्रेट भोजन का कार्य करता है, साथ ही ऊर्जा प्रदान करता है, जो जीवन को चलाने के लिए आवश्यक है।

क्लोरोफिल प्रकाश को ग्रहण करने वाला होता है। यह प्रकाश को संग्रहित कर दृश्य प्रकाश से नीले और लाल रंग के प्रकाश का अवशोषण करता है। अवशोषित किए गए भाग को गहरे हरे रंग में परिवर्तित करता है जिससे पेड़–पौधे हरे रंग के प्रतीत होते हैं। पतझड़ के समय हरे रंग का क्लोरोफिल पीले, लाल या मटमैले रंग में परिवर्तित हो जाता है।

प्रकाश संश्लेषण की क्रिया बहुत ही जटिल है। परन्तु सरलतम रूप में इसे प्रदर्शित करते हैं। सर्वप्रथम क्लोरोफिल सूर्य के प्रकाश का अवशोषण करता है और उत्तेजित अवस्था में आ जाता है। उत्तेजित क्लोरोफिल कार्बन–डाई–आक्साइड और जल के साथ क्रिया कर कार्बोहाइड्रेट का निर्माण करता है। साथ ही आक्सीजन गैस को उत्सर्जित करता है। इसके बाद क्लोरोफिल सामान्य अवस्था में आ जाता है। केरोटिनोयड, और प्रोटीन जो उपस्थित रहती है, प्रकाश संश्लेषण की प्रक्रिया में जटिल यौगिकों की उत्पत्ति में सहायता प्रदान करते हैं। प्रकाश संश्लेषण की क्रिया को निम्न प्रकार से प्रदर्शित करते हैं

इस प्रक्रिया द्वारा कार्बनडाइआक्साइड और आक्सीजन में सामंजस्य स्थापित हो जाता है। क्लोरोफिल कार्बनडाइआक्साइड की अधिकता को समाप्त कर प्राणवायु को उत्सर्जित करता है जिससे जीवन सुचारु रूप से चलता है।

एल्गी में भी क्लोरोफिल होता है। एक कोशिका वाली एल्गी क्लोरीला (Chlorella) और स्पाईरुलीना (Spirulena) में भी क्लोरोफिल होता है। 10 ग्राम क्लोरीला में 280 मि.ग्रा. तथा स्पाईरुलीना में 178 मि.ग्रा. क्लोरोफिल होता है। क्लोरीला में एमीनो अम्ल, न्यूक्लियक अम्ल, विटामिन तथा मिनिरल होते हैं। इसमें कम स्थान वाले आर.एन.ए. और डी.एन.ए. होते हैं। यह इम्यून सिस्टम की कार्यविधि को सुचारु रूप से चलाता है। भारी धातु तथा पेस्टीसाइड के प्रभाव को क्लोरोफिल कम करता है। स्पाईरुलीना में आयरन, क्रोमियम, सेलेनियम, प्राकृतिक बी 12, आवश्यक वसा अम्ल होते हैं। स्पाईरुलीना कोलेस्ट्रोल और ट्राइ ग्लिसराइड की मात्रा को कम करता है।

हरी घास में भी सभी आवश्यक न्यूट्रीएन्ट्स होते हैं। गेहूँ, जौ, एल्फा घास में विटामिन, मिनिरल व आवश्यक न्यूट्रीएन्ट होते हैं। गेंहू और जौ की पत्तियों में केरोटीनायड, विटामिन, फोलिक अम्ल, मिनिरल, एन्जाइम होते हैं। गेहूँ और जौ की घास लेने से बालों का सफेद होना, दाँतो का टूटना कम हो जाता है। प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। चाय की हरी पत्ती का उपयोग सिरदर्द, डिप्रेशन कम करने के लिए एवं पाचन बढ़ाने के लिए करते हैं।

अमेरिका के राष्ट्रीय कैंसर संस्थान ने बतलाया कि प्लान्ट फूड में एन्टी कैंसर गुण विद्यमान होते हैं। क्रूसीफेरी फेमली के सदस्य जैसे ब्रोकली, ब्रूसेल, कोलाई ग्रीन और मस्टर्ड ग्रीन में कैंसर से लड़ने की शक्ति होती है। हरी सब्जियों के सेवन से शरीर में क्लोरोफिल पहुँचता है, साथ में मिनिरल भी होते हैं जो विभिन्न उपापचय क्रियाओं को सुचारु रूप से सम्पन्न कराते हैं।

क्लोरोफिल का प्रभाव कैंसर कोशिकाओं पर होता है, क्योंकि क्लोरोफिल में कैंसर विरोधी गुण विद्यमान हैं। 1980 में ओरगेन विश्वविद्यालय में वैज्ञानिक डॉ. रोडिरिक ट्रान्सबुड ने नदी में कुछ मछलियों को केवल एफ्लोटोक्सिन बी, दिया। कुछ मछलियों को एफ्लोटोक्सिन बी, और क्लोरोफिल दिया। उन्होंने पाया कि जिनको केवल एफलोटोक्सिन बी, दिया था उनका

सूर्य का प्रकाश → क्लोरोफिल → उत्तेजित क्लोरोफिल (मुक्त मूलक)

उत्तेजित क्लोरोफिल + $n\,CO_2 + n\,H_2O$ + सूर्य का प्रकाश → $(CH_2O)_n + n\,O_2$ + क्लोरोफिल

$$\downarrow$$

$$C_6H_{12}O_6, (C_6H_{10}O_5)n$$
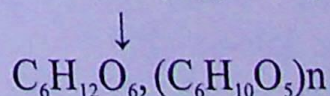
यकृत अधिक नष्ट हो गया, उनकी तुलना में जिनको एफलोटोक्सिन बी, और क्लोरोफिल दिया था। यह अन्तर क्लोरोफिल के कारण होता है। क्लोरोफिल जीवन को सुचारु रूप से चलाने में बहुत ही महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जोन होपकिन्स विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक जोन ग्रूपमेन और टोम केन्सनर ने भी चूहों को एफलोटोक्सिन बी, और क्लोरोफिल दिया। परिणाम में पाया कि चूहों का यकृत कम खराब हुआ। अफ्रीका और एशिया के गर्म और गीले भागों में चूहों को यकृत कैंसर अधिक होता है। क्लोरोफिल के सेवन से यकृत कैंसर कम हुआ। मनुष्यों में भी म्यूटेशन ऑफ जीन के कारण कैंसर होता है। क्लोरोफिल में म्यूटेशन विरोधी गुण भी विद्यमान होते हैं। अतः क्लोरोफिल के सेवन से कैंसर कम होता है।

क्लोरोफिल और हीमोग्लोबिन में समानताएँ भी हैं और असमानताएं भी। दोनों में पोरकायरीन न्यूक्लियस होता है। ये न्यूक्लियस आपस में (−CH=) से जुड़े रहते हैं। पायरोल रिंग पर मिथायल, इथायल, विनायल, एस्टर समूह जुड़े होते हैं। दोनों में अन्तर यह है कि क्लोरोफिल में मैग्नीशियम धातु तथा हीमोग्लोबिन में आयरन धातु होती है। क्लोरोफिल वातावरण की कार्बन–डाई–आक्साइड की मात्रा को घटाता है और आक्सीजन की मात्रा को बढ़ाता है जबकि हीमोग्लोबिन आक्सीजन ग्रहण कर शरीर की कार्बन–डाइ–आक्साइड को कम करता है। ओक्सी हीमोग्लोबिन शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है। दोनों के डिग्रेडेशन पर समान पदार्थ बनते हैं।

क्लोरोफिल सरलता से पचने वाला है एवं हीमोग्लोबिन में परिवर्तित हो जाता है। दूसरे शब्दों में यह रक्त की मात्रा को बढाता है। शरीर में अल्परक्तता नहीं हो पाती। चूंकि हरी सब्जियों में क्लोरोफिल होता है, हरी सब्जियों के खाने से रक्त की कमी नहीं हो पाती इसीलिए हरी सब्जियों के खाने पर बल दिया जाता है। हरी सब्जियों का सेवन स्वास्थ्य के लिए लाभकारी होता है।

रक्त के बनने में, रक्त की अल्पता को दूर करने में क्लोरोफिल की महत्वपूर्ण भूमिका है। शरीर में रक्त की उचित मात्रा होने पर ही प्रतिरोधक क्षमता में वृद्धि होती है। रोग नहीं हो पाते। स्वास्थ्य अच्छा रहता है। अच्छा स्वास्थ्य ही विकास में सहायक है। क्लोरोफिल पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाता है। वातावरण में मनमोहकता प्रदान करता है। जीवन में बहुत ही उपयोगी है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि क्लोरोफिल जितना जटिल प्राकृतिक पदार्थ है उतना ही लाभकारी है। अच्छे स्वास्थ्य को बनाए रखने में क्लोरोफिल की महत्वपूर्ण भूमिका है। कहा जाता है कि 'पहला सुख निरोगी काया', अच्छा स्वास्थ्य होने पर जीवन की रंगीनियों का आनन्द प्राप्त किया जाता है। रोगी होने पर जीवन अभिशाप बन जाता है। ध्यान रहे अधिकता भी हानिप्रद होती है। अतः नियमित और उचित मात्रा के सेवन से भी लाभ प्राप्त होता है। जब जीवन जीना सरल, सुखमय, आनन्द दायक, स्फूर्ति से परिपूर्ण होगा, तभी जीवन सार्थक है अन्यथा निरर्थक।

भारतीय उपचार पद्धतियों का महत्व

श्री संजय चौधरी
जे. ऐन्ड के. – 16 बी.
दिलशाद गार्डन, दिल्ली– 110095

पृष्ठभूमि

भारतीय समाज आरंभ से ही आध्यात्मिक समाज रहा है जहाँ संसार में सभी प्राणियों के स्वस्थ होने की कामना की गई है । विभिन्न रोगों के इलाज के लिए भारत में अत्यंत प्राचीन काल से आयुर्वेद सहित उपचार की विभिन्न पद्धतियां प्रचलित रही हैं । इसी परंपरा को आगे बढ़ाते हुए आधुनिक युग में भी भारत की पारंपरिक उपचार पद्धतियों को बढ़ावा देने की आवश्यकता है । इससे समाज के सभी वर्गों का अच्छा स्वास्थ्य सुनिश्चित करना संभव हो सकेगा । जानकारों के अनुसार भारतीय आरोग्यवर्धक पद्धतियों को अपनाकर न केवल उत्तम स्वास्थ्य तथा जीवन का सुख प्राप्त किया जा सकता है वरन् धन और धर्म की रक्षा भी की जा सकती है । तभी तो गुणीजन इस बात पर बल देते हैं कि –

धन बचे और धर्म बचे, रोग समूल नसाय ।
क्यों न लाभ उठाइये, देसी औषधि खाय ।।
गुणकारी यह औषधि, करिए सदा प्रयोग ।
रखे स्वस्थ सानन्द सदा, नहीं सतावे रोग ।।

भारतीय उपचार–पद्धति के अंतर्गत अनेक आरोग्यवर्धक एवं जीवनी–शक्ति को पुष्ट बनाने वाली उपचारात्मक विधियां सम्मिलित हैं । चिकित्सा की भारतीय पद्धतियों को वर्तमान में इलाज की सबसे सस्ती पद्धतियों में गिना जाता है जिसके लाभों को देखते हुए इनके व्यापक प्रचार–प्रसार की आवश्यकता है । मानव के उत्तम स्वास्थ्य के इसी व्यापक उद्देश्य से इस लेख में भारतीय उपचार पद्धतियों के महत्व को उजागर करने और आधुनिक स्वास्थ्य–सेवा के क्षेत्र में इन्हें सम्मिलित करने की आवश्यकता पर प्रकाश डाला गया है ।

रोग–निवारण व भारतीय उपचार–पद्धति

मानव की अनियमित एवं विकृत जीवन–शैली तथा प्रदूषित वातावरण वर्तमान युग की सबसे बड़ी सच्चाई बन कर उभर रही है । यही कारण है कि मानव स्वास्थ्य की दृष्टि से परिस्थितियाँ संकटपूर्ण होती जा रही हैं । पूरे विश्व में उच्च रक्तचाप, मधुमेह एवं हृदयरोग के रोगियों की संख्या में खतरनाक ढंग से वृद्धि हो रही है। दूसरी ओर कई पुरानी बीमारियां नए–नए आकार–प्रकार में अवतरित हो रही हैं । ऐसे में मात्र बीमारियों का उपचार ही महत्व नहीं रखता बल्कि जीवन एवं स्वास्थ्य के प्रति एक स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करने की आवश्यकता निरंतर बढ़ती जा रही है । निस्संदेह, इसके लिए भारतीय उपचार पद्धतियों को समझना एवं इसे अपने जीवन–दर्शन का एक हिस्सा बनाना महत्वपूर्ण हो जाता है। आधुनिक स्वास्थ्य–सेवा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण बात यह है कि चिकित्सा की सभी उपलब्ध वैकल्पिक पद्धतियों का महत्व बढ़ रहा है । विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा कराए गए अध्ययनों ने भी भारतीय उपचार–पद्धति सहित विभिन्न पारंपरिक चिकित्सा पद्धतियों की प्रभावोत्पादकता पर नया प्रकाश डाला है । इन अध्ययनों के आधार पर यह पाया गया है कि कई रोगों के उपचार में पारंपरिक एवं स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियां अधिक कारगर भूमिका निभा सकती हैं । इस संगठन ने अध्ययनों के आधार पर यह भी बताया है कि सन् 2020 तक एलोपैथिक दवाओं में से अनेक दवाइयाँ निष्प्रभावी हो जाएंगी । अगले कुछ वर्षों में अधिकतर एंटीबायोटिक दवाएं मानव के शरीर पर असर करना बंद कर देंगी अर्थात हमारा शरीर इन दवाओं के प्रति प्रतिरक्षण (इम्यूनिटी) का विकास कर लेगा।

अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति के अंतर्गत प्रयुक्त दवाइयों द्वारा हमारे शरीर पर प्रतिकूल प्रभाव छोड़ने के कारण भी बड़ी संख्या में लोग इस चिकित्सा पद्धति से विमुख हो रहे हैं । वहीं दूसरी ओर, भारतीय चिकित्सा–पद्धतियों के अंतर्गत जिन परंपरागत औषधियों का प्रयोग किया जाता है उनका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता है। यही कारण है कि एलोपैथी चिकित्सा पद्धति पर निर्भर अधिकांश देश आज चिकित्सा की अन्य स्थापित पद्धतियों की ओर आकर्षित हो रहे हैं तथा स्वास्थ्य–सेवाओं के अंतर्गत भारतीय उपचार–पद्धति सहित अन्य चिकित्सा पद्धतियों को सम्मिलित करने के लिए इन देशों में गंभीर प्रयास किए जा रहे हैं ।

उपचार की भारतीय पद्धतियां और परंपराएं

हमारे देश में चिकित्सा की देशी परंपराएं पीढ़ी–दर–पीढ़ी आगे बढ़ती रही हैं और हर पीढ़ी ने इस धरोहर

को और अधिक समृद्ध बनाया है । चिकित्सा की देशी परंपराओं के अनुसार ही घरेलू स्तर पर तैयार दवाओं से किया जाने वाला इलाज पूरे समाज में सबसे अधिक प्रचलित भी रहा है । इन्हें दादी माँ के नुस्खे, घरेलू इलाज, देसी उपचार आदि के नाम से जाना जाता है । वास्तव में, विभिन्न बीमारियों के लिए प्रयुक्त देसी उपचार का दायरा बहुत विस्तृत है । इसके अंतर्गत जल, मिट्टी एवं विविध प्राकृतिक तत्वों के द्वारा किए जाने वाले उपचार के साथ–साथ उपचार की आयुर्वेदिक एवं अन्य अनेक पारंपरिक विधियों को सम्मिलित किया जाता है । जोंक लगाकर गंदा खून निकालने एवं मालिश की विशेष विधियों के द्वारा रोगी का इलाज करने की परंपराएँ भी हमारे देश में सदियों से लोकप्रिय रही हैं।

विभिन्न क्षेत्रों में चिकित्सा की विभिन्न प्रकार की स्थानीय परंपराओं का प्रचलन है जिनका अपना एक लंबा इतिहास रहा है । स्थानीय समाज में प्रचलित सामाजिक–सांस्कृतिक मूल्यों एवं प्राकृतिक परिवेश के अनुसार उपचार की विभिन्न विधियां एवं परंपराएं देश के दूर–दराज के इलाकों में आज भी लोकप्रिय हैं । लेकिन देशी उपचार के अंतर्गत मुख्य रूप से प्राकृतिक रूप से उपलब्ध वस्तुओं, जीव–जंतुओं की अस्थियों एवं विभिन्न अंगों तथा वनस्पतियों के प्रयोग से इलाज किया जाता है । इसके अंतर्गत सामाजिक मान्यताओं एवं धार्मिक विश्वास को सर्वाधिक महत्व दिया गया है जिसके अनुसार विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न–भिन्न उपचारी विधियों का विधान बनाया गया है ।

भारत में प्रचलित चिकित्सा की देशी परंपराओं में पेड़–पौधों को सर्वाधिक महत्व दिया गया है । विभिन्न रोगों के उपचार हेतु उपयोग में आनेवाली वनस्पतियों एवं इन वनस्पतियों में विद्यमान चिकित्सीय गुणों का विस्तृत वर्णन आयुर्वेद में उपलब्ध है । आयुर्वेद शास्त्र के बारे में माना जाता है कि यह विज्ञान 5000 वर्षों से भी अधिक पुराना है । इतने लंबे समय से भारत में चिकित्सा की देसी परंपराएँ इसलिए फलती–फूलती रहीं हैं क्योंकि भारतीय जन–मानस का प्रकृति, पर्यावरण एवं पादप जगत से गहरा तादात्म्य रहा है । प्राचीन भारतीय ऋषि–मुनियों का यह विश्वास था कि 'प्रत्येक पौधा एक तरह की औषधि है'' । आधुनिक युग में भी बहुत सारे लोग इसमें विश्वास करते हैं तथा पेड़–पौधों को ''जन–सामान्य का औषधालय'' मानते हैं । हमारे देश के कई परंपरागत पौधों – पपीता, काली मिर्च, तुलसी, पुदीना, अदरक, इसबगोल, आंवला, जीरा, सोयाबीन, टमाटर, मेथी समेत आयुर्वेद में वर्णित हजारों औषधीय पौधों का इस्तेमाल आज भी रोगों के निवारण के लिए व्यापक रूप से किया जा रहा है ।

भारतीय उपचार–पद्धति का उद्भव

मानव स्वास्थ्य एवं मानवीय जीवन की गुणवत्ता को प्राचीन भारतीय ग्रंथों में सर्वाधिक महत्व दिया गया है। आयुर्वेद के रूप में वर्तमान में लोकप्रिय स्वदेशी चिकित्सा पद्धति वास्तव में आयु का विज्ञान है । आयुर्वेद के अलावा विभिन्न वेदों एवं संहिताओं जैसे ग्रंथों में स्वस्थ जीवन से संबंधित अनेक श्लोक एवं मंत्र दिए गए हैं । चिकित्सा, स्वास्थ्य–रक्षा और शल्य कर्म आदि से संबंधित श्लोक अधिकतर ऋग्वेद में मिलते हैं । इसी प्रकार, सभी प्राचीन ग्रंथों में विभिन्न पेड़–पौधों के औषधीय गुणों के बारे में भी विस्तार से बताया गया है। वास्तव में, ऋग्वेद को औषधीय पौधों से संबंधित संपूर्ण जानकारी देने वाला प्रथम प्रामाणिक दस्तावेज माना जाता है । महर्षि चरक की 'चरक संहिता' में भी पेड़–पौधों की जड़ से लेकर पुष्प, पत्तों एवं अन्य भागों के औषधीय गुणों तथा विभिन्न रोगों के उपचार में इनकी उपादेयता का विस्तृत वर्णन मिलता है । विभिन्न प्रकार की वनस्पति से प्राप्त जड़ी–बूटियों के बारे में अत्यंत उपयोगी जानकारी इन ग्रन्थों में उपलब्ध है ।

प्राचीन ग्रंथों से प्राप्त जानकारी से यह सिद्ध हो जाता है कि हमारे देश में जड़ी–बूटियों के द्वारा उपचार करने की बहुत पुरानी परंपरा है । आज भी देशी उपचार के अंतर्गत मुख्य रूप से जड़ी–बूटियों एवं अन्य औषधीय वनस्पति का प्रयोग किया जाता है । ऋग्वेद के एक मंत्र (ऋग्वेद,1.2.3.15) में कहा गया है कि खाद्य और औषधियों के चुनाव में निम्न पशु, मानव के पथ–प्रदर्शक थे । इस प्रकार, प्राचीन मनीषियों ने विभिन्न जीव–जंतुओं के ऊपर जड़ी–बूटियों के प्रभाव के संबंध में अपने अध्ययन एवं किए गए प्रयोगों से संबंधित अपने दीर्घ अनुभव के आधार पर उपचार की अनेक देशी पद्धतियों का आविष्कार किया । विभिन्न रोगों के उपचार के प्रयोजन से इन देशी पद्धतियों का प्रयोग आज भी बड़े स्तर पर किया जाता है ।

भारतीय उपचार : विकास एवं विस्तार

हमारे देश में चिकित्सा की अंग्रेजी पद्धति (एलोपैथी) के आने से पहले आयुर्वेदिक पद्धति एवं उपचार की देशी परंपराओं का ही अधिक प्रचलन था । हजारों वर्षों के दौरान सुश्रुत, चरक, जीवक, कश्यप, नागार्जुन, पतंजलि जैसे ऋषि–मुनियों ने निरंतर प्रयोग एवं अभ्यास के द्वारा चिकित्सा की एक विश्वसनीय पद्धति का विकास किया । इसके परिणामस्वरूप प्राचीन भारत में आयुर्वेद, योग, सिद्ध एवं प्राकृतिक चिकित्सा का विकास हुआ । मध्यकालीन भारत में यूनानी एवं तिब्बती चिकित्सा पद्धतियाँ हमारे देश में आईं और धीरे–धीरे इन पद्धतियों का प्रचलन हुआ । स्वास्थ्य से संबंधित होम्योपैथी चिकित्सा पद्धति का हमारे देश में विकास गत शताब्दी के मध्य

में हुआ । वहीं सिद्ध चिकित्सा पद्धति का उपयोग श्रीलंका के साथ–साथ भारत के तमिलनाडु राज्य तथा उससे लगे प्रांतों में आज भी बड़े पैमाने पर किया जा रहा है । देशी उपचार की ये विभिन्न पद्धतियाँ हमारे पूर्वजों के विश्वास की कसौटी पर खरी उतरी हैं तथा इतने वर्षों के बाद आज भी लोकप्रिय हैं ।

प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत में देशी उपचार के अंतर्गत बीमारियों के इलाज के लिए घरेलू स्तर पर तैयार दवाओं का प्रयोग किया जाता था जबकि गंभीर बीमारियों के लिए वैद्यों एवं हकीमों द्वारा इलाज करवाया जाता था । हजारों सालों से उपयोग में आने वाली यह चिकित्सा पद्धति प्राकृतिक नियमों के अनुरूप थी । यही कारण है कि सदियों से जाँचे–परखे गए देसी उपचार के विभिन्न नुस्खे भारतीय जीवन–शैली का अभिन्न अंग बन गए हैं । आज भी देश की अधिसंख्य जनसंख्या इन्हें उत्तम स्वास्थ्य की कुंजी मानती है । भारतीय सामाजिक एवं सांस्कृतिक परंपराओं के अनुरूप होने के कारण इस पद्धति के स्वाभाविक विकास में काफी मदद मिली । इस प्रकार, सामान्य जनता एवं शासकों से प्रोत्साहन पाकर उपचार की देशी पद्धतियाँ फलती–फूलती रहीं ।

लेकिन अंग्रेजी शासन–काल में अंग्रेजी शिक्षा–पद्धति लागू करने के बाद स्थिति बदल गई । चिकित्सा की देशी परंपराओं को 'अवैज्ञानिक' एवं 'अंधविश्वास–आधारित' बतला कर अंग्रेजों ने इसके विरूद्ध व्यापक प्रचार–प्रसार किया । इसके परिणामस्वरूप उपचार की देशी पद्धतियों के प्रति शहरों में रहने वाले अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोगों का रुझान कम होने लगा । आजादी के बाद सरकार ने स्वास्थ्य–सेवाओं से वंचित जनसंख्या को जल्द से जल्द स्वास्थ्य–सुविधाएँ उपलब्ध कराने के कार्य को प्राथमिकता दी । इसके लिए स्वास्थ्य–सेवा के नाम पर प्रमुख रूप से अंग्रेजी चिकित्सा (एलोपैथी) को बढ़ावा दिया गया तथा जगह–जगह अंग्रेजी दवाखाने और अस्पताल खोले गए । इन सबके कारण पूरे देश में इलाज के लिए अंग्रेजी चिकित्सा पद्धति को ही मान्यता दी जाने लगी तथा देशी इलाज का महत्व कम होने लगा।

इक्कीसवीं सदी में स्थिति तब बदली जब पश्चिमी देशों में ध्यान, योग, आसन जैसी भारतीय पद्धतियों की बढ़ती लोकप्रियता तथा आयुर्वेद के प्रति बढ़ते रुझान के कारण धीरे–धीरे पढ़ा–लिखा भारतीय समाज अपनी धरोहर के प्रति जागरूक हुआ । इसके साथ–साथ, देशी दवाओं में आम लोगों की रूचि एवं इन दवाओं की माँग भी बढ़ती गई । इस माँग के अनुसार ही दवा कंपनियों ने आयुर्वेदिक दवाओं के क्षेत्र में संबंधित अनुसंधान एवं विकास कार्यक्रमों को तेजी से बढ़ावा देना शुरू कर दिया। इस बीच सरकार द्वारा 1995 में स्वास्थ्य एवं कल्याण मंत्रालय के अधीन भारतीय चिकित्सा पद्धति एवं होमियोपैथी विभाग की स्थापना की गई। तत्पश्चात् इसे आयूष विभाग (Department of Ayurvedic, Unani, Siddha and Homeopathic) का दर्जा दिया गया। इस प्रकार, सरकार के प्रोत्साहन तथा विभिन्न गैर–सरकारी संस्थाओं के सहयोग से देशी उपचार–पद्धतियों को समाज के हर वर्ग में सम्मानपूर्वक स्थान दिलाने के प्रयासों को पर्याप्त बढ़ावा मिला । इन सबके परिणामस्वरूप सामान्य जनता के साथ–साथ अभिजात्य वर्ग में भी इलाज के लिए एक बार फिर से उपचार की देशी परंपराओं के प्रति रुझान बढ़ने लगा ।

भारतीय उपचार पद्धतियों की वैज्ञानिकता

भारतीय चिकित्सा पद्धतियों के क्षेत्र में कार्यरत चिकित्सकों एवं स्वास्थ्य विशेशज्ञों को यह सुनिश्चित करने के प्रयास करने होंगे कि इन आरोग्यवर्धक पद्धतियों को सबके लिए सुलभ बनाया जाए। उनके ऐसे प्रयासों की बदौलत दूर–दराज के क्षेत्रों में भी सबके लिए स्वास्थ्य–सेवा को सुगम बनाना संभव होगा । भारतीय उपचार पद्धतियों का प्रचार–प्रसार इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि हजारों साल पुराना यह ज्ञान मानव–स्वास्थ्य के क्षेत्र में आज भी अत्यंत कारगर भूमिका निभा सकता है । वास्तव में इस प्राचीन ज्ञान के क्षेत्र में जितने अधिक शोध किए जा रहे हैं उतनी ही अधिक रहस्य की परतें हट रही हैं तथा चिकित्सा विज्ञान की भारतीय सच्चाई उजागर हो रही है । आयुर्वेद एवं प्राचीन भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान के शाश्वत मूल्यों को अब तो आधुनिक विज्ञान भी स्वीकार करने लगा है ।

हमारे देश के प्रसिद्ध वैज्ञानिक तथा हैदराबाद स्थित कोशिकीय एवं आणविक जीवविज्ञान केंद्र (सी.सी.एम.बी.) के निदेशक डॉ. लालजी सिंह का मानना है कि, "कई नई तकनीकों के प्रादुर्भाव से जीवविज्ञान के शोध कार्य में तेजी आ गई है । यकीनन, इन सब की वजह से विविध रोगों के लिए नई दवाइयों की खोज में मदद मिलेगी । हमें इस संदर्भ में आयुर्वेदशास्त्र तथा अन्य जड़ी–बूटियों की आदिवासी परंपरा को भी आधुनिक वैज्ञानिक आधार देते हुए रोगों के निर्मूलन में साथ लेकर चलना होगा । " यदि आधुनिक एवं पुरातन ज्ञान का सदुपयोग सुनिश्चित किया जाए तो 5000 वर्षों से भी अधिक पुराने आयुर्वेदशास्त्र तथा अन्य उपचार–पद्धतियों को मानव–समाज के लिए अधिक हितकारी रूप दिया जा सकता

है । यह भी स्पष्ट है कि उच्च–स्तरीय वैज्ञानिक शोध एवं परीक्षणात्मक अध्ययन के द्वारा ही भारतीय चिकित्सकीय पद्धतियों का सार्थक उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है। इस संदर्भ में पतंजलि योगपीठ हरिद्वार तथा जैव चिकित्सा इंजीनियरी केन्द्र, आई.आई.टी. दिल्ली एवं अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान दिल्ली का संयुक्त प्रयास अत्यंत गर्व के साथ याद किया जाएगा।

निष्कर्ष

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि भारतीय परिप्रेक्ष्य में विभिन्न रोगों के इलाज के लिए प्राचीन उपचार–पद्धतियों को बढ़ावा देकर सबके लिए उत्तम स्वास्थ्य सुनिश्चित करना आसान हो सकता है । मानव का स्वस्थ व सुदीर्घ जीवन संभव बनाने के लिए यह आवश्यक है कि आयुर्वेद एवं स्वदेशी चिकित्सा पद्धतियों को सही परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत किया जाए । इस समृद्ध ज्ञान का सदुपयोग तभी सुनिश्चित किया जा सकेगा जब इसके लोकहितकारी रूप को लोकगम्य स्वरूप भी प्रदान किया जाएगा । इसके लिए स्वास्थ्य विशेषज्ञों एवं प्राचीन उपचार–पद्धति के जानकारों को मिल–जुलकर सम्मिलित प्रयास करने होंगे । यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि ऐसे प्रयासों के परिणामस्वरूप ही देश के हर नागरिक को सस्ती एवं सुलभ स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराना संभव हो सकेगा ।

संदर्भ

1. "प्राचीन भारत के वैज्ञानिक कर्णधार" (1989), स्वामी सत्यप्रकाश सरस्वती, पुस्तकायन, नई दिल्ली।
2. "संपूर्ण स्वास्थ्य" (2000), डॉ. दीपक चोपड़ा, मंजुल पब्लिशिंग हाउस प्राइवेट लिमिटेड, भोपाल।
3. "वैज्ञानिक भारत का निर्माण " (2003), डॉ. रघुनाथ अनंत माशेलकर, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. "योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा" (2006), डॉ. बी.टी. चिदानंद मूर्ति, केंद्रीय योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा अनुसंधान परिषद्, नई दिल्ली।
5. "परंपरागत चिकित्सा : स्वास्थ्य के लिए वरदान", संजय चौधरी, 'विज्ञान गरिमा सिन्धु', अंक 56–57 जनवरी–जून 2006।
6. सी.एस.आइ.आर. समाचार, वैज्ञानिक तथा औद्योगिक अनुसंधान परिषद, वर्ष 27, अंक 4, अप्रैल 2010।
7. www.indianmedicine.nic.in

प्रो.सुरेन्द्र प्रसाद, निदेशक महोदय एवं श्री नरेश कुमार, निदेशक (राजभाषा), मा.सं.वि. मंत्रालय दिल्ली स्थित तकनीकी संस्थानों के हिन्दी अधिकारियों को संबोधित करते हुए।(22 मार्च, 2010)

उपर्युक्त संगोष्ठी में एक प्रतिभागी प्रस्तुतीकरण करते हुए।

प्रो. एस.एम. इश्तियाक,उपनिदेशक (प्र.) नोडल अधिकारियों के साथ विचार विमर्श करते हुए। (29 जनवरी, 2010)

संस्थान कर्मचारियों के लिए आयोजित कार्यशाला में प्रो. एस.एम. इश्तियाक श्री अनुपम मिश्र का स्वागत करते हुए। (3 जुलाई,2010)

प्रो. एम. बालाकृष्णन (उप निदेशक संकाय) उपर्युक्त कार्यशाला में प्रतिभागिता करते हुए।

उपर्युक्त कार्यशाला में विषय विशेषज्ञ प्रतिभागियों से चर्चा करते हुए।

हिन्दी दिवस समारोह–2009 के अवसर पर कविता पाठ प्रतियोगिता का एक दृश्य।

...साद, निदेशक ...ासा अंक 23 ... करते हुए।

हिन्दी कक्ष परिवार